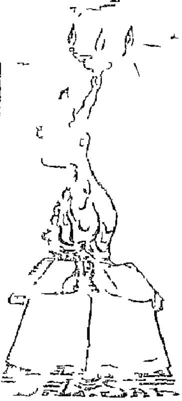


चोर की प्रेमिका

तमिल भाषा के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'कलवनिन कादलि' का अनुवाद

लेखक

रा० कृष्णमूर्ति 'कल्कि'

अनुवादक

सोमसुन्दरम्

सहकारी सम्पादक 'नवभारत टाइम्स'

१९५३

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट
दिल्ली ६

मूल्य चार रुपये

मुद्रक
अमरजीत सिंह नलवा
सागर प्रेस
काश्मीरी गेट
दिल्ली ६

अनुवाद के सम्बन्ध में

श्री रा. कृष्णमूर्त्ति 'कल्कि', तमिल-भाषा के आधुनिक गद्य-लेखकों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते । आप उत्कृष्ट कहानीकार, सफल पत्रकार, निबन्ध-लेखक, कलापारखी एवं उपन्यासकार के रूप में इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं कि तमिल-भाषी बच्चा-बच्चा आपके उपनाम 'कल्कि' से परिचित है। श्री एस. एस. वासन द्वारा संचालित पत्र 'आनन्द-विकटन' को तमिल-भाषा का सर्व-प्रिय साप्ताहिक पत्र बनाने का श्रेय आप की ही लेखनी को है। आपने अनेकों युवा लेखकों को प्रोत्साहन दिया, उदीयमान प्रतिभाओं को आगे बढ़ाया तथा लेखन-शैली में उन का मार्ग-दर्शन किया। कला-समालोचक के रूप में आपने दक्षिणी संगीत में नए प्राण फूँकने तथा भरत-नाट्यम् को विस्मृति के गर्त से निकाल कर सजीव कला के रूप में पुनर्जीवित करने में महान् योग दिया। जटिल राजनीतिक समस्याओं को सरल, जन-प्रिय भाषा में समझाने में आप की प्रतिभा अतुलनीय है। इस समय आप स्वतन्त्र रूप से 'कल्कि' नामक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र का संचालन एवं सम्पादन कर रहे हैं।

'कल्कि' सैंकड़ों कहानियाँ एवं दर्जनों उपन्यास लिख चुके हैं। 'कल्कि' की कुछ कहानियों का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। आप की कहानी 'खत और आँसू' 'हिन्दी-गल्प-संसार-माला' में प्रकाशित हुई थी। 'नेहरू-अभिनन्दन-ग्रन्थ' में आप की लम्बी कहानी 'मोहनी दीप' को स्थान दिया गया था। आप का एक उपन्यास 'शोले मलै की राजकुमारी' दिल्ली के प्रसिद्ध पत्र 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में धारावाहिक रूप से छप रहा है। हिन्दी में पुस्तकाकार छपने वाला आप का प्रथम उपन्यास 'चोर की प्रेमिका' ही है।

तमिल में प्रामाणिक एवं मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की परम्परा आप ने ही आरम्भ की थी। 'शिवकामी की शपथ' और 'राजा पार्थिव का स्वप्न' आप के सर्व-श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

'कल्कि' की कहानियाँ और उपन्यास, सोद्देश्य होते हैं। 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त के आप हामी नहीं हैं।

'चोर की प्रेमिका' (कल्वनिन कादलि) आप का प्रथम सामाजिक उपन्यास

है जो पन्द्रह वर्ष 'पहले आनन्द विकटन' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था और बाद में पुस्तकाकार छपा। यह उपन्यास इतना लोकप्रिय सिद्ध हुआ कि रंग-मंच पर कई बार इस को नाटक के रूप में खेला गया और अब इस के आधार पर एक चल-चित्र भी तैयार हो रहा है।

'चोर की प्रेमिका' में लेखक ने मुख्य रूप से इस समस्या को उठाया है कि खुले तौर पर चोरी-डकैती करने वाले ही चोर होते हैं या और लोग भी? और फिर सभी चोर पैदायशी धूर्त होते हैं या परिस्थितियाँ उन को समाजवाती बनने के लिए विवश करती हैं?

इस समस्या का स्पष्ट समाधान यद्यपि लेखक ने नहीं किया है, फिर भी शारदामणि के द्वारा उसकी ओर इस प्रकार संकेत किया है कि मुत्तय्यन जैसा नेक लड़का, जो कि रहन के प्रति अपने कर्तव्य के कारण कल्याणी के प्रेम तक को ठुकरा देता है, लम्पट शंकु पिल्ले के कपट-जाल में फँस कर चोरी-डकैती का जीवन अपनाने पर विवश किया जाता है। धूर्त शंकु पिल्ले तथा मुत्तय्यन को कानून-भंग के कार्यों में प्रवृत कराने वाले रत्नम पिल्ले तथा चट्टनाथ उडैयर जैसे लोग तो समाज एवं कानून की दृष्टि में निरपराध ही नहीं, बल्कि प्रतिष्ठित माने जाते हैं, जब कि परिस्थितियों के षड्यन्त्र का निःसहाय शिकार मुत्तय्यन, जंगली जानवर की भाँति पुलिस की गोली का भी शिकार हो जाता है।

सामाजिक, नैतिकता एवं कानून के खोखलेपन के इस सरल चित्र की पार्श्व-भूमि में मुत्तय्यन और कल्याणी की अपूर्व प्रेम-कहानी का वर्णन हृदय को द्रवित करने वाले करुण रस के साथ वर्णित है।

पन्द्रह वर्ष पहले के तमिल-समाज का यह चित्रण आज भी समाज पर हूबहू फबता है। हमारे समाज की 'प्रगति' का यह हाल है!

राष्ट्र-भाषा हिन्दी में बंगला, गुजराती, मराठी जैसी भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेज़ी, फ्रेंच जैसी विदेशी भाषाओं के साहित्य का तो अनुवाद पर्याप्त मात्रा में हुआ और हो रहा है, परन्तु दक्षिण की समृद्ध भाषाओं के साहित्य-रत्नों को हिन्दी-भाषान्तर द्वारा भारत भर की सम्पत्ति बनाने की दिशा में, अब तक कोई उल्लेखनीय कदम नहीं उठाया गया। दक्षिण-भारत की साधारण जनता, हिन्दी को वर्षों पहले भारत की सामान्य भाषा के रूप में स्वीकृत कर चुकी थी और आज वहाँ हिन्दी का प्रचार व्यापक रूप से हो रहा है। सरकारी तौर पर स्कूलों, कालिजों में, तथा हिन्दी प्रचार-सभा द्वारा वयस्क नागरिकों में हिन्दी का प्रचार करने के कार्य में इस समय लगभग ६०-७० हजार प्रचारक जुटे हुए हैं। ऐसी स्थिति में, राज-भाषा हिन्दी में दक्षिणी साहित्य के अनुवाद का अभाव सचमुच ही खटकने वाला है।

अनुवाद के सम्बन्ध में

दक्षिण की तथा तमिल भाषासे फुटकर लेखों का अनुवाद तो हुआ या थोड़ा बहुत होता ही है लेकिन पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने का श्रेय आत्माराम एण्ड संस को ही है।

यह बड़े हर्ष की बात है कि 'आत्माराम एण्ड संस' दिल्ली के दूरदर्शी एवं उत्साही संचालक श्री रामलाल पुरी ने हिन्दी के इस अभाव को पूर्ण करने की आवश्यकता अनुभव की और इस दिशा में पहल की। उन्होंने पहले मलयालम् भाषा के प्रगति शील लेखक तकषी शिवशंकर पिल्लै के एक उत्कृष्ट सामाजिक उपन्यास 'तोट्टीयुटेमकन' का 'चुनौती' नाम से हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया, आप की ही प्रेरणा एव प्रोत्साहन का फल है कि तमिल के 'कलविन कादलि' का यह हिन्दी-अनुवाद पाठकों के सामने उपस्थित किया जा रहा है। इस दूरदर्शिता पूर्ण रचनात्मक सेवा के लिए हिन्दी-भाषा एवं दक्षिणी साहित्य आप के निकट ऋणी है।

श्री पुरी ने हिन्दी और तमिल की सेवा करने का यह सुअवसर प्रदान किया, इस के लिए मैं उन का अत्यन्त आभारी हूँ।

मूल लेखक की भाषा की सरलता एवं सजीवता को हिन्दी में लाने का यथा शक्ति मैंने प्रयत्न अवश्य किया है, पर इस में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, इस का निर्णय स्वयं विज्ञ पाठक बन्धु ही कर सकते हैं।

सोमसुन्दरम्

प्रकाशकीय निवेदन

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य से सम्पर्क स्थापित किये बिना हिन्दी वास्तविक रूप में राष्ट्र-भाषा के अनुरूप नहीं बन सकती। हमारा ही नहीं देश के प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों, नेताओं और साहित्यिकों का भी यही मत है तथा समय-समय पर उन्होंने इसकी घोषणा भी की है। यह सम्बन्ध प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य के आदान-प्रदान द्वारा ही संभव है।

हमने इस दिशा में जो प्रारम्भिक प्रयत्न किया है वह है लोक-कथाओं का प्रकाशन। काश्मीर, पंजाब, बिहार, बंगाल, गुजरात तथा दक्षिणी भाषाओं में तेलुगू, मलयालम्, तमिल तथा कन्नड़ आदि प्रान्तीय भाषाओं की लोक-कथाओं का अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं। लेकिन हमारा यह प्रकाशन बच्चों और प्रौढ़ों तक ही सीमित है।

प्रान्तीय भाषाओं से हिन्दी में जितना साहित्य आया है उसमें दक्षिणी भाषाओं से बहुत कम अनुवाद हुआ है। लिपि की दुर्बोध्यता के कारण दक्षिणी भाषाओं के साहित्य की जानकारी हिन्दी-भाषी पाठकों को है ही नहीं। इसी अभाव को देखते हुए हमने पहले मलयालम् के ख्याति-लब्ध तथा प्रगतिशील उपन्यासकार श्री तकषी शिवशंकर पिल्ला के क्रान्तिकारी उपन्यास 'तोट्टीयुटे मकन' का 'चुनौती' नाम से हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। इसका अनुवाद अखिल भारतीय हिन्दी-परिषद् के प्रधान मंत्री श्री देवदत्त विद्यार्थी की सहधर्मिणी श्रीमती भारती, बी. ए., एल. टी., ने किया है। श्रीमती भारती मलयालम् भाषा-भाषिणी हैं तथा हिन्दी पर भी उन का अधिकार पर्याप्त है। प्रस्तुत 'चोर की प्रेमिका' तमिल भाषा के अग्रगण्य उपन्यास-कार और पत्रकार श्री रा० कृष्णमूर्ति 'कल्कि' के लोकप्रिय उपन्यास 'कलविन् कादलि' का हिन्दी अनुवाद है। दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के सहकारी सम्पादक श्री सोमसुन्दरम तमिल भाषा-भाषी हैं और हिन्दी पर भी आपका उतना ही अधिकार है जितना तमिल पर। उन्होंने इसका बड़े परिश्रम से अनुवाद किया है। इस प्रकार हमने दक्षिणी भाषाओं के साहित्य की दो अमूल्य रचनाएँ हिन्दी-जगत् को भेंट कीं।

हम चाहते हैं कि दक्षिण की प्रायः सभी भाषाओं के उच्चतम साहित्य का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित किया जाय। उपन्यास और कहानियाँ ही नहीं, हम तो हिन्दी में दक्षिणी साहित्य के सर्वाङ्गीण परिचय की आवश्यकता अनुभव करते हैं। यदि पाठकों की ओर से इस दिशा में प्रोत्साहन मिलता रहा और नूतन सुझाव प्राप्त होते रहे तो निकट भविष्य में, हम अपनी इस योजना को सफल बनाने में कोई कसर नहीं उठा रखेंगे।

विषय-सूची

चोर की प्रेमिका

१

छिन्न कमल

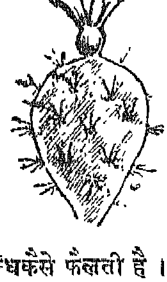
पूङ्कुलम (फूल-तालाब) उस हरे-भरे गाँव का उपयुक्त नाम था। उतना शस्य-श्यामल, सुजल गाँव शायद ही और कहीं मिल सकता था। आसाढ़-सावन के महीनों में गाँव के बाहर के तालाबों, स्रोतों, नहरों और खेतों में पानी लबालब भरा रहता था। जहाँ देखो, पानी-ही-पानी लहरें मारता दिखाई देता था।

न जाने कैसे इतने रंग-बिरंगे फूल उस गाँव में आ गए थे। गाँव की बस्ती के बाहर निकलते ही अमलतास के पेड़ों पर सोने की झालरों से झूलने वाले सुनहरे फूलों के गुच्छे आँखों को आकर्षित करते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि शिवजी को ये फूल बहुत प्रिय हैं। ऐसे सुन्दर फूलों से किसे प्रेम नहीं होगा?

उसके आगे बाड़ के साथ-साथ स्वर्णचम्पा के पेड़ों पर फूलों के गुच्छे दृष्टिगत होते हैं। आश्चर्य होता है कि इन फूलों में ऐसी स्वर्णिम छटा कहाँ से आई? बाड़ की दूसरी तरफ़ खड़े हुए सेमर के विशालकाय वृक्षों पर रक्तिम पुष्पों की छवि देखकर मन आह्लाद से भर जाता है।



जरा दूर पर शिव-मन्दिर की प्राचीर के साथ वाले पेड़ों पर फूलों का सौन्दर्य कैसा निखर उठा है! हरे-हरे पत्तों के बीच ये स्वच्छ श्वेत पुष्प कितने प्रिय लगते हैं! उनके आगे पारिजात के पेड़ों और उन पेड़ों के नीचे बिछी हुई फूलों की सेज को एक बार देख लें, तो आगे पैर बढ़ाने को जी नहीं चाहता।

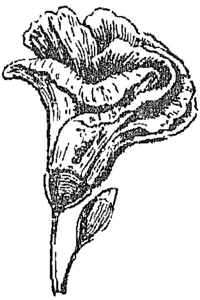


फिर भी जी कड़ा करके दूर पर दिखाई देने वाले तालाब की ओर चलें। पगडंडी पर चलते-चलते मधुर सुवास हमें मुग्ध कर देती है। ज़रा सिर उठाकर देखते हैं तो एक मामूली सा पेड़ खड़ा दिखाई देता है। कोई विशेष सौन्दर्य नहीं है उसमें। आश्चर्य होता है कि उस पेड़ के उन छोटे-छोटे फूलों से इतनी सुगन्धि कैसे फैलती है।

उधर नाले के किनारे पर छोटे-छोटे जंगली पौधों का वह झुरमुट और उन

पर वे नन्हे-नन्हे फूल ! इतने कोमल कि ढाके का मलमल भी मात खा जाय ! कौन जाने इन जंगली फूलों में यह रंग और यह मृदुलता कहाँ से आई ?

पास के कँटीले पौधे की उपेक्षा न करना ! ये काँटे जितने नुकीले हैं, उतने ही सुन्दर हैं इस पौधे के फूल ।



आगे उस पलाश वृक्ष पर लदे हुए बड़े-बड़े पीले फूलों की छवि निरखते हुए चलें, तो खेतों के पास पहुँच जाते हैं। खेतों में जुताई के लिए पानी भरा हुआ है। अरे ! यह नील छटा कहाँ से आई ? काँस के बीच में से उठकर बाहर झाँकने वाले उन नीले फूलों की छवि क्या ही मनोरम है !





अब हम सरोवर के पास पहुँच गए हैं। सरोवर के तट पर जो उपवन है, यदि एक बार उसके अन्दर प्रवेश कर जायँ, तो फिर बाहर निकलना कठिन हो जायगा। अतः ज़रा बाहर ही से झाँक लें और आगे बढ़ें। मोगरे के पौधों पर लदे हुए सफेद फूलों को देखकर जी ललचा जाता है। उस ओर बन्धूक पुष्प शोभित हो रहे हैं। इस तरफ मोतिया, चमेली, जुही, और संपंगी के मानो ढेर लगे हुए हैं। सारा उपवन उनकी मधुर सुवास से महक रहा है। उस कोने में एक गुलाब का पौधा नवागन्तुक अतिथि की भाँति लजीला-सा खड़ा है। उसकी एक टहनी पर दो फूल साथ-साथ खिले हुए हैं।



तालाब के तट पर कनेर के पौधों का पुञ्ज-सा बना हुआ है। उन पर लदे हुए लाल-लाल फूल हवा में मधुर झोंके खा रहे हैं। लोग भी बड़े परिश्रम से गुलदस्ते बनाते हैं, लेकिन प्रकृति देवी के बनाये हुए इन गुलदस्तों को जरा देखिये तो सही। गाढ़े हरे रंग के पत्तों के बीच खिले हुए इन लाल फूल-गुच्छों के सौन्दर्य का कैसे बखान करें ? अहा ! फूलों की डाली पर वह तोता आकर बैठ गया। तोता और फूलों का गुच्छा साथ-साथ हिंडोला झूल रहे हैं। लोग सुर-कानन की बात करते हैं, कैसी मूर्खता है ! इस सौन्दर्य-कानन पर हज़ार सुर-कानन न्यौछावर !

आखिर सरोवर को भी ज़रा देख ही लें। अरे ! यह पानी का तालाब है या फूलों का ? यदि पुष्पों का कोई सम्राट् हो सकता है, तो निःसन्देह वह लाल कमल ही है। कितने बड़े-बड़े फूल ! वह भी एक-दो नहीं, हज़ारों। किस शान से और किस अदा के साथ खड़े हैं वे। सौन्दर्य की अधीश्वरी ने इस पुष्प को अपना निवास-स्थान बना लिया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?



सरोवर के एक कोने में कुछ कुमुद के फूल लुक-छिपकर खड़े हैं, मानो फूलों के सम्राट् के आगे खड़े रहते हुए लज्जित हो रहे हों। जरा ध्यान से देखने पर इधर-उधर कुछ अध-खिले, नीलकमल दृष्टि-गत होते हैं।

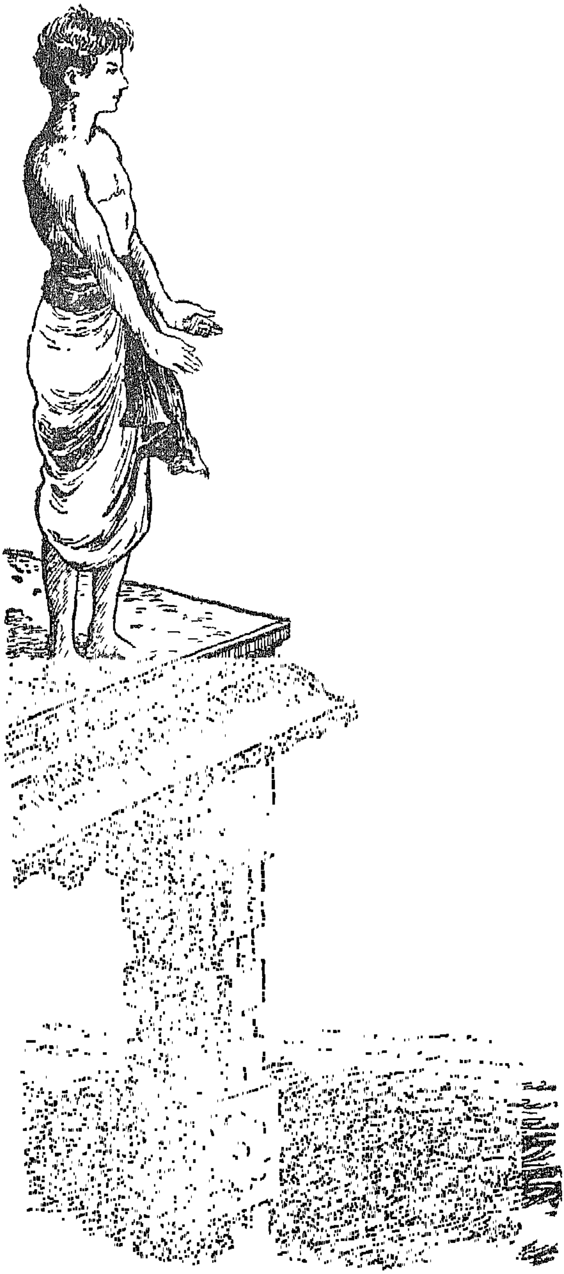
हाँ ! बीच-बीच में जो सफेद चीज़ें दिखाई देती हैं, वे वास्तव में बगुले ही हैं। पर यह हम नहीं कह सकते कि वे मछलियों की प्रतीक्षा में खड़े-खड़े तपस्या कर रहे हैं, या इस मनोरम दृश्य की छवि में सुध-बुध खोकर अवश हो गए हैं।

❀ ❀ ❀

इस अद्भुत सौन्दर्यमय दृश्य से दृष्टि हटाकर ज़रा दूसरी तरफ़ देखें। सरोवर के घाट के पास एक छोटा मण्डप नज़र आता है। इस समय उसमें दो वृद्ध जन, भभूत रमाये, रुद्राक्ष धारण किये, बैठे सन्ध्यानुष्ठान कर रहे हैं। उनमें से एक हैं धर्मकर्त्ता पिल्लै और दूसरे हैं उनके मित्र सोमसुन्दरम् पिल्लै।

"शिवाय नमः, शिवाय नमः शिवाय नमः······"हाँ भाई, जानते हो कि नहीं ? बिचले[1] घर की लड़की का व्याह तो हो चुका है," धर्मकर्त्ता पिल्लै ने कहा।

[1] तामिलनाड में गाँव के बड़े परिवारों का उल्लेख उनके खानदानी मकान की स्थिति के अनुसार किया जाता है। जैसे 'बिचले घर वाले', 'कोने वाले घर के', इत्यादि।



जानता क्यों नहीं ? लेकिन हाँ ! वह छोकरा मुक्तव्यन धोखा खा गया । कहते हैं, कल्याणी के साथ पहली सगाई उसीकी हुई थी ।"

"सगाई-वगाई कुछ नहीं, भाई ! आवारा कहीं का । एक कौड़ी कमाने की तमीज़ नहीं। ऐसे छोकरे को कौन अपनी लड़की देगा ?"

"फिर भी उस लड़की पर वह प्राण देता था । अब वह किसी अपरिचित के घर ब्याही जा रही है। बेचारे पर बड़ी बुरी बीती ।"

दोनों बूढ़े इस तरह बातें कर रहे थे कि इतने में मण्डप के पास एक युवक आया । वृद्धजनों की बातचीत का पिछला हिस्सा उसके कानों में पड़ा । वह चुपके से मण्डप पर चढ़कर उसके ऊपर पहुँच गया । उस युवक की आयु बीस-बाईस

वर्ष की होगी। सुडौल शरीर, आकर्षक चेहरा। पाश्चात्य ढंग से कटे उसके बाल बढ़े हुए थे। ऐसा लगता था कि उसे बाल कटाये बहुत दिन हो चुके हैं। हवा के झोंके खाकर उसके बाल माथे पर आ पड़े और आँखों पर भी। उसने बड़ी अदा के साथ गरदन हिलाकर उन्हें पीछे झिटक लिया और तुरन्त ही छलाँग मारकर तालाब में धड़ाम से कूद पड़ा। जहाँ वह कूदा था, वहाँ से पानी की बूँदें उछलकर छितरा गईं। कुछ छींटें मण्डप में सन्ध्या करते हुए वृद्ध महोदयों पर भी आ पड़ीं।

"लड़का नहीं, बन्दर है, बन्दर! बस, सिर्फ़ पूँछ की कसर है," धर्मकर्ता पिल्लै ने झुँझलाकर कहा।

"लोग इस मुत्तय्यन को गुण्डा ठीक ही कहते हैं", सोमसुन्दरम् पिल्लै ने सुर मिलाया।

❀ ❀ ❀ ❀

मुत्तय्यन तैरता हुआ आगे बढ़ा और कमल के पौधों के पास पहुँचा। यह कैसी भ्रान्ति? फूल के स्थान पर मधुर मुस्कान से भरा एक सुन्दर मुख उसे नज़र आया। मुत्तय्यन ने एक बार गरदन हिलाई तो वह चेहरा ओझल हो गया और वही फूल फिर सामने आ गया। मुत्तय्यन ने उसे डंठल-समेत पकड़कर एक झटके में तोड़ डाला। ओह! कैसा गुस्सा! आख़िर बेचारे फूल का क्या दोष कि उस पर गुस्सा उतारने लगा? फूल को तो तोड़ा भी जा सकता है, लेकिन मन में समाई हुई स्मृति को उस तरह थोड़े ही उखाड़ा जा सकता है? फूल के साथ कमल के दो पत्ते भी तोड़कर मुत्तय्यन किनारे को लौटा और गाँव की ओर चलने लगा।

२

भाई-बहन

भीगे कपड़े पहने, कमल के पत्तों को हाथ में लिये, कन्धे पर डंठल-समेत कमल का फूल लटकाये, मुत्तय्यन पूक्कुलम गाँव की ज़मींदारों वाली गली से चला। वैसे भी उसकी चाल तेज़ थी। गली के बीच में पहुँचने पर तो वह और भी तेज़ हो गई। अचानक उसका चेहरा लाल हो उठा। आँखें सजल हो गईं। वह लंबी साँस लेने लगा। तब तक वह एकटक सामने की तरफ़ देखता जा रहा था। पर अब हठात् उसने बाईं तरफ़ देखा। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके वश के बाहर की कोई अप्रतिरोध्य आकर्षण-शक्ति उसकी आँखों को बरबस अपनी ओर खींच रही है।

जहाँ उसकी दृष्टि गई, वहाँ एक बड़े घर का कमरा था। कमरे की खिड़की के पीछे एक लड़की का मुख नज़र आ रहा था। मुख पर काली-काली आँखें सजल थीं। अश्रु-कणों को चीरती हुई उसकी दृष्टि ऐसे चमक उठी जैसे पावस की बिजली। मुत्तय्यन उस दृष्टि की तीव्रता को सह नहीं सका और उसने झट आँखें फेर लीं। उसके क़दम पहले से भी ज़्यादा तेज़ी से बढ़ने लगे। गली के छोर पर अपने घर पहुँच-कर ही उसने दम लिया।

मुत्तय्यन जब घर में घुसा, तब रसोईघर में कोई बालिका मधुर कण्ठ से गा रही थी। गाना सुनते ही मुत्तय्यन मस्त होकर सिर हिलाने लगा और खुद भी गाने लगा।

गीत की पंक्तियाँ गाते-गाते मुत्तय्यन अपने भीगे कपड़े सुखा रहा था कि इतने में रसोईघर का किवाड़ खुला और एक लड़की बाहर निकली। वह चौदह-पन्द्रह वर्ष की होगी। उसके चेहरे पर चंचलता थी, आँखों में नटखटपन। एक बार देखते ही पता लग जाता था कि वह मुत्तयन की बहन है।

मुत्तय्यन गीत की पंक्तियाँ गा चुका, तो लड़की ने पूछा, "भैया! इस गीत के रचयिता बड़े बुरे मालूम पड़ते हैं। स्त्रियों ने उनका क्या बिगाड़ा था, जो वह स्त्रियों को 'कपटी-कामिनी' कहते हैं? सभी स्त्रियाँ बुरी थोड़े ही होती हैं?"

बहन की बातों पर मुत्तय्यन खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला, "नहीं अभिरामी! वह सब स्त्रियों की बुराई थोड़े ही कर रहे हैं? जिनमें स्त्रियोचित गुण हैं, उनकी बुराई वह क्यों करने लगे? उनका तो मतलब बुरी स्त्रियों से है।

तुम्हारे-जैसी मुँहफट लड़कियों से भी।"

"जाओ भैया! मैं मुँहफट सही। तुम किसी गूँगी से शादी कर लेना। अच्छा, यह तो बताओ, स्त्रियों का बातें करना बुरा भले ही हो, गाना तो मना नहीं है न? क्यों?"

प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह अन्दर चली गई और गीत की अगली पंक्तियाँ गाने लगी।

मुत्तय्यन ने धुले कपड़े पहन लिए, माथे पर चन्दन का टीका लगा लिया और आगे के कमरे में टँगे हुए झूले पर बैठकर झूलने लगा। उसके चेहरे से यह साफ़ झलक रहा था कि उसका मन गाने में नहीं है।

गीत समाप्त होने पर अभिरामी फिर उसके पास आई।

"भैया, एक बात सुनी तुमने?" अभिरामी ने पूछा।

"कौन सी बात? यही तो नहीं कि सामने वाले घर में बिल्ली के एक पिल्ला पैदा हुआ है?"

"दुत्! तुम्हें तो सदा मज़ाक ही सूझती है।··· हाँ मैंने सुना है कि हमारी कल्याणी का ब्याह तै हो चुका है। जानते हो न?"

मुत्तय्यन के मुख पर व्यथा की रेखाएँ दौड़ गईं। झुँझलाकर बोला, "बस, उसी चिन्ता के मारे मुझे नींद भी नहीं आती थी। अब मेरी चिन्ता दूर हो गई। हाँ, अब तुम जाओ यहाँ से। जाकर अपना काम सँभालो।"

"वर इतना बूढ़ा नहीं है, भैया! लोग कहते हैं, उस की उमर सिर्फ़ अड़तालीस साल की है!" इतना कहकर अभिरामी झूमती हुई अन्दर चली गई।

मिनट-भर बाद उसने फिर दरवाज़े से झाँककर देखा और बोली, "भैया, वर के सिर पर पूरे दस बाल काले बताते हैं। रतौंधी अभी एक साल से आने लगी है। लेकिन दिन के समय उनको खूब सूझता है। दस फुट की दूरी पर से आदमी और भैंसे को अलग-अलग पहचान लेते हैं।" यह कहकर वह फिर ओझल हो गई।

कुछ देर बाद फिर वह लौट आई और कहने लगी, "मैंने सुना भैया, कि वर बड़ा अमीर है। उसके घर में रुपये बोरियों में बँधे पड़े हैं। सिर्फ़ पहली औरत के गहने तीस हज़ार रुपये के बताते हैं। वे सब गहने अब कल्याणी को ही मिलने वाले हैं। आहा! कल्याणी के सुन्दर शरीर पर अगर इतने सारे गहने भी सज जायँ, तो फिर पूछना ही क्या है? जैसे सोने में सुहागा।"

ज्यों-ज्यों वह बातें करती गई, त्यों-त्यों मुत्तय्यन का भी गुस्सा बढ़ता गया। उसने बात काटकर कहा, "देखो अभिरामी! यह सब पचड़ा तुमसे किसने सुनाने को कहा था? तुम अब जाओ, रसोई का काम करो! यहाँ तुम कथा सुनाती

रहोगी और वहाँ चावल का हलुआ बन जायगा। जाओ !"

"नहीं भैया, कोई चाहे कुछ भी कहे, आजकल की दुनिया में रुपया ही सब-कुछ मालूम पड़ता है। उन लोगों से बुरा मानने से फायदा क्या ? यदि कल्याणी तुम्हें ब्याह दी जाय, तो हमारी हैसियत कहाँ कि उसे सोने का एक धागा भी पहना सकें ? लोग ठीक कहते हैं—'निर्धन मृतक समान।' रुपया नहीं, तो इज्जत नहीं।"

यों बातें करती-करती अभिरामी झूले के नज़दीक पहुँच गई। आगे मुत्तय्यन से सहा नहीं गया। वह तमककर उठा और अभिरामी का हाथ पकड़कर घसीटता हुआ रसोईघर में ले गया। उसे धक्का देकर अन्दर गिरा दिया और दरवाजे को धड़ाम से बन्द कर, उसकी कुण्डी चढ़ा, अपने कमरे में लौट आया।

३

जीर्ण मन्दिर

पुङ्गलम गाँव कोल्लिडम नदी के दक्षिणी तट पर था। गाँव के उत्तर की तरफ एक कच्ची सड़क थी। इस सड़क के साथ थोड़ी दूर चलने पर राजन नहर पड़ती थी। बुआई के दिनों में इस नहर में छः-सात फुट गहरा पानी बड़ी तेज़ी से बहता था। नहर पार करने के लिए बाँस का एक पुल बना था। नहर के उस पार थोड़ी दूर चलने पर कोल्लिडम नदी का ऊँचा किनारा नज़र आता था। नदी के उत्तर की तरफ घने जंगल दूर तक फैले हुए नज़र आते थे। कोल्लिडम नदी के घाट पर पहुँचने के लिए वहाँ से एक पगडंडी उस जंगल से होकर चलती थी। नदी की धारा के ज्यों-ज्यों निकट पहुँचते थे, पेड़-पौधों के स्थान पर दाभ और काँस की घनी झाड़ियाँ नज़र आती थीं।

इस इलाके में नदी-तट और प्रवाह के बीच काफ़ी फ़ासला था। कहीं-कहीं दो फर्लांग तक का फ़ासला था। पूर्व और पश्चिम की तरफ़ मीलों तक फैले हुए घने जंगली पेड़-पौधों और झाड़-झंखाड़ों से भरा वह वन-प्रदेश मनुष्यों के लिए दुर्गम प्रतीत होता था। लेकिन कोल्लिडम के इलाके में ही जन्मे-पले लोगों के लिए जंगल के अन्दर जाना शायद बड़ा सुगम होता होगा। यदि ऐसा न होता, तो उधर वह युवती झाड़-झंखाड़ को इधर-उधर हटाकर रास्ता बनाती हुई, इतनी द्रुत-गति से कैसे जा सकती थी?

हाँ, यह वही सजल-नयना युवती थी, जो जमींदारों वाली गली के बिचले घर के अगले कमरे में खिड़की के पीछे खड़ी थी। पिछले अध्याय की घटनाओं से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि यही कल्याणी होगी।

वह सत्रह-अठारह वर्ष की थी। उसके मुख पर लावण्य के साथ गांभीर्य भी मिश्रित था। उसकी चाल में सौन्दर्य के साथ अभिमान की भी झलक थी। उसके दीर्घ नयनों में शीतलता थी, किन्तु साथ-साथ अग्नि की-सी ज्वाला भी।

जंगल के अन्दर कहीं दूर पर किसी का गाना सुनाई दे रहा था। गायक के कण्ठ में व्यथा भरी थी। गीत के भाव और तर्ज भी उसके अनुरूप ही थे।

कल्याणी उसी तरफ़ चली, जहाँ से गाने की आवाज़ आ रही थी। कुछ दूर चलने पर जंगल में एक खुला स्थान दिखाई दिया। वहाँ एक जीर्ण मन्दिर था।

आश्चर्य की बात यह कि दस गज़ के आगे से भी इस बात का पता ही नहीं चलता था कि वहाँ कोई मन्दिर हो सकता है।

किसी जमाने में वह किसी ग्राम-देवता का मन्दिर रहा होगा। अब तो केवल उसके खण्डहर खड़े थे। टूटी-फूटी दीवारों की दरारों में झाड़ियाँ उग आई थीं। मिन्नतें मानने वाले किसी जमाने में मिट्टी के जो घोड़े-हाथी छोड़ गए थे, उनके टूटे-फूटे ढेर एक तरफ़ लगे थे। दूसरी तरफ़ साँपों के बड़े-बड़े बिल दिखाई दे रहे थे। संभवतः किसी जमाने में कोल्लिडम नदी में भयानक बाढ़ आई होगी और उसके कारण इस मन्दिर के खण्डहर बन गए होंगे। बाद में लोगों ने उसकी तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया होगा। कालान्तर में चारों तरफ़ से जंगल ने उसे घेर लिया होगा, जिससे लोग उस मन्दिर के अस्तित्व को ही भूल गए होंगे।

जीर्ण मन्दिर के द्वार पर एक चबूतरा था। उसके पास जामुन का एक बड़ा पेड़ था। पेड़ की शीतल छाया चबूतरे पर पड़ रही थी। मुत्तय्यन उस टूटे चबूतरे पर बैठा गा रहा था।

कल्याणी दबे पाँव चलकर धीरे से मुत्तय्यन के पीछे आई। अचानक उसने मुत्तय्यन की पगड़ी का छोर पकड़कर झटक दिया और भागकर जामुन के पेड़ के पीछे छिप गई।

मुत्तय्यन ने तब भी मुड़कर नहीं देखा। उसका होंठ दाँतों तले दबा हुआ था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह कुछ निश्चय पर पहुँचने का प्रयत्न कर रहा है। जब दूसरी बार कल्याणी ने पगड़ी का छोर खींचा, तो मुत्तय्यन ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया।

कल्याणी खिल-खिलाकर हँसने लगी। लेकिन सामने आकर मुत्तय्यन का चेहरा देखते ही उसकी हँसी बीच में ही रुक गई।

"कल्याणी ! यह कैसा पागलपन है ? आज तुम यहाँ क्यों आई ?" मुत्तय्यन ने पूछा।

कल्याणी का हृदय विदीर्ण सा हुआ जा रहा था।

"जानना चाहते हो मैं क्यों आई ? तुम्हारी ही खोज में आई। और क्या काम है मुझे ?" कल्याणी बोली।

"क्या, देवी जी मेरी खोज में आई ? बड़े आश्चर्य की बात है। अब तो आप बड़ी ठकुरानी बन गई हैं। इस ग़रीब की खोज में आने का आप क्यों कष्ट करें ? बेगम साहबा के दरवाजे पर तो मेरे-जैसे सैकड़ों चाकर सेवा-टहल के लिए तैयार खड़े होंगे। अरे रे ! मैंने तो अब तक देखा ही नहीं। गले में सोने का हार। कानों में हीरे के कर्णफूल ! कैसी जगमगाहट है, कैसी ज्योति है ! ओह ! आँखें

चौंधियाई जा रही हैं !''' ''"

कल्याणी थकी-माँदी-सी चबूतरे पर बैठ गई और व्यथित स्वर में बोली, "मुत्तय्या !''''''"

"मुत्तय्यन नहीं, बुद्ध कहो ।" मुत्तय्यन ने उसकी बात काटकर कहा ।

"जले पर नमक न छिड़को मुत्तय्या !"

मुत्तय्यन कुछ नहीं बोला । नीची निगाह किये अवाक् बैठा रहा ।

कल्याणी बोलती गई:—

"तुम कुछ इस तरह बात कर रहे हो, जैसे मैं ही अपराधिन हूँ । आख़िर मेरा क्या कसूर है ? तुमसे मिलने के लिए मैं आज पहली बार थोड़े ही आ रही हूँ ? कितने अरसे से कह रही हूँ कि चलो, दोनों यहाँ से कहीं दूर देश भाग चलें । तुममें इसकी हिम्मत नहीं, तो मैं क्या कर सकती थी ? अब भी समय है । अगर तुम अपना मन दृढ़ कर लो, तो मैं आज, अभी, इसी घड़ी, तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ । मेरे लिए इस संसार में तुमसे अधिक प्यारी वस्तु कोई नहीं है । बताओ, तैयार हो तुम ? बोलो न ! चुप क्यों हो ?"

मुत्तय्यन तीखे स्वर में बोला, "वाह ! बड़ी अच्छी सलाह है, ज़रूर ! हम दोनों तो मजे से भाग सकते हैं, लेकिन बेचारी अभिरामी का क्या होगा ? उसे कुएं में धकेलकर चले जायँ क्या ?"

"कुएं में क्यों धकेलें ? जब समय आयगा, कोई-न-कोई उससे ब्याह कर ही लेगा । जिसकी किस्मत में जो बदा है, वह होगा । एक की मुसीबत को दूसरा अपने सिर पर क्यों झेले ?"

"हाँ । एक की मुसीबत दूसरे को अपने ऊपर लेनी ही होगी । माँ ने मृत्यु-शय्या पर पड़े-पड़े मुझसे यह वचन लिया था कि अभिरामी की ऐसी सावधानी के साथ देख-भाल करूँ जिससे माता-पिता का अभाव उसे महसूस न होने पाय । मैं वचन-बद्ध हूँ । उसे नहीं भूलूँगा । मैं अभिरामी को छोड़कर नहीं आ सकता । तुम चाहो तो उस बूढ़े से ब्याह कर लो और सुखी रहो !"

कल्याणी की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं । वह उठकर खड़ी हो गई और उसने तीखे स्वर में पूछा, "क्या, यह बात आख़िरी है ?"

"जी हाँ । यह मेरा अन्तिम निर्णय है ।"

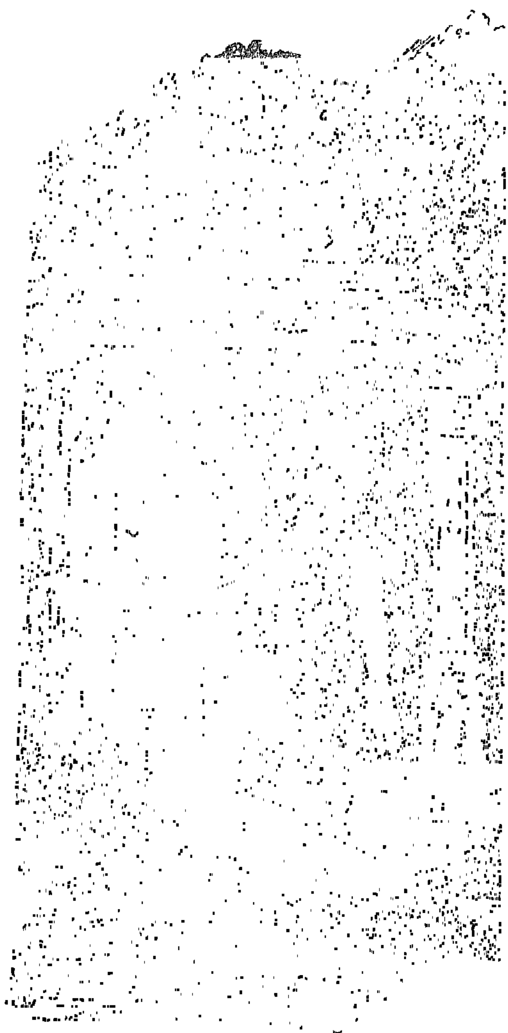
"तो फिर ऐसा ही हो । मैं बूढ़े से ही ब्याह कर लूँगी । तुम्हारे-जैसे कायर से सफ़ेद बालों वाले बूढ़े हज़ार दर्जे अच्छे !"

इतना कहकर कल्याणी तेज़ी के साथ वहाँ से चल दी । असीम क्षोभ और व्यथा के मारे उसकी आँखों से गरम-गरम आंसू छलक निकले । वह मुत्तय्यन पर

अपनी दुर्बलता प्रकट नहीं करना चाहती थी, शायद इसीलिए उसने एक बार भी मुड़कर नहीं देखा।



मुराव्यन उसके पीछे-पीछे पाँच-दस कदम तक चला। फिर दिल पर पत्थर रखकर लौट आया और जीर्ण-मन्दिर के चबूतरे पर हताश होकर बैठ गया।



मानव-हृदय की भी प्रवृत्ति कैसा विलक्षण है! जिनके प्रति प्रेम की कोई सीमा नहीं, उन्हीं पर हमें असीम क्रोध भी आता है। जिनका नाम सुनते ही हृदय स्निग्धता से द्रवित हो उठता है, वही जब सामने आते हैं, तब हमारे मुख से कठोर शब्द निकलते हैं। जिनके दर्शनों के लिए शरीर की नस-नस तरसती रहती है, उनके सम्मुख आने पर हम बरबस ऐसा व्यवहार करते हैं, मानो उनका आगमन हमें सर्वथा अप्रिय लगा हो। जिनके बिछुड़ने से हमें प्राणान्तक पीड़ा होती है, उनके मिलने पर हमारा हृदय हमें ऐसी बातें करने के लिए उकसाता है, जिनके कारण मिले हुए प्रेमी फिर बिछुड़ जाते हैं। सचमुच मानव-हृदय अत्यन्त विलक्षण है!

४

सिसकियों की गूँज

मुत्तय्यन, अभिरामी और दुर्भाग्य का सगा भाई था। उसके पिता का पुश्तैनी गाँव पूक्कुलम ही था और वहाँ उनकी कुछ सम्पत्ति भी थी। पर वह अंग्रेज़ी पढ़-लिखकर सरकारी नौकर बन गए थे। माल-विभाग में, तहसीलदार के दफ़्तर के क्लर्क के रूप में उन्होंने अपनी नौकरी शुरू की थी और धीरे-धीरे तरक्की करके डिप्टी कलक्टर के कार्यालय के प्रधान क्लर्क बन गए थे। इसी समय अचानक उनका देहान्त हो गया। मुत्तय्यन अभी आठवीं कक्षा में पढ़ रहा था। अभिरामी उस समय केवल सात ही वर्ष की थी।

पति का देहान्त होने पर मुत्तय्यन की माँ बच्चों को लेकर पूक्कुलम चली आईं। पूक्कुलम में उनकी पुश्तैनी जायदाद दस एकड़ जमीन थी। नदी-तट पर थी, और उसमें धान की खेती होती थी, इसलिए वह छोटा-सा परिवार उसके सहारे मजे से जीविका चला सकता था।

पर मुत्तय्यन के दुर्भाग्य ने यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ा।

उनके गाँव लौटने के दूसरे वर्ष कोल्लिडम नदी में भयानक बाढ़ आई। बाढ़ का पानी किनारा तोड़ता हुआ खेतों पर बह चला। फलतः कइयों की भूमि तो स्वर्ण-प्रसू बन गई। लेकिन कुछ औरों के खेत रेत से भर गए और खेती के लायक न रहे। ऐसे खेतों में मुत्तय्यन के भी खेत शामिल थे। जहाँ साल में दो फसलें होती थीं और फी एकड़ तीस-चालीस मन की पैदावार थी, वही ज़मीन बालू का ढेर बन गयी।

परिणामतः मुत्तय्यन का परिवार निःसहाय बन गया। जब मुत्तय्यन के पिता जीवित थे, तभी गाँव के उनके रिश्तेदार उनसे जलते थे। मुत्तय्यन भी जरा मुँहफट था, अतः गाँव वाले उसे भी उतना पसन्द नहीं करते थे। इस कारण जब उस पर विपदा आई, किसी ने उसके प्रति सहानुभूति नहीं दिखाई। लोगों ने सोचा, "अकड़ता था न छोकरा, अब उसी का फल मिला। भुगतने दो!" और फिर देहातों में कौन किसकी मदद कर सकता था? उन दिनों तो धान का भाव उतनी ही तेज़ी से गिरता जा रहा था, जितनी तेज़ी से कुछ साल पहले बढ़ा था। अतः अपने-अपने घरों में दिया जलाना ही हर एक के लिए कठिन हो रहा था, मन्दिर में

कौन दिया बालता ?

करीब दो साल तक मुत्तय्यन ने रेतीली ज़मीन के साथ माथा-पच्ची की। जब उससे कोई फायदा नहीं निकला, उसे फिर से स्कूल जाने और पढ़-लिखकर नौकरी करने की इच्छा हुई। उसकी माँ के पास जो दो-एक गहने बचे थे, वे भी इस कारण बिक गए। उनके पैसे से मुत्तय्यन फिर आठवीं कक्षा में भर्ती हुआ। पर वर्ष के अन्त में वह परीक्षा में अनुत्तीर्ण रह गया।

इसमें कोई आश्चर्य तो नहीं। मुत्तय्यन का मन जीवन के संघर्ष में चोट खा-खाकर प्रौढ़ हो चुका था। अतः आठवीं कक्षा की तोतली किताबों में उसे कोई दिलचस्पी नहीं हो सकी थी।

उस साल स्कूल में पढ़ते समय कुछ अमीर घरानों के लड़कों से उसकी दोस्ती हो गई थी। उनकी संगति के फलस्वरूप उसने मोटर चलाना सीख लिया था। जब परीक्षा में असफलता हुई, तो उसने पढ़ना छोड़ दिया और एक रईस के यहाँ ड्राइवर बनकर काम करने लगा। पर मुत्तय्यन का दुर्भाग्य कि उन दिनों बड़े-बड़े रईस लोग भी अपनी मोटर गाड़ियों से पिंड छुड़ाने की फिक्र में रहते थे। अतः किसी भी रईस के यहाँ वह छः मास से अधिक समय ड्राइवरी नहीं कर सका। अन्त में वह जिन रईस के यहाँ ड्राइवर लगा था, उनके साथ किसी बात पर उसकी भारी झड़प हो गई। तब उसने ड्राइवर का काम किसी के यहाँ न करने का प्रण कर लिया और गाँव लौट आया।

इस तरह एक के बाद एक जो संकट आये, उनके निरन्तर प्रहार से मुत्तय्यन की माँ का मन चूर हो गया था। मुत्तय्यन के गाँव लौटने के कुछ ही दिन बाद, पुत्री और पुत्र को इस संसार में बिलकुल अकेले छोड़कर वह चल बसीं।

*** *** ***

मुत्तय्यन, जो दूसरी बार स्कूल में पढ़ने को गया था, ज़मीन के उजड़ जाने के अलावा उसका एक और भी कारण था। वह था कल्याणी से उसका मिलन।

जिस साल कोल्लिडम नदी में बाढ़ आई थी, तब एक दिन वह बैल हाँकने के लिए बैल की लकड़ी काटने के इरादे से नदी-तट के जंगल में जा रहा था। अचानक किसी के घबराहट के साथ चिल्लाने की आवाज़ आई—"हाय हाय ! बचाओ, बचाओ !" आवाज़ किसी छोटी लड़की की-सी थी। मुत्तय्यन दौड़कर उस दिशा में गया जहाँ से आवाज़ आई थी और पिछले अध्याय में वर्णित जीर्ण मन्दिर में पहुँचा। वहाँ एक ऐसा दृश्य उसके सामने आया, जिससे उसे आश्चर्य और घबराहट एक साथ हुई।

जामुन के पेड़ की एक डाल पर कल्याणी बैठी थी। उसके नीचे जीर्ण

मन्दिर के मंडप पर एक बड़ा बन्दर बैठा था। वह उस डाल पर छलाँग लगाने की कोशिश में था, जिस पर कल्याणी बैठी थी।

मुत्तय्यन ने जोर से डाँटा, तो बन्दर ने उसे देखकर दाँत निकाले और खुरखुराता हुआ भाग गया।

इसके बाद मुत्तय्यन ने कल्याणी को डाँटकर कहा, "उतर आओ नीचे!" कल्याणी उसे देखकर हँस पड़ी और आराम से जामुन तोड़ने लगी। उस समय उसकी आयु मुश्किल से ग्यारह-बारह साल की होगी।

मुत्तय्यन के बार-बार डाँटने-धमकाने के बाद कल्याणी पेड़ पर से उतरी। मुत्तय्यन उसके कोमल कानों को पकड़कर एंठता हुआ कठोर स्वर में बोला, "अब के इधर कभी न आना! ए! नहीं आओगी न?"

"यह जंगल तुम्हारे बाप का थोड़े ही है? तुम कौन होते हो मुझे यहाँ आने से मना करने वाले?" कल्याणी नन्हीं त्योरियाँ चढ़ाकर बोली।

मुत्तय्यन उसका कान एंठता ही गया। "यह सब अकड़ यहाँ नहीं चलेगी। जब तक तुम नहीं कहोगी कि अब यहाँ नहीं आऊँगी, तब तक नहीं छोड़ूँगा!" वह बोला।

"हाय री किस्मत! एक बन्दर से पिंड छूटा, तो दूसरे बन्दर के हाथ फँस गई!" कल्याणी ने मुँह बनाकर कहा।

यह सुनते ही मुत्तय्यन हँस पड़ा। कल्याणी भी हँस पड़ी। वह वीरान जंगल उन दोनों की मधुर हँसी से गूँज उठा।

इससे पहले भी मुत्तय्यन ने कई बार कल्याणी को देखा था और बात भी की थी। परन्तु आज उसके रूप-रंग में और बातों में न जाने क्यों उसे कुछ नवीन सौन्दर्य दृष्टिगत हुआ। उस घड़ी से उसका हृदय कल्याणी का दास बन गया।

दिन बीतते गए और उन दोनों का प्रेम भी बढ़ता गया। मुत्तय्यन ने अनुभव किया कि कल्याणी से वैवाहिक बन्धन में एक हुए बिना उसे जीवन में शान्ति नहीं मिलेगी। पर इसमें एक बड़ी बाधा थी। कल्याणी अमीर घराने की थी, जब कि मुत्तय्यन ग़रीब था। ले-देकर जो जायदाद थी, वह भी दो कौड़ी की नहीं रह गई थी। यही सब विचार करके मुत्तय्यन ने फिर पढ़ाई जारी रखने का निश्चय किया था। सोचा, यदि पढ़-लिखकर बड़े पद पर पहुँच जाऊँ तो फिर कल्याणी का मेरे साथ ब्याह कराने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। अपने को कल्याणी का पति बनने योग्य बनाने के ही उद्देश्य से वह दुबारा स्कूल गया था।

पर प्रारब्ध ने उसका साथ छोड़ दिया। हे ईश्वर! अगर उस कमबख़्त अंग्रेज़ी के पर्चे में चार नम्बर ज़्यादा आ जाते!

कल्याणी के रुष्ट होकर चल देने के बाद, जीर्ण मन्दिर के चबूतरे पर बैठे बैठे, मुक्तध्यल को कल्याणी के साथ उसी स्थान पर हुए प्रथम मिलन की बातें याद आईं। हाथों से मुँह ढाँपकर वह बच्चे की तरह फूट-फूट कर रोने लगा। दूर पर जंगल में जाती हुई कल्याणी की सिसकियाँ उसके रुदन की प्रतिध्वनि-सी हवा में बहती आईं।

५

छिपकली बोली

अभिरामी के शिशु-हृदय के महा साम्राज्य में मुक्तथयन एक चक्राधीश बनकर राज करता था।

एक दुधमुँही बालिका। माँ-बाप, दादा-दादी, मामी-मौसी, फूफी, कोई नहीं था उसके। इन सब बन्धु-बान्धवों पर जो स्नेह वह दिखा सकती थी, वह सारा उसने अपने भाई पर ही केन्द्रित कर रखा था।

जब वह नन्हीं-सी बच्ची थी, और लड़खड़ाती चलती थी, तब भी वह भैया पर जान देती थी। वह स्कूल जाता था, तो वह भी साथ चलने के लिए मचलती। भैया के स्कूल से लौटने पर उसके लिए घर का दरवाज़ा खोलने का श्रेय केवल उसी को मिलना चाहिए। अगर किसी और ने दरवाज़ा खोल दिया, तो बस, घर में विप्लव मच जाता था।

घर में मिठाई मिले, तो वह उसे तुरन्त नहीं खाती थी। भैया के स्कूल से लौटने तक उसे सँभालकर रखती थी और उसे देने के बाद ही आप भी खाती थी। रात को भैया के हाथ से दूध मिले, तभी पीती थी, वरना नहीं।

भैया की गालियाँ व मार-पीट भी उसे प्यारी लगती थीं। केवल एक ही बात ऐसी थी जिसे वह सह नहीं सकती थी। अगर भैया उसके साथ 'कुट्टी' कर दे—अर्थात् बोलने से इन्कार कर दे—तो वह उससे सहा नहीं जाता था। असह्य दुःख से उसका हृदय फट-सा जाता। रो-रोकर आँखें एकदम लाल हो जातीं।

जन्म से इस तरह रक्त-सम्बन्ध के स्निग्ध सूत्र में बँधे हुए ये बच्चे जब संसार में अनाथ छूट गए, तो उनका पारस्परिक प्रेम हज़ार गुना बढ़ गया।

अभिरामी ने अनुभव किया कि वह भैया, जो उसके शिशु-हृदय के सारे प्रेम पर एकाधिकार रखता था, इधर कुछ दिनों से ज़रा अनमना-सा हो गया है। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि भैया के और उसके बीच में कोई मानसिक दीवार खड़ी हो गई है।

अक्सर मुक्तथयन विचार-मग्न हो जाता। अभिरामी की कोई बात उसके कानों में नहीं पड़ती। वह पूछती, "क्या सोच रहे हो भैया?" तो कभी झिड़ककर कह देता, "उससे तुमसे मतलब?" जब वह कोई मज़ाक की बात कहती, तो

झल्लाकर बोलता, "बाज़ भी आओ अपने मज़ाक से !" जब वह हँसती, वह साथ नहीं हँसता था।

अभिरामी अब दुनिया की बातें कुछ-कुछ समझने लगी थी। उसे यह मालूम था कि उनके घर का हाल ठीक नहीं है। भैया को कहीं नौकरी नहीं मिल रही है। परन्तु उसकी समझ में नहीं आता था कि इन सब बातों के बावजूद भैया को अपनी बहन के साथ रूखा व्यवहार क्यों करना चाहिए ?

छुटपन में कानों में पड़ी कुछ बातें उसे याद आती थीं : "जब से यह मनहूस लड़की पैदा हुई, परिवार के बुरे दिन भी शुरू हो गए।" यह सच तो नहीं ? भैया का भी यही विचार हो सकता है, क्या ?

अभिरामी का यह दृढ़ मत था कि बुद्धिमत्ता, चतुराई और कार्य-कुशलता में भैया का सानी संसार-भर में क्या, तीनों लोकों में कोई नहीं हो सकता। अतः वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि भैया को नौकरी न मिलने का कारण मेरी बदकिस्मती ही है।

एक दिन अभिरामी ने मुत्तय्यन के सामने इसकी चर्चा छेड़ी भी थी। लेकिन उसका जो परिणाम हुआ उसकी याद करने पर अभिरामी का सारा शरीर अब भी सिहर उठता था। अभिरामी ने उस दिन कहा था, "पहले भी लोग कहा करते थे कि मेरे पैदा होने के ही कारण तुम्हें यह सब मुसीबत झेलनी पड़ी। मैं ही तुम्हारे सारे दुर्भाग्य की जड़ हूँ......"

वह बात पूरी भी न कर पाई थी कि मुत्तय्यन ने चाबी के गुच्छे के साथ लटकते हुए अपने चाकू को खोल लिया और कड़ककर बोला, "देखो अभिरामी ! अगर तुमने फिर कभी ऐसी बात की, तो इसी चाकू से तुम्हें मार डालूँगा और आत्म-हत्या कर लूँगा।"

उस घटना के बाद अभिरामी अपने दुर्भाग्य की चर्चा कभी नहीं छेड़ती। पर भैया की अन्यमनस्कता से उसे असीम व्यथा पहुँचती थी। ख़ासकर इधर कुछ दिनों से वह कल्याणी के बारे में भैया से खुलकर बातें करने के लिए तरसती थी। वह जानती थी कि कल्याणी का विवाह मुत्तय्यन के साथ होना चाहिए था। इस कारण जब उसने सुना कि कल्याणी कहीं और ब्याही जा रही है, तो उसके क्षोभ का ठिकाना न रहा। अपने मन की बात मुत्तय्यन को बताने के लिए वह छटपटा उठती थी। जी चाहता था कि कल्याणी को, उसके पिता को और उसके होने वाले पति को जी भरकर गालियाँ दूँ। मगर मुत्तय्यन बात भी करने दे, तब न ? वह तो अब अपनी बहन को पास फटकने तक नहीं देता था।

❀ ❀ ❀ ❀

कल्याणी के रूठकर चले जाने के बाद दो दिन तक मुत्तथ्यन घर से बाहर नहीं निकला। अस्वस्थता का बहाना करके घर पर ही पड़ा रहा। तीसरे दिन उठकर बाहर गया और नदी, तालाब और खेतों का एक खासा लम्बा चक्कर काटने के बाद घर लौटा।

ज्यों ही वह घर के अन्दर आया, अभिरामी उसके सामने आकर खड़ी हो गई। उसके दोनों हाथ पीठ की तरफ छिपे हुए थे। बोली, "बताओ तो भैया! मेरे हाथों में क्या है?"

"अगर बता दूँ, तो क्या दोगी?" मुत्तथ्यन ने पूछा।

"बता दोगे तो मैं वह चीज़ तुम्हें दूँगी जो मेरे हाथ में है। अगर न बता सको, तो तुम्हें चाहिए कि मुझे एक ग्रामोफोन लेकर दो। मंजूर है?"

"हाँ हाँ। मंजूर!"

"तो बताओ, मेरे हाथ में क्या है?"

"देखो, मैं बता ही दूँगा, समझीं?"

"हाँ, हाँ। बताते क्यों नहीं?"

"तुम्हारे हाथ में उँगलियाँ हैं। अब लाओ तो। अपनी उँगलियाँ अलग निकालकर मुझे दो।"

"जाओ भैया! तुम्हें तो सदा मज़ाक ही सूझा करता है। कितने अरसे से ग्रामोफान के लिए कह रही हूँ। तुम तो बातों में ही टालते जाते हो।" अभिरामी तुनककर बोली और दो चिट्ठियाँ मुत्तथ्यन के हाथ में रखकर अन्दर रसोईघर में चली गई। मन-ही-मन प्रसन्न थी कि भैया अब ज़रा हँसने-बोलने तो लग गया।

मुत्तथ्यन झूले पर बैठ गया और एक लिफ़ाफ़ा खोला। लिफ़ाफ़े पर डाकखाने की कोई मुहर नहीं थी। अन्दर से विवाह का निमन्त्रण-पत्र निकला। उसे देखते ही मुत्तथ्यन की त्योरियाँ चढ़ गईं। चिट्ठी को उसने हज़ार टुकड़ों में फाड़कर फेंक दिया और दूसरा लिफ़ाफ़ा खोला। उस चिट्ठी को पढ़ने के बाद उसका मुख कमल की भाँति खिल उठा।

ठीक इसी समय बाहर से मोटरों के भोंपू की आवाज़ आई। साथ-साथ छकड़े वालों का भी शोर सुनाई देने लगा। रसोईघर तक में यह आवाज़ पहुँची, तो अभिरामी उत्सुकता के साथ बाहर निकल आई। बाहर के कमरे में पल-भर के लिए रुकी, तो उसकी नज़र उस चिट्ठी के बिखरे हुए टुकड़ों पर पड़ी जिसपर मुत्तथ्यन ने अपना गुस्सा उतारा था। उसने स्नेहभरी आँखों से भाई को देखकर सिर हिलाया और बाहर गई। मिनट भर बाद ज़ोर से पुकारकर कहा, "भैया, भैया! आओ तो। दौड़कर आओ! दुलहिन को ले जाने के लिए मोटरगाड़ी आई है। मालूम होता है, सब

लोग ब्याह के लिए रवाना हो रहे हैं। जल्दी आओ तो! देखो तो ज़रा!"

यह सुनते ही मुत्तय्यन फुर्ती से बाहर गया। अभिरामी दहलीज के बाहर खड़ी थी। मुत्तय्यन ने उसका हाथ पकड़कर अन्दर घसीटा और उसे कमरे में पटक



दिया। फिर दरवाजे को धड़ाम से बन्द करके कुण्डा लगाया। इसके बाद अभिरामी को घसीट लाकर झूले पर बिठाया। अभिरामी आँखें मलती हुई रोने लगी।

"रो क्यों रही हो पगली?" मुत्तय्यन ने पूछा।

"तुम नाहक मुझ पर बिगड़ते हो। आखिर मैंने क्या कसूर किया है?"

"बस, इसी बात पर रोने लग गई? बावली कहीं की। तुम पर मुझे ज़रा भी गुस्सा नहीं है। तुम बाहर खड़ी रहोगी, तो वे कम्बख्त न जाने क्या समझ बैठें। मैं नहीं चाहता कि उनकी नज़र तुम पर पड़े।"

अभिरामी ने झट आँसू पोंछ लिए और कुछ मुसकराहट के साथ बोली, "नहीं भैया! मैंने सोचा, आख़िर ब्याह कल्याणी दीदी का ही है न! देखने में क्या बुरा है·····?"

मुत्तय्यन ने बात काटकर कहा, "अभिरामी! तुम तो सदा कल्याणी-कल्याणी की रट लगाती रहती हो। और कोई बात ही तुम्हें नहीं सूझती क्या?······चलो, जाने भी दो। जानती हो अभिरामी, हम इस गाँव को छोड़कर जा रहे हैं। मुझे नौकरी मिल गई है।"

"नौकरी मिल गई? कौन सी? कलक्टर की?"

"कलक्टर की नौकरी? वाह वाह! उसके लिए तो कहीं सेंध लगानी पड़ेगी। अगर मुझे कलक्टर बनना होता, तो पिताजी क्यों चल बसते? हाँ, तुम्हारा होने वाला पति शायद कलक्टरी करेगा। मुझे तो सिर्फ मुनीम का काम मिला है। तिरुपरनकोविल के मठ में। यह देखो! चिट्ठी मिली है कि फ़ौरन रवाना हो जाओ।" कहते-कहते मुत्तय्यन ने चिट्ठी अभिरामी के हाथ में दी।

चिट्ठी पढ़ने के बाद अभिरामी ने उत्सुकता के साथ पूछा, "कौन सा तिरुपरन कोविल, भैया? वही तो नहीं, जहाँ पिताजी के साथ एक बार हम लोग नौका-विहार का उत्सव देखने गये थे? रहंकला पर चढ़कर घूमे थे और फल-फूल, मिठाई वगैरह लेकर आये थे? याद है न तुम्हें? क्या वही है यह तिरुपरन कोविल?"

"हाँ, वही। इस मनहूस गाँव को अलविदा कहकर हम कल ही निकल चलें। फिर कभी नहीं लौटेंगे यहाँ। इस गाँव की सूरत तक नहीं देखेंगे।" मुत्तय्यन ने कहा।

दीवार पर से एक छिपकली ठीक उसी समय बोली, "टुक, टुक, टुक!"

"वह छिपकली बोली, भैया! शकुन अच्छा है," अभिरामी ने कहा।

मनुष्य समझता है कि संसार-भर के सभी जीव-जन्तु उसी के लिए सिरजे गए हैं। यदि हम मान लें कि सचमुच ही उस छिपकली ने मुत्तय्यन के भविष्य की सूचना दी, तो यही न समझना होगा कि उसने मुत्तय्यन की खिल्ली उड़ाई?

६

टूटा किला

कोल्लिडम नदी की तटवर्ती सड़क। दोनों तरफ़ इमली के विशालकाय वृक्ष। उन गगन-चुम्बी वृक्षों की घनी शाखाएँ एक दूसरी से लिपटकर इस क़दर उलझी हुई थीं और ऐसी सुखद, शीतल छाया दे रही थीं मानो बड़ा भारी मंडप बना हो। सड़क के एक ओर दूर क्षितिज तक फैले हुए धान के खेत। बीच-बीच में पानी की छोटी-छोटी नहरें और नाले। कुछ खेतों में किसान हल चला रहे थे। कुछ में धान के पौधे रोपे जा रहे थे। कुछ और खेतों में हरे-हरे धान के पौधे लहलहा रहे थे। स्थान-स्थान पर नारियल के शीत-श्यामल बगीचे शोभायमान हो रहे थे।

उस रमणीक पथ पर, दुपहर के समय, एक छकड़ा धीरे-धीरे जा रहा था। उसमें एक परिवार के लिए आवश्यक सामान लदा था। छकड़े के पीछे अभिरामी पैर लटकाये बैठी थी।

उस समय, उस शीतल, छायामय पथ पर यात्रा करने में बड़े-बूढ़ों को भी अपार आनन्द आ सकता था। फिर शिशु-हृदय के आह्लाद की तो बात ही क्या? अभिरामी मस्त थी और "राधे कृष्ण बोल मुख से" की तर्ज पर एक स्वरचित गीत गाती जा रही थी।

बचपन में दोनों भाई-बहन जब शहर में पल रहे थे, तभी से उन्हें गाने का शौक था और थोड़ा सा अभ्यास भी हो गया था। गाँव चले आने के बाद अभिरामी को विधिवत् संगीत-शिक्षा प्राप्त करने का अवसर तो नहीं मिल सका, फिर भी वह इधर-उधर सहेलियों के मुँह से या ग्रामोफ़ोन के रेकार्ड सुनकर नये-नये गीत सीखती ही रहती थी।

संगीत की भी शक्ति कैसी अवर्णनीय है! आनन्दानुभव के लिए जैसे संगीत सुन्दर साधन बनता है, वैसे ही दुःख में सान्त्वना पाने के लिए भी वही अनुपम साधन होता है।

मुत्तय्यन ज़रा दूर पर गाड़ी के पीछे-पीछे पैदल चला आ रहा था। वह भी गा रहा था, जिसका आशय कुछ इस प्रकार था।

"अपनी खातिर महल बनाया।
आप ही जाकर जंगल सोया॥
इस तन-धन की कौन बड़ाई?"

मुत्तय्यन का कंठ गीत गा रहा था, परन्तु उसके मन में तरह-तरह के विचारों की तरंगें आन्दोलित हो रही थीं। जिस गाँव के कण-कण से उसका हार्दिक स्नेह था, जहाँ के हर एक पेड़ और पौधे के प्रति उसके हृदय में घनिष्ठ प्रेम हो गया था, उससे सदा के लिए मुँह मोड़कर वह अब जा रहा है—यह विचार आते ही उसकी आँखें भर आईं। परन्तु साथ ही इस विचार से तनिक सान्त्वना भी मिली कि अब नौकरी मिल गई है और भविष्य की चिन्ता से मुक्त होकर निश्चिन्त जीवन बिताया जा सकता है।

किन्तु उस भविष्य के बारे में कैसे-कैसे सुखद स्वप्न उसने देखे थे! कैसे-कैसे हवाई किले बाँधे थे! अब वे सब क्या हुए? सभी आशाओं पर पानी फिर गया। सभी किले टूट-फूटकर चूर हो गए—मिट्टी में मिल गए। अब कल्याणी का जीवन अलग, उसका जीवन अलग। अब उनको एक करने का विचार तक मन में लाना बेकार है।

यह विचार मुत्तय्यन के लिए असह्य हो उठा। वह दौड़कर गाड़ीवान के पास गया और बोला, "भैया सुब्बरायन! थोड़ी देर मैं गाड़ी हाँकता हूँ, तुम ज़रा उतरकर पैदल चलोगे?"

गाड़ीवान उतर पड़ा, तो मुत्तय्यन आगे बैठ गया और बैलों को डाँट-फटकारकर सरपट दौड़ाने का प्रयत्न करने लगा।

यह देखकर गाड़ीवान घबरा गया। वह सड़क बड़ी ख़तरनाक थी। दोनों तरफ़ गहरी ढलान थी। एक तरफ़ नदी की घाटी। दूसरी तरफ़ नहर। बैल ज़रा भी अकड़ गए, तो बस, गाड़ी की खैर नहीं थी। वह बड़ा पछताया कि ऐसी सड़क पर ऐसे गैर-ज़िम्मेदार लड़के के हाथों बागडोर पकड़ा दी।

"छोटे बाबू! ओ छोटे बाबू! ज़रा रोको तो! भगवान् भला करे तुम्हारा। रोको तो ज़रा!" यों चिल्लाता हुआ वह बेचारा गाड़ी के पीछे-पीछे दौड़ा।

लेकिन गाड़ी के इस तरह तेज़ चलने पर अभिरामी की खुशी और बढ़ी। पीछे गाड़ीवान अपने भारी शरीर को लेकर दौड़ा आ रहा था। उसे देखकर अभिरामी खिलखिलाकर हँस पड़ी। अचानक न जाने उसे क्या बात याद आ गई, उसकी हँसी दस-गुनी बढ़ गई। वह हँस-हँसकर लोट-पोट हो गई।

मुत्तय्यन ने मुड़कर बहन की तरफ़ देखा और पूछा, "अरी पगली! हंस क्यों रही हो?"

"भैया, भैया! सुब्बरायन की तोंद देखकर मुझे एक बात याद आ गई। बस, मुझसे हँसी रोकी नहीं गई," अभिरामी बोली।

"बस, अब रहने भी दो; कहीं दोनों में मोच न आ जाय! हाँ, इतना बता दो कि वह कौन सी बात थी?" मुत्तय्यन ने कहा।

"बता दूँ भैया? कल्याणी दीदी से जिनकी शादी हो रही है, लोग कहते हैं, उनकी तोंद बड़ी भारी है। आज ही थी न शादी उसकी? हाँ, इस समय मांगल्यसूत्र-धारण हो रहा होगा।......"

अगली घड़ी घटना-चक्र द्रुतगति से घूमा।

मुत्तय्यन के मानस-पट पर पचास वर्ष का एक वृद्ध कल्याणी के सुन्दर कंठ पर मांगल्य-सूत्र पहनाता हुआ दिखाई दिया। वह दृश्य देखकर वह आपे से बाहर हो गया। दोनों बैलों को उसने खूब बेंत लगाई और दूसरे ही क्षण गाड़ी से कूद पड़ा, मानो उस वृद्ध को मांगल्य-धारण करने से रोकने जा रहा हो!

गाड़ीवान सुब्बरायन चिल्ला उठा, "हा दैव! बेड़ा डूब गया!" अभिरामी को ऐसा लगा जैसे आसमान टूटकर उसके सिर पर गिर पड़ा हो।

गाड़ी उलट गई!

७

लाडली बेटी कल्याणी

उस इलाके भर में यह अफ़वाह थी कि पूङ्गुलम के पास कोल्लिडम नदी के तटवर्त्ती जंगलों में एक वनदेवी का निवास है।

नदी में प्रवाह जब काफ़ी होता था और जिला-कलक्टर और एग्ज़ीक्यूटिव इञ्जिनियर-जैसे अधिकारीगण उधर दौरे पर आते, तो वे नदी किनारे के साथ-साथ नावों में सफ़र किया करते थे। ऐसे अवसरों पर कभी-कभी वह वनदेवी उन्हें दर्शन देती और उसे देखकर वे आश्चर्य-चकित हो जाते।

कभी वह वनदेवी किनारे पर बैठी, नदी के प्रवाह में पैर लटकाये दिखाई पड़ती। ज्यों ही नाव उसे नज़र आती, त्यों ही वह उठकर भाग जाती और काँस की घनी झाड़ियों में छिप जाती। कुछ और मौकों पर वह काँस की झाड़ी में सारा शरीर छिपाये खड़ी रहती, केवल उसका मन्दस्मित वदन-कमल झाड़ी के बाहर दृष्टिगत होता। फिर कभी दूर के किसी पेड़ पर बैठे, नाव के यात्रियों को देखकर मुँह बनाती।

लेकिन पूङ्गुलम के लोगों से कोई इस वनदेवी की चर्चा करता तो वे ठहाका मारकर हँसते और कहते, "अजी, वनदेवी-वनदेवी कुछ नहीं। अपने मँझले ज़मींदार की बेटी कल्याणी नदी-किनारे घूम रही होगी।"

कल्याणी जब नन्हीं सी बच्ची थी, तभी उसकी माँ का देहान्त हो गया था। उसके बाद वही नदी-प्रदेश उस बालिका की माँ बनकर उसे पालता था।

दिन का अधिकांश समय, कल्याणी नदी-किनारे पर, या नदी के पास वाले वन-प्रदेश में ही बिताया करती थी। एक उच्च-कुल की लड़की का इतना स्वच्छन्द होना, उस इलाके के लिए आश्चर्यजनक बात तो थी ही। पर उसका उचित कारण था।

कल्याणी की माँ के देहावसान के बाद उसके पिता चिदम्बरम् पिल्लै ने दूसरी शादी कर ली थी। पहली पत्नी से उनके एक ही सन्तान थी और वह थी कल्याणी। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि वह उस बेटी पर जान देते थे। गाँव-भर के लोग कहा करते थे कि किसी पिता को अपनी बेटी को इस तरह सिर चढ़ा रखना पहले कभी देखा-सुना नहीं गया।

सौतेली माताएँ अक्सर अपनी सौत के बच्चों को सताया करती हैं। पर चिदम्बरम् पिल्लै के घर में यह लोक-रीत नहीं चलती था। बल्कि बात बिलकुल उल्टी ही थी। कल्याणी की बात उस घर के लिए कानून थी। उसकी बात की उपेक्षा करने का किसी में साहस नहीं था। सौतेली माँ खुद उससे डरती थी।

अपनी बेटी के प्रति चिदम्बरम् पिल्लै का अपार प्रेम ही इस स्थिति का मुख्य कारण था, अवश्य। लेकिन इस बात को भी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि कल्याणी की अपनी अलग सम्पत्ति का होना भी इसका एक कारण था।

स्त्री-धन के रूप में कल्याणी की माँ छः एकड़ ज़मीन और पाँच हज़ार रुपये के गहने साथ लाई थी। अब इस सम्पत्ति पर कल्याणी ही का अधिकार था। इस बात के कारण, जैसे घर में, वैसे ही बाहर उसका बहुत सम्मान होता था। उसकी स्वच्छन्दता का एक मुख्य कारण यह भी था।

दूसरा ब्याह करने के बाद चिदम्बरम् पिल्लै का परिवार बढ़ने लगा। बच्चों की संख्या में लगभग प्रति वर्ष एक की वृद्धि होती गई। दूसरी तरफ उनकी आर्थिक स्थिति दिन-पर-दिन बिगड़ती गई। धान का भाव और ज़मीन का भाव शीघ्रता से गिरता गया। फलस्वरूप उनके ऋण और ब्याज में तेज़ी से वृद्धि होती गई।

तिस पर कोल्लिडम की बाढ़ में उनकी ज़मीन का एक भाग नष्ट हो गया था। उसे सुधारने के प्रयास में कर्ज़ा और बढ़ा। आख़िर जब स्थिति बहुत ही संकट-मय हो गई, तो कल्याणी की धरोहर को बेचने के सिवा उनके लिए और कोई चारा नहीं रह गया।

कल्याणी के गहने बेचते समय चिदम्बरम् पिल्लै का विचार था कि बाद में स्थिति सुधर जाने पर नये सिरे से गहने बनवा देंगे। यदि किस्मत ने साथ दिया होता, तो वे वैसा करते भी। पर दिन-पर-दिन दरिद्रता बढ़ती ही गई। हर साल लगान अदा करना ही पहाड़ लगता था। जीविका चलाना कठिन हो गया था। ऐसी हालत में गहने कहाँ से बनवाये जाते?

आख़िर कल्याणी विवाह-योग्य हुई। हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि चिदम्बरम् पिल्लै के निर्मल मन में अब एक कलंक की कालिमा प्रवेश कर ही गई। वह यह सोचने लगे कि कल्याणी का ब्याह किसी ऐसे धनी के साथ कर दिया जाय, जो उसकी सम्पत्ति की माँग न करे।

इसी उद्देश्य से वह कई नौजवान वरों को टालते रहे।

आखिर तामरैओडै (कमल-नहर) ज़मींदार के यहाँ से ब्याह की बातचीत के लिए जब लोग आये, तो चिदम्बरम् पिल्लै ने झट निश्चय कर लिया कि

इन्हीं के साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहिए।

कल्याणी के प्रति उसके पिता के मन में अपार प्रेम था, अवश्य!

तामरै ओडै के पचास वर्षीय ज़मींदार के साथ कल्याणी का विवाह कर देने का जब उन्होंने निश्चय किया था, तब लेश-मात्र भी उनकी यह इच्छा नहीं थी कि बेटी के सुख की बलि चढ़ाकर मैं स्वयं सुखी रहूँ। उन्होंने सोचा, धनी खानदान है, आदमी अच्छे हैं, ऐसी जगह शादी हो जाय तो कल्याणी सुखी रहेगी। इन्हीं अच्छाइयों की तरफ अधिक ध्यान देने के कारण उन्होंने उनकी बुराइयों की तरफ ध्यान ही नहीं दिया।

कल्याणी के ब्याह के सिलसिले में उन्हें बिचारे मुत्तय्यन का कभी खयाल ही नहीं आया। गाँव के कुछ लोगों ने उसके नाम का ज़िक्र किया भी था। लेकिन उन्होंने उन्हें एकदम झाड़ दिया। "गंगा के पानी से मुँह धो लीजिए, गंगा के पानी से!" बस, मुत्तय्यन का नाम लेने वालों को उनका एक-मात्र जवाब यही होता था। वाह! तामरै ओडै के ज़मींदार के साथ शादी हो जाय, तो कल्याणी के इशारे पर चलने के लिए मुत्तय्यन-जैसे सैकड़ों टहलुए हर वक्त तैयार रहेंगे। मुत्तय्यन की क्या बिसात है?

उमर की उन्होंने उतनी परवाह नहीं की। कौन सी बड़ी बात है? क्या, उन्होंने खुद चालीस साल की उमर के बाद शादी नहीं की थी? दूसरी पत्नी पर वह जान नहीं देते? किस विधान में लिखा है कि जवान लड़कों से शादी करने वाली लड़कियाँ ही सुखी रहती हैं?

इस तरह की हज़ार दलीलों से उन्होंने अपनी अन्तरात्मा को समाधान दे लिया था। फिर भी इस बात का उन्हें सदा भय लगा रहता था कि कल्याणी कहीं हठ न ठान बैठे! उससे कुछ कहते भी नहीं बनता था। इस बीच में शादी की तैयारियाँ बाक़ायदा हो रही थीं। चिदम्बरम् पिल्लै ने सोचा, कल्याणी को सब बातें मालूम तो होंगी ही। यदि उसे कुछ कहना है, तो खुद ही आकर कहे। पर कल्याणी ने कभी भूलकर भी इस बात का जिक्र नहीं किया। इससे चिदम्बरम् पिल्लै की आशंका बढ़ी कि कहीं वह ऐन वक्त पर हठ न ठान ले।

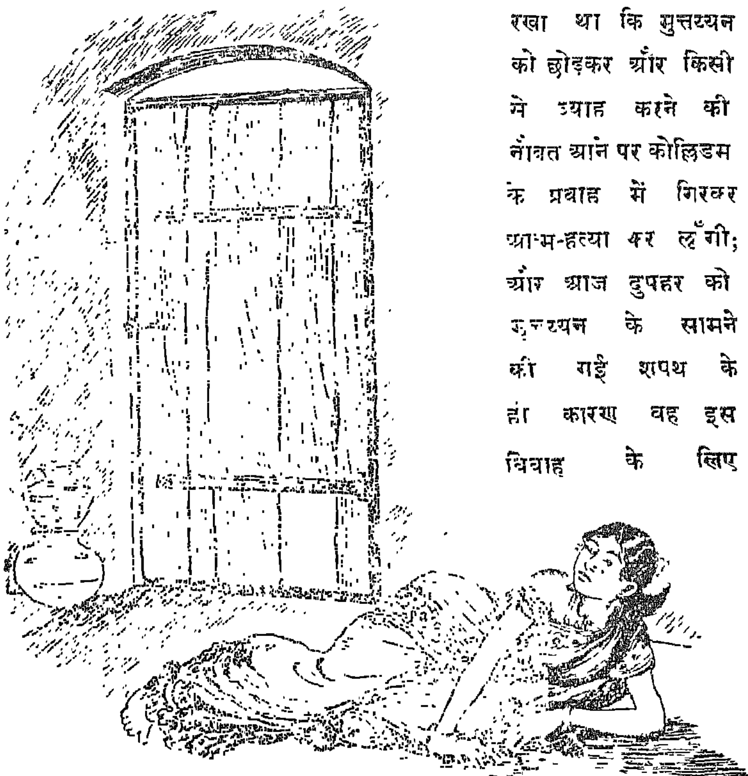
अतः ब्याह के चार दिन पहले उन्होंने उसे अकेले बुलाकर धीरे-धीरे बात छेड़ी। कल्याणी ने इतनी खुशी-खुशी उनकी बातों का समर्थन किया कि जिसकी पिल्लै को स्वप्न में भी आशा नहीं थी।

"मैं पूर्ण रूप से सहमत हूँ, पिताजी! इतने ऊँचे घराने में आप मेरा सम्बन्ध जोड़ रहे हैं, तो फिर इसमें मुझे आपत्ति कैसे हो सकती है? मेरी भलाई

का चिन्ता आपको नहीं है क्या ? आपने सोच-विचारकर जो निश्चय कर लिया, उसे मैं थोड़े ही ठुकराऊँगी ?"

बेटी की ये बातें सुनकर चिदम्बरम् पिल्लै सचमुच चकित रह गए। उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हो सका। पल-भर के लिए उनकी अन्तरात्मा को जरा ठेस-सी लगी। पर वह झट उसे भूल गए और ब्याह की तैयारियाँ पूरी करने में जी-जान से जुट गए।

उन बेचारों को क्या मालूम था कि ज्यों ही वह वहाँ से हटे, कल्याणी ने अपने कमरे के अन्दर जाकर दरवाजा बन्द कर लिया और फर्श पर धड़ाम से गिरकर बिलख-बिलख कर रोती रही ? वह यह भी कैसे जान सकते थे कि कल्याणी ने कल तक यह संकल्प कर रखा था कि सुब्रह्मण्यन को छोड़कर और किसी से ब्याह करने की नौबत आने पर कोल्लिडम के प्रवाह में गिरकर आत्म-हत्या कर लूँगी; और आज दुपहर को सुब्रह्मण्यन के सामने की गई शपथ के ही कारण वह इस विवाह के लिए



सहमत हुई थी ? भावावेश में आकर सुब्रह्मण्यन ने जो कठोर बातें की थीं, उनको

चोट से आपे से बाहर होकर उसने बूढ़े के साथ शादी करना मान तो लिया, पर अब व्यथा और ग्लानि के मारे उसका हृदय फटा जा रहा था। किन्तु उसकी इस तड़पन को चिदम्बरम् पिल्लै कैसे जान सकते थे ?

८

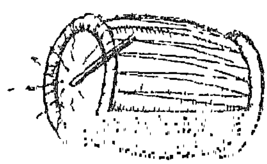
विवाह-मण्डप में खलबली

तामरै-ओडै गाँव में सारी गली को घेरकर विशाल मण्डप बनाया गया था। केवल पण्डाल की साज-सजावट पर कम-से-कम एक हज़ार रुपया खर्च हुआ होगा।

उस विशाल पण्डाल के अन्दर लोग इस तरह ठसा-ठस भरे हुए थे कि पण्डाल में वे समा नहीं सके थे। किसानों व किसान-औरतों की भीड़ पण्डाल के बाहर बड़ी संख्या में खड़ी थी।



सोने के नादस्वरम् (शहनाई) वालों की एक टोली और चाँदी के नादस्वरम् वालों की एक टोली बुलाई गई थी। दोनों नादस्वरम् वाले कभी अलग-अलग और कभी एक साथ नादस्वरम् बजाकर कानों के पर्दे फाड़ रहे थे। ढोलची लोग अपनी सारी ताकत अपने-अपने ढोलों पर आज़मा-कर नादस्वरम् वालों की रही-सही कसर पूरी कर रहे थे। रह-रहकर पश्चिमी 'बैंड' भी कर्कश स्वर में बज उठते थे।

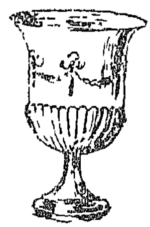


मण्डप के अन्दर बारी-बारी से चन्दन, गुलाब और फूलों की लगातार वर्षा हो रही थी।

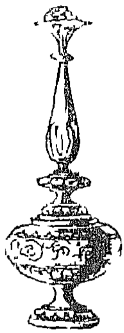
पुरोहित जी मन्त्रों की वर्षा कर रहे थे।

मांगल्य-सूत्र-धारण का शुभ-लग्न आया।

"बजाओ! बजाओ!" पुरोहित जी ने चिल्लाकर कहा। तुरन्त चार नादस्वरम् वालों ने साँस लिये बिना एक साथ शहनाई बजाई। चार ढोलचियों ने अपने ढोलों की खूब कसकर ख़बर ली।



दूल्हे ने मांगल्य-सूत्र लेकर दुलहन के गले में बाँधा। मांगल्य-धारण के अगले ही क्षण स्त्रियों की भीड़ से यह मर्मान्तक स्वर उठा: "अरे रे! कल्याणी को क्या हो गया?"



जिस स्त्री के मुँह से ये शब्द निकले थे, उसका मुँह दूसरी ने हाथ रखकर बन्द किया और बोली, "पगली कहीं की। यह क्या अपशकुन की बातें कर रही है?"

लेकिन सचमुच कल्याणी को हो क्या गया?

उसकी आँखों के तारे कहाँ धँसते जा रहे हैं? अरे रे! उसका सिर क्यों एक तरफ़ लटक रहा है?

"ले जाओ? अन्दर ले जाओ!"

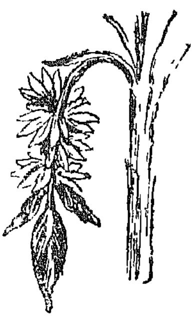
चार स्त्रियाँ धीरे से सहारा देकर उसे एक कमरे के अन्दर ले गईं और पलंग पर लिटा दिया।



"कल्याणी को क्या हुआ?" "कल्याणी को क्या हुआ?"—यही प्रश्न चारों तरफ गूँज रहा था। मंडप में, घर के अन्दर, पुरुषों की मण्डली में और स्त्रियों की भीड़ में, सभी जगह यही प्रश्न बार-बार किया जा रहा था।

"प्रस्थान के समय शकुन ठीक नहीं हुआ", कुछ लोगों ने कहा।

"अरी नहीं। यह कम्बख़्त लड़की अक्सर दोपहर में कोल्लिडम के किनारे वाले पीपल के पेड़ के नीचे जाकर खड़ी रहती थी न? कौन जाने कौन सा भूत या पिशाच सवार हो गया?" यह कुछ और स्त्रियों की राय थी।



"यह सब गलत है। कहते हैं, कल रात से ही लड़की ने कुछ भी नहीं खाया था। भूखी थी, उसका असर हो गया।"—यह पुरुषों में से कुछ लोगों की राय थी।

कल्याणी मूर्छित पड़ी थी।

डाक्टर आये, भीड़ को हटाया और हवा के लिए रास्ता बनाया।

उन्होंने आश्वासन दिया कि कोई ख़तरा नहीं। कल्याणी के मुख पर उन्होंने थोड़ा सा पानी छिड़का, और दवा की शीशी सुंघाई।

कल्याणी को होश आने लगा। उसके होंठ हिलने लगे। उनमें से कुछ शब्द निकल रहे थे।

वह आवाज़ किसी के कान में नहीं पड़ी। अगर पड़ती भी, तो भी कोई उसे समझ नहीं सकता था। हाँ, कल्याणी के होंठों से यही शब्द निकल रहे थे—"गाड़ी उलट गई!" "गाड़ी उलट गई!"

६

धूप और वर्षा

मुत्तय्यन को पूक्कुलम छोड़े दो वर्ष बीत चुके हैं।

अभिरामी अब और चार अंगुल लंबी हो गई है। उसके माथे पर ज़रा सा दाग है—गाड़ी उलटने के स्मारक के रूप में। पर चेहरे पर वही शैशव, आँखों में वही चंचलता अब भी दिखलाई पड़ती है।

तिरुपरन कोविल गाँव की एक गली में एक पुराने खपरैले मकान के पिछवाड़े, कुएँ के किनारे अब हम उसे देखते हैं। कुएँ के आस-पास सुपारी के पेड़ों की एक कतार शान से खड़ी है। उसके आगे कुछ नारियल के पेड़ हैं, जो अपनी शीतल छाया से उस स्थान को रमणीक बनाये हुए हैं। नारंगी के कुछ पेड़ भी इधर-उधर दिखाई देते हैं। चकोतरे के एक पेड़ पर मोटे-मोटे फल लटक रहे हैं। कुएँ पर एक ढेंकली बनाई गई है। कुएँ की मुँडेर पर अभिरामी बैठी है। वह अपने ही आप कुछ गुनगुना रही है। साथ-साथ उसका सिर धीरे-धीरे हिल रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक गीत रचने की धुन में व्यस्त है।

सुपारी के पेड़ पर कहीं छिपी हुई एक कोयल, रह-रहकर गा उठती है। जब वह कूकने लगती है, अभिरामी झट सिर उठाकर देखती है। पर कोयल कहीं दिखाई नहीं पड़ती।

अचानक टप-टप की आवाज़ के साथ पानी की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरती हैं। अभिरामी बोल उठती है, "अरे, रे। आँगन में पापड़ सुखाये हैं, कहीं भीग न जायँ!" कहती-कहती वह अन्दर भाग जाती है। पापड़ सब इकट्ठे करके अन्दर रख आती है कि इतने में बूँदा-बाँदी भी अचानक बन्द हो जाती है और तेज़ धूप निकल आती है। अभिरामी मन-ही-मन हँसती है और धूप को गलियाती है, "धत्! अभागी धूप!"

"कौन है वह अभागा धूर्त?" कहता हुआ अचानक मुत्तय्यन घर के अन्दर आया। अभिरामी हँस पड़ी और बोली, "धूर्त नहीं भैया, धूप को कोस रही थी, धूप को!"

जब दोनों की हँसी बंद हुई, तो अभिरामी ने कौतूहलभरे नेत्रों से मुत्तय्यन को देखकर कहा, "भैया! मैंने वह गीत रच डाला है। ज़रा सुनोगे?"

"वाह ! नेकी और पूछ-पूछ ?" मुत्तय्यन ने कहा। अभिरामी गाने लगी। जब गाना समाप्त हुआ, मुत्तय्यन खुशी से उछल पड़ा।

"बिलहरी राग का यह तर्ज इतनी जल्दी कैसे सीख लिया तुमने ? अभी कल ही तो रेकार्ड लाया था ! गीत-रचना भी कैसी सुन्दर है ! अब तक मुझे मालूम नहीं था कि हमारे पिछवाड़े का बगीचा इतना सुन्दर है ! मेरी बात सुनो अभिरामी, एक-न-एक दिन मैं किसी ड्रामा-कम्पनी में नौकरी करने ही वाला हूँ। तब तुम्हीं मेरे लिए गीत रच दिया करना। . . . "



अभिरामी का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। उसने दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया और बोली, "जाओ भैया ! तुम भी बड़े वह हो !"

"देखो अभिरामी ! अगर तुम इसी तरह 'जाओ' 'जाओ' करती रहीं, तो एकदिन मैं चला जाऊँगा और फिर कभी नहीं लौटूँगा। समझीं?" मुत्तय्यन ने विनोदी स्वर में कहा।

यह कैसी विलक्षण बात है ! अभिरामी की आँखों के कोने में आँसू की ये बूँदें अचानक कहाँ से आ गईं ?

आँचल से आँसू पोंछती हुई वह बोली, "सच कहते हो भैया ! मेरे कारण

तुम्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ रहा है। अगर मैं न होती तो···"

मुत्तय्यन ने बात काटकर कहा, "बस, बस ! इतना ही काफ़ी है, सारा पचड़ा न सुनाने लग जाना।"

कहते-कहते वह उठा और बोला, "सुनो तो ! मुझे काम बहुत है। जल्दी जाना है। खाना-वाना तैयार है, या गाने की धुन में वह भी धरा रह गया ?"

"पत्ता बिछाकर तैयार रखा है," अभिरामी ने कहा।

मुत्तय्यन खाना खाने लगा, तो अभिरामी ने उससे डरते-डरते पूछा, "क्या, सचमुच ही मुझे छोड़कर चले जाओगे, भैया ?"

सुनकर मुत्तय्यन हँस पड़ा। उस हंसी में हर्ष नहीं, बल्कि हृदय-विदारक व्यथा थी।

"अभिरामी ! अगर तुम्हें छोड़कर जाना था, तो दो साल पहले ही चला गया होता," उसने कहा।

कुछ देर तक दोनों मौन रहे। इसके बाद अभिरामी को जैसे कोई बात झट याद आ गई। उसने कहा, "एक बात मैं कहना चाहती थी भैया ! उस मुख़्तार पिल्लै को यहाँ न ले आया करो। मुझे उसका चाल-चलन पसंद नहीं। उसकी सूरत से ही घृणा हो गई है। जब तुम इधर-उधर चले जाते हो, तब वह मेरी तरफ़ घूर-घूरकर देखता है।···"

मुत्तय्यन ने झट सिर उठाकर देखा और पूछा, "क्या कहती हो ? सचमुच ?"

"हाँ भैया ! कल जब तुम चले गए थे, तब वह यहाँ आया और दरवाज़ा खटखटाया। मैंने खिड़की से देख कर कहा, 'भैया नहीं है।' जवाब में वह कहता है, 'भैया नहीं हों, तो भी दरवाज़ा खोलने में क्या हर्ज है ?' उसकी हरकतें मुझे कतई पसंद नहीं।

मुत्तय्यन, जो अभिरामी के मुख की तरफ़ एकटक देख रहा था, अब खिल-खिलाकर हँसने लगा। अभिरामी की आँखें मानो यह चेतावनी दे रही थीं कि अभी आँसू बहा देंगी।

हँसते-हँसते मुत्तय्यन ने कहा, "बहुत अच्छा। यह भी लाजवाब सलाह रही। अभिरामी ! ज़रा सुनो मेरी बात। मुख़्तार पिल्लै ये हरकतें करता है न ? उसकी खूब कसकर ख़बर लूँगा। तुम देखती रहना। उसके साथ तुम्हारी शादी कराये देता हूँ। उसकी करतूतों का उचित दण्ड यही होगा।"

विनोदी मुत्तय्यन को कल्पना भी नहीं थी कि इस विनोद का क्या परिणाम होगा। अभिरामी ने आँचल से मुँह ढाँप लिया और फूट-फूट कर रोने लगी। इस

पर मुक्तयन्त को बड़ा गुस्सा आया।

"छिः छिः! इन दिनों बड़ी रोनी बनती जा रही हो तुम! कोई भी बात मेरे मुँह से निकली नहीं और तुमने रोना शुरू किया नहीं। लो, मैं हमेशा के लिए यहाँ से चला जाता हूँ।" कहकर मुक्तयन्त उसी वक्त उठकर चला गया।

परोसा हुआ खाना पत्ते पर अधखाया ही पड़ा रहा।

१०

मुख़तार पिल्लै

तिरुपरन कोविल का मठ बहुत प्राचीन था। उसका प्रभाव भी बहुत था। मठ की अपनी ज़मीन दो हज़ार एकड़ थी और मठ के अधीनस्थ मन्दिरों की संपत्ति पन्द्रह-बीस हजार एकड़ जमीन थी।

मठ के वर्तमान महन्त के पूर्वाधिकारी के बारे में तरह-तरह की अफवाहें थीं। पर वर्तमान महन्त अपनी उच्च शिक्षा-दीक्षा तथा विशुद्ध आचार-विचार के लिए प्रख्यात थे। मठ के प्रबन्ध में भरे हुए भ्रष्टाचार का उन्मूलन करने तथा मठ की सम्पत्ति को धर्म एवं शिक्षा के प्रसार में लगाने का वह निरन्तर प्रयत्न कर रहे थे।

पर मठ में एक महानुभाव थे, जो महन्त जी के इन सभी सत्प्रयत्नों को भरसक विफल करते रहते थे। वह थे 'कारबार' पिल्लै—मठ के मुख़तार आम। पिछले 'सन्निधान' (महन्त) के समय में उन्हींकी बात हर मामले में चलती थी। अब भी अधिकतर मामलों में उन्हीं की बात चलती है। मठ की जायदाद एक पूरे ताल्लुके में फैली हुई है, इस कारण कोई-न-कोई अदालती कार्रवाई चलती रहती है। मुखतार पिल्लै को अदालती कार्रवाइयों की बारीकियाँ खूब आती हैं, अतः उनके न होने पर मठ के प्रबन्ध में उलझनें हो सकती हैं। यही कारण है कि उनके विरुद्ध कई शिकायतें होने पर भी मठाधीश उनको निकालने में असमर्थ हैं।



ऐसे गुणों से विभूषित, तिरुपरन कोविल मठ के सर्वाधिकार-सम्पन्न श्री १०८ मुख़तार पिल्लै यह आ रहे हैं। दर्शन कीजिए।

कानों में हीरे के कर्णभूषण। मुँह में तंबाकू का बीड़ा। गले में ज़रीदार अंगोछा। कमर में आधा खोंसा हुआ बटुआ। ' पर कस्तूरी का टीका। आठों उँगलियों में हीरे की अँगूठियाँ। कलई पर सोने की चेन वाली घड़ी। जरा

उभरी हुई तोंद । अधपके बाल । यही हैं मुख़्तार श्री शंकु पिल्लै ।

वैसे देखने में बड़े सज्जन पुरुष मालूम होते हैं न ? लेकिन कौन जाने किस बिल में से कौन सा साँप निकल आय ? देखते जाइएगा ।

"मुत्तय्या, इधर आओ !" मुख़्तार पिल्लै ने कहा । मुत्तय्यन ज़रा दूर फ़र्श पर बैठा कुछ लिख रहा था । पिल्लै के बुलाने पर वह झट उठा और उनके आगे बड़े अदब के साथ खड़ा हो गया ।



"वेलमपाडी गाँव से लगान का रुपया अभी तक नहीं आया । तुम फौरन जाओ और कारिन्दे से कहकर रुपया ले आओ । समय चाहे जितना लगे, रुपया लेकर ही आना । ख़ाली हाथ न लौटना । समझे न ?" पिल्लै ने कहा ।

मुत्तय्यन ज़रा झिझक के साथ बोला, "अभी दस दिन का हिसाब बही में चढ़ाना बाक़ी है । ज़रा और किसी को भेज सकें तो······।"

मुख़्तार पिल्लै बीच में ही झल्लाकर बोल उठे, "हिसाब कल लिखा जायेगा । कोई जल्दी नहीं । तुम तो सदा बही हाथ में लेकर ऊँघते रहते हो । काम पूरा हो कैसे ?"

मुत्तय्यन ने बही-खाते उठाकर दराज़ में रक्खे और चल पड़ा । गाँव की सीमा तक जा पहुँच चुका था, तो अभिरामी का रुदन-भरा चित्र उसके मन की आँखों के सामने आया । उसकी चाल धीमी पड़ी । कुछ मिनट बाद वह रुक गया और किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रहा । उसे खयाल आया कि मैं बहन के साथ झगड़कर आया हूं । बहन को यह भी मालूम नहीं है कि मैं बाहर जा रहा हूँ और लौटने में मुझे देर होगी । अच्छा यही होगा कि जाकर उसको समझा दूँ और यह भी कह आऊँ कि वेलमपाडी गाँव जा रहा हूं, देर से लौटूंगा । मुत्तय्यन इस विचार से घर की तरफ़ लौट पड़ा ।

कुछ ह मिनटों में वह घर पहुँच गया । दरवाज़ा खटखटाने ही जा रहा

था कि इतने में अन्दर से अभिरामी के आर्त स्वर में पुकार उठने की आवाज़ आई, "बचाओ! बचाओ!" मुत्तय्यन के रोम-रोमसे चिनगारियाँ सी निकल पड़ीं। उसने दौड़कर दरवाज़ा खोलने की कोशिश की। पर उसमें कुण्डा लगा था। खिड़की के पास दौड़ा और झांककर अन्दर देखा।

वहाँ उसे एक ऐसा दृश्य दिखाई दिया जिससे उसकी आँखें निकल-सी आने लगीं।

मुख़तार शंकु पिल्लै अभिरामी के आँचल का छोर पकड़कर खींच रहे थे। अभिरामी उनसे अपने को छुड़ाने के लिए छटपटा रही थी और घबराहट के साथ चिल्ला रही थी।

यह दृश्य देखा तो मुत्तय्यन का शरीर क्रोध के मारे काँप उठा। उसके रक्त की एक-एक बूँद खौल उठी। अगले क्षण में वह घर के आगे लगे हुए मण्डप के खम्भे के रास्ते मकान के छप्पर पर चढ़ गया और दूसरी तरफ़ से उतरकर आँगन में कूद पड़ा।

उस समय उसके शरीर में मानो एक हज़ार हाथियों की ताक़त कहाँ से आ गई थी। एक ही झपट में वह मुख़तार पिल्लै के पास पहुँचा और उनकी गरदन पर हाथ रखकर ऐसा धक्का दिया कि पिल्लै दीवार पर सिर पटककर गिर पड़े। मुत्तय्यन पर खून सवार था। उसने मुख़तार पिल्लै के बाल पकड़कर खींचे और उनका सिर दीवार पर चार-पाँच दफ़ा ज़ोर से पटककर मारा। इसके बाद उनके दोनों पैर पकड़कर उन्हें घर के बाहर घसीट ले गया और लात मारकर निकाल दिया।

अभिरामी कमरे के एक खम्भे के साथ सटकर खड़ी थी। उसका शरीर अभी तक काँप रहा था।

मुत्तय्यन उससे आँखें तक नहीं मिला सका और चोट खाये हुए शेर की तरह दालान में एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ टहलने लगा।

"भैया, चलो हम अपने गाँव को लौट चलें। यहाँ रहना ठीक नहीं," अभिरामी ने सिसकियों के बीच कहा।

मुत्तय्यन रुक गया और मिनट-भर कुछ सोचता रहा। फिर बोला, "तुम दरवाज़ा बन्द करके अन्दर से कुण्डा लगा लेना और ज़रा देर सावधान रहना। मैं उस पापी को यों ही छोड़ देना नहीं चाहता। न जाने और कितने घरों में वह आग लगायगा। मैं अभी जाता हूँ मठाधीश के पास। उनके आगे दुहाई मचाता हूँ। देखता हूँ इस अन्याय का निवारण हो सकता है या नहीं।"

यह कहकर मुत्तय्यन जाने लगा, तो अभिरामी दौड़कर उससे लिपट गई। "मुझे अकेली छोड़कर न जाओ भैया," उसने अनुनय के साथ कहा।

"बस, यही आखिरी बार है। अब मुझे न रोकना। बाद में कभी तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा। चलो, कल ही पूङ्कुलम लौट चलेंगे।"

कहते-कहते मुत्तय्यन ने अभिरामी के बाहु-पाश से अपने को छुड़ा लिया और प्रेम के साथ उसकी पीठ पर थपकियाँ देता हुआ बोला, "बस, कुछ ही मिनटों की बात है। जी थामकर बैठी रहना। अभी-अभी आया मैं!"

इतना कहकर मुत्तय्यन वहाँ से चल दिया।

अभिरामी! अरी भागिन! इस आशा में न रहना कि तुम्हारा भैया एक मिनट में लौट आयगा। अब के वह लौटेगा ही नहीं। आगे भगवान् ही तुम्हारे रक्षक हैं।

११

पुलिस का थाना

मुख़तार पिल्लै मुत्तय्यन के मुक्के और लात खाकर गली में गिरे और ज़रा सँभलकर लड़खड़ाते हुए उठे। अंगोछे से धूल झाड़ दी और उसे बाक़ायदा गले में डाल लिया। सहमी आँखों से चारों तरफ़ देखकर यह मालूम कर लिया कि आस-पास कोई नहीं है। फिर जल्दी-जल्दी वहाँ से चल खड़े हुए।

मुख़तार पिल्लै के जीवन में ऐसी घटनाएँ अक्सर हुआ करती थीं। कई बार ग़रीब किसानों के घरों में उनकी इससे कई गुना अधिक दुर्गति हुई थी। पर वह ऐसी बातों की परवाह नहीं करते थे। इस मामले में वह जल में नलिनी-दल के समान निर्लिप्त जीवन व्यतीत करते थे।

परन्तु आज की घटना को इस तरह आसानी से भुलाया नहीं जा सकता था। मुत्तय्यन मठ में उन्हीं के मातहत काम करने वाला नौकर था। अब उससे काम कैसे लिया जा सकता है? उससे आँखें मिलाना भी कैसे संभव हो सकता है? वह स्वयं चाहे सँभल भी जाते, फिर भी उस छोकरे का मुँह बन्द रहेगा? अगर वह महन्त जी के पास जा दुहाई मचा दे और बात का बतंगड़ हो जाय, तो क्या किया जाय?

गली में चलते-चलते मुख़तार पिल्लै आज की घटना के हर संभाव्य परिणाम का विशद विवेचन करते गए और अन्त में एक निर्णय पर पहुँचे। फलतः वह मठ के कार्यालय की तरफ़ न जाकर पुलिस-थाने की ओर गए।

सब इन्सपेक्टर सर्वोत्तम शास्त्री वर्दी पहनकर पुलिस-स्टेशन के बाहर निकले, तो मुख़तार पिल्लै को थाने की तरफ़ आते देखा।

"आइए शंकु (शंकरन् का विकृत रूप) पिल्लै! पन्द्रह मिनट पहले ही मैं ताड़ गया था कि आप आ रहे होंगे। कस्तूरी की महक आती है, तो पता चल जाता है कि उसके पीछे-पीछे मुख़तार पिल्लै आ रहे होंगे। लेकिन यह क्या? माथे पर इतना बड़ा सूजन कैसा? आख़िर क्या हुआ?" सब-इन्सपेक्टर ने पूछा।

"साहब, एक अनहोनी बात हो गई। अगर आप फ़ौरन कार्रवाई न करें तो क़स्बे में कोई भला आदमी नहीं रह सकता। हम लोगों को भी मठ बंद करके निकल जाना पड़ेगा," मुख़तार पिल्लै ने कहा।

सब इन्सपेक्टर व्यंग भाव से बोले, "ओ हो हो ! अगर ऐसी बात हो गई तो इस कस्बे की खुशक़िस्मती होगी। लेकिन मैं जानता हूँ कि ऐसी बात नहीं हो



सकती। हाँ, जल्दी बताइए, बात क्या है ? मैं जल्दी में हूँ। कलक्टर साहब शेन्दनूर आ रहे हैं, मुझे वहाँ जाना है !"

"यह बात है ? अच्छा हुआ, मैं फ़ौरन आपके पास आया। देखिये, बात यह है कि हमने एक छोकरे को—बदमाश कहीं का !—किसी की सिफ़ारिश पर मठ में नौकर रखा था। मुत्तय्यन नाम है उसका। हमें पता चला कि वह मठ का रुपया हड़पता जा रहा है। आज दुपहर को मैंने देखा, कैश-बक्स में पचास रुपये कम

निकले। मैंने उसी वक्त उस छोकरे पूछ-ताछ करनी चाही, लेकिन वह था नहीं। फ़ौरन मैं उसके घर गया, तो क्या देखता हूँ, वह बदमाश अपनी बहन को रुपया गिनकर दे रहा है! रँगे हाथों चोर को पकड़कर पुलिस के हवाले करने के इरादे से मैंने उसे पकड़ा। क्या बताऊँ मैं आपको? उस कमबख़्त ने मुझ पर हाथ उठा दिया और दीवार पर मेरा सिर पटक दिया! अगर मैं ज़रा भी ग़ाफ़िल रहता तो गला घोंटकर मेरा क़त्ल ही कर देता। ज़ालिम, ख़ूनी कहीं का! आपको फ़ौरन उसे गिरफ़्तार करना होगा। जब अंग्रेजी राज में ही ऐसा ज़ुल्म करते हैं ये लोग, तो फिर स्वराज मिलने पर क्या नहीं करेंगे?......"

"वह सब पँवाड़ा रहने दीजिए। यह बताइए कि आपके पास कोई सबूत या गवाह है?"

"आपने भी खूब कही, इन्सपेक्टर साहब! जिससे जैसी गवाही चाहें दिलवा दूँ।"

"मतलब यह कि झूठी गवाही तैयार करेंगे आप। ठीक है न?"

"*शिव शिव शिव! झूठी गवाही? हे ईश्वर! मैं यह कैसी बातें सुन रहा* हूँ? इन्सपेक्टर साहब! आँखों देखने वाले गवाह पेश करता हूँ। तब तो आपको कोई एतराज़ नहीं होगा?"

सब इन्सपेक्टर ने हवलदार को बुलाया और कहा, "नायडू! शंकु पिल्लै का बयान लिख लीजिए। उस लड़के को गिरफ़्तार करके हवालात में बन्द कीजिए। लौटने के बाद मैं खुद तहक़ीक़ात कर लूँगा।"

इतना कहकर सर्वोत्तम शास्त्री मोटर-साइकिल पर सवार हुए और चलते बने।

❀ ❀ ❀

मुत्तय्यन मठ की तरफ़ जा रहा था तो उसके मन में एक तरफ़ क्षोभ की आँधी चल रही थी और दूसरी तरफ़ भविष्य की चिन्ता का अन्धेरा छाया हुआ था। मठाधीश से तुरन्त मिलना संभव होगा? अगर संभव हो भी, तो भी मठाधीश उसकी बातों पर विश्वास करेंगे? इस भाँति तरह-तरह के विचार उसके मन में उठ रहे थे।

इतने में उसने सामने पुलिस के दो आदमियों को आते देखा। उन्हें देखते ही उसका इरादा बदला। मठाधीश के पास जाने के बजाय पुलिस के ही पास क्यों न जाकर शिकायत की जाय?

इस विचार से वह पुलिस वालों के नज़दीक गया और कहना शुरू किया, "मेरा नाम मुत्तय्यन है। मैं......"

"मुत्तय्यन तुम्हारा ही नाम है क्या ?" एक पुलिस वाले ने बात काटकर पूछा। मुत्तय्यन ने हामी भरी। पुलिस वालों ने पता पूछा तो मुत्तय्यन ने वह भी बताया।

इस पर पुलिस वाले ने कहा, "अच्छा हुआ तुम रास्ते ही में मिल गए। इन्सपेक्टर साहब तुम्हें याद कर रहे हैं। उन्हें एक बात तुमसे पूछनी है!"

मुत्तय्यन की खुशी का ठिकाना न रहा। हो सकता है उससे पहले ही किसी ने मुख़्तार पिल्लै की करतूत देख ली हो और पुलिस में जाकर शिकायत दर्ज करा दी हो। उसने पुलिस वालों से इस बारे में पूछा, लेकिन वे कब कुछ बताने वाले थे ?

जब वह थाने में पहुँचा, तो हवलदार नायडू ने उसकी तरफ़ एक बार घूर-कर देखा। फिर सामने का कमरा खोलकर मुत्तय्यन से उसके अन्दर जाने के लिए कहा। ज्यों ही मुत्तय्यन अन्दर गया, त्योंही हवलदार ने कमरे का दरवाज़ा बन्द करके बाहर ताला लगा दिया।

मुत्तय्यन का दिल धड़क गया। "क्यों साहब ? मुझे कमरे के अन्दर क्यों बन्द कर रहे हैं ?" उसने घबराहट के साथ पूछा।

"यह बात ? मठ के रुपये हड़प गए। अब यह पूछ रहे हो कि मुझे बन्द क्यों कर रहे हो ? एक तो चोरी की और ऊपर से उस भलेमानुस पर हाथ भी चला दिए। चोर कहीं के!" हवलदार के स्वर में कठोरतापूर्ण व्यंग्य था।

"हरे राम! यह कैसी जालसाज़ी है!" मुत्तय्यन ने पुकार मचाई। पर हवलदार तब तक वहाँ से चले जा चुके थे।

मुत्तय्यन दरवाजे के सीख़चों को पकड़कर ज़ोर से हिलाता हुआ चिल्ला उठा, "साहब, सुनिये तो!"

"सीख़चे लोहे के हैं, बाबू जी ! ख़ाली हाथों से नहीं टूटेंगे," कमरे के अन्दर से किसी ने कहा।

सुनकर मुत्तय्यन चौंक पड़ा और मुड़कर देखा। कमरे के एक कोने में, फटे-पुराने चीथड़े पहने, लाल-लाल बालों व दाढ़ी-मूछों के साथ एक कुरवन (भीलों-जैसी एक आदिवासी जाति का आदमी) बैठा था।

१२

हवालात से फरार

रात का समय था। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। उस सन्नाटे को भंग करते हुए पुलिस-स्टेशन की घड़ी ने दस बजाये।

जिस कमरे में मुत्तय्यन बंद था, उसमें बत्ती नहीं थी। थाने के बरामदे में एक लालटेन टिमटिमा रही थी।

जब घड़ी बजने लगी तब मुत्तय्यन कमरे के अन्दर विचलित मन से इधर-उधर टहल रहा था। घड़ी बज उठी तो वह रुक गया और गिनने लगा। घड़ी का बजना बंद होने पर वह पहले की तरह उद्विग्न भाव से इधर-उधर टहलने लगा।

"दस बजे हैं। पूरे दस। अभिरामी अकेली होगी। बिलकुल अकेली। वह लम्पट अगर फिर वहाँ जाए तो?......" यही विचार बार-बार उसके मन में चक्कर काट रहा था।

इतने में पहरा देने वाला संतरी उधर से आया। उसे देखते ही मुत्तय्यन झट दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया और आँसू-भरे स्वर में पुकारा, "साहब! साहब!"

संतरी ने उसे घूरकर देखा और पूछा, "क्या बात है, मैयन? साहब को क्यों सलाम बोलने लगे?"

मुत्तय्यन अनुनय-भरे स्वर में कहने लगा, "देखिये, एक प्रार्थना है आप से। अगर पूरी करेंगे तो उम्र भर आपका आभार नहीं भूलूँगा। अपनी खाल के जूते बनवाकर आपको पहनाऊँगा......।"

"नहीं भाई, नहीं। हम लोगों को जूते सरकार मुफ्त में बनवाकर देती है, इसलिए तुम्हारी खाल के जूतों की ज़रूरत नहीं होगी। हाँ, बताओ, कैसा अहसान चाहते हो मुझसे?"

"मेरी यही प्रार्थना है कि सिर्फ आध घंटे के लिए आप मुझे रिहा कीजिएगा। मैं घर जाकर एक बार देख लूँगा और फौरन लौट आऊँगा। आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा। आप चाहें तो मेरे साथ-साथ चले आयें।......"

संतरी हंस पड़ा। "वाह वाह! बड़ी अच्छी सलाह है। घर में ऐसा कौन सा काम है, भई? कोई ज़रूरी चीज़ भूल आये हो क्या?" उसने पूछा।

"भाई साहब ! आपकी भी बहनें होंगी। मेरी बहन घर में अकेली है। हमारा घर गली के एक कोने में है। इसलिए बहुत घबरा रही होगी। मैं उसे किसी दोस्त के घर पहुँचाकर फौरन लौट आऊँगा। ...."

मुत्तय्यन की बात पूरी होने से पहले ही संतरी ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। बीच में जरा रुककर अपने साथी को बुलाया और फिर हँसता रहा।

उसका साथी, जो लालटेन की रोशनी में रोज़नामचा लिख रहा था, उसे बीच में छोड़कर उठ आया।

"भैया, यह लड़का जरूरी काम से घर जाना चाहता है," संतरी ने कहा।

"अरे, ऐसी क्या जल्दी है ? आखिर काम क्या बताता है ?" दूसरे ने पूछा।

"कहता है, उसकी बहन घर में अकेली है। तुम जाओ न भैया, उसका एकान्त मिटाने ?"

यह सुनकर दूसरा पुलिस वाला भी ठहाका मारकर हँस पड़ा। दोनों हँसते-हँसते वहाँ से चले गए।

असीम क्रोध के मारे मुत्तय्यन का चेहरा लाल हो उठा। उसके होंठ फड़कने लगे। पर क्या करता ? हाथ मलता हुआ खड़ा रहा।

कुरवन अब तक कमरे के एक कोने में बैठा था। अब वह उठकर मुत्तय्यन के पास आया और उसे घूरकर देखा। "अब क्या कहते हो, बाबू जी ?" उसने पूछा।

मुत्तय्यन चुपचाप खड़ा रहा।

"अगर मेरी बात मानोगे, तो दोनों यहाँ से बच निकल सकते हैं," कुरवन ने फिर कहा।

"अच्छा," मुत्तय्यन ने कहा।

*** *** ***

थाने की घड़ी एक बार बज उठी। साढ़े दस बज गए थे।

एक पुलिस वाला थाने के बरामदे में पड़ा खुर्राटे लेता हुआ सो रहा था। दूसरा बैठे-ही-बैठे ऊँघ रहा था।

किवाड़ की सांकल के बजने की-सी आवाज़ आई, तो बैठा हुआ पुलिस वाला चौंककर उठा और बड़बड़ाया, "क्या है वह ?" पर उसके बाद कोई आवाज़ नहीं आई। फिर भी पुलिस वाले का मन नहीं माना। वह हवालात के दरवाजे के पास गया। दरवाजे की लोहे की सीखचियाँ दो-तीन जगह से हटाई गई थीं, पर उन पर पुलिस वाले की उनींदी नज़र नहीं पड़ी। दरवाजे की दूसरी तरफ कुरवन खड़ा था। पुलिस वाले ने उससे पूछा, "क्यों बे ? क्या थी वह आवाज़ ?"

"क्या पूछते हो साहब ?" कहता हुआ कुरवन किवाड़ के पास आया।

अचानक उसके दोनों हाथ सीखचों के बाहर निकले और अगले ही क्षण पुलिस वाले का गला घुटने लगा। पुलिसवाला हज़ार छटपटाया। पर उस फ़ौलादी पंजे से गला छुड़ा नहीं सका। उसकी आँखें निकल आईं।

इस बीच में मुत्तय्यन ने भी हाथ बाहर बढ़ाये और एक चाबी से कमरे का ताला खोल दिया। ताला खुलते ही वह किवाड़ खोलकर बाहर निकल आया और कुरवन के आदेशानुसार पुलिस वाले के मुँह में कपड़ा रखकर दबा दिया। अपने अँगोछे से पुलिस वाले के हाथ भी बाँध दिए।

पलक मारते मारते कुरवन भी बाहर निकल आया और पुलिस वाले के पैर भी बाँध दिए। फिर दोनों बाहर का दरवाज़ा खोलकर भाग निकले।

आवाज़ सुनकर सोने वाला पुलिस-सिपाही भी जाग पड़ा। दोनों कैदियों को भागते देखकर वह हड़बड़ाकर उठा और "डेंजर! एस्केप! शूट!" चिल्लाता हुआ बन्दूक तानकर गोली चलाई। गोली थाने के छप्पर पर लगी और सारा थाना हिल-सा उठा।

थाने के बाहर निकलने के बाद मुत्तय्यन ने कुरवन की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखा। कोदण्ड से निकले रामबाण की तरह वह सीधे अपने घर की तरफ़ बेतहाशा भागा। रात का समय था, रास्ते सब बन्द हो चले थे। लेकिन गली के कुत्ते जाग पड़े और भूँकने लगे। कुछ कुत्तों ने मुत्तय्यन का पीछा भी किया, पर मुत्तय्यन को इन सब बातों की सुधि ही कहाँ? गली-कूचों से होता हुआ वह सरपट दौड़ता गया और आखिर अपने घर पहुँचा।

घर का किवाड़ बन्द था। अन्दर रोशनी नहीं थी। मुत्तय्यन ने धीरे से दरवाजे पर दस्तक दी। जवाब नहीं। फिर ज़ोर से खटखटाया। अभिरामी का नाम लेकर रुद्ध कंठ से पुकारा। कोई जवाब नहीं।

इतने में कुछ दूर पर पुलिस वालों के दौड़ते आने की आहट सुनाई दी। झट मुत्तय्यन ने किवाड़ को ध्यान से देखा। किवाड़ पर बाहर से ताला लगा था।

हाय, अभिरामी! तुम्हें क्या हुआ? कहाँ चली गईं तुम?

१३

अबोध बालिका

मुत्तय्यन को जब पुलिस वाले थाने ले जा रहे थे, तब शेंकमलम नाम की बुढ़िया संयोगवश उधर से निकली थी और उसने उसे देख लिया था।

जिस गली में मुत्तय्यन रहता था, उसीमें, मुत्तय्यन के घर से दो-चार घर आगे शेंकमलम भी रहती थी। गरीब औरत थी। सवेरे 'इडली' बनाकर बेचती थी और उसीसे गुजारा करती थी। उसके एक ही लड़का था, जो तेरह-चौदह साल का था।

कभी-कभी यह बुढ़िया अभिरामी के घर जाकर उससे बातें किया करती थी। अभिरामी के मधुर स्वभाव और समझदारी पर वह मुग्ध थी। अक्सर उसके मन में यह विचार उठता कि मेरे भी अभिरामी जैसी-कोई लड़की होती, तो क्या ही अच्छा होता।

एक अलग मकान में अभिरामी का अकेले रहना शेंकमलम को ठीक नहीं जँचता था और वह इस बारे में अभिरामी से कई बार बातें कर चुकी थी। उस गली में सिर्फ एक ही तरफ मकान थे। करीब-करीब सभी मठ के थे। मुत्तय्यन के घर की एक तरफ बगीचा था और दूसरी तरफ एक टूटा-फूटा मकान। बस, उसके आगे कोई मकान नहीं था, खाली मैदान था।

शेंकमलम अक्सर कहा करती थी, "इस तरह गली के कोने में अकेले घर में क्यों रहती हो बेटा! तुम तो अभी बच्ची हो। कभी भैया को बाहर दो-तीन दिन के लिए काम पर जाना पड़ा, तो क्या करोगी? मेरी बात मानो और मेरे घर आकर मेरे साथ रहा करो।"

लेकिन अभिरामी इस पर ध्यान ही नहीं देती थी। भय का नाम तक उसे मालूम नहीं था। तिस पर भैया मुत्तय्यन के होते हुए उसे भय किस बात का? किसकी मजाल थी कि उसका बाल भी बाँका कर सके?

*** *** ***

दो पुलिस वालों के बीच में मुत्तय्यन को जाते देखकर शेंकमलम का दिल धड़क गया। उसने तेजी से कदम बढ़ाये और सीधे अभिरामी के घर जा पहुँची। किवाड़ बन्द था, तो उसने उसे खटखटाया। अभिरामी ने सोचा कि शायद भैया आ

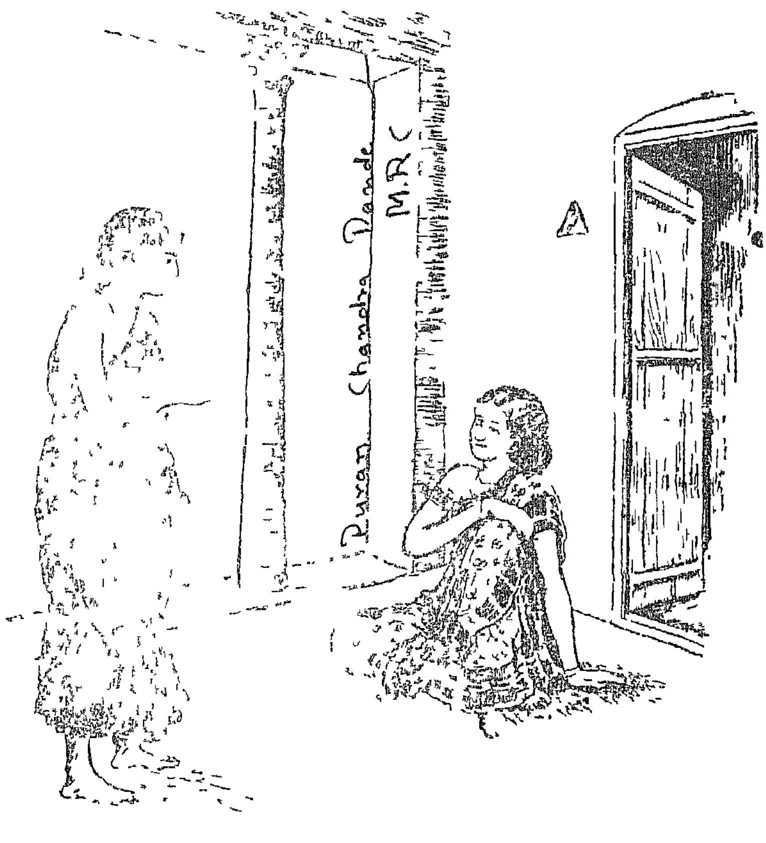
गया है। आँसू पोंछती हुई झट उठी। पर भैया की आवाज नहीं सुनाई दी, तो उसे जरा शक हुआ। पूछा, "कौन है?"

"मैं हूं, बेटा! ज़रा किवाड़ खोलो तो।" बुढ़िया ने कहा।

अभिरामी ने खिड़की से झाँककर देखा। जब उसे तसल्ली हो गई कि शेकसलम के साथ और कोई नहीं, तो उसने दरवाजा खोला।

रो-रोकर अभिरामी की आँखें लाल हो गई थीं। गाल सूज से गये थे। वह ग्लानि की प्रतिमूर्ति सी थी। देखकर शेकसलम घबरा गई।

पूछा, "क्यों बेटा! कैसा अनर्थ हो गया? उधर तुम्हारे भैया को पुलिस



वाले ले जा रहे हैं और इधर रो-रोकर तुम्हारी आँखें फूट गई हैं। आखिर सुब्बय्यन ने क्या कर दिया? वह तो भला लड़का था, उसे हो क्या गया?"

अभिरामी के पाँव तले से धरती निकल-सी गई। उसका सिर चकराने लगा। कुछ समझ में नहीं आया। पुलिस वाले? भैया को ले जा रहे हैं? क्यों? किसलिए?

शंकमलम ने धीरे-धीरे पूछ-ताछ करके सारी बात मालूम कर ली। आखिर बिलख उठी, "हाय, हाय! उस जालिम की नज़र तुम्हारे भी ऊपर पड़ गई क्या? वह तो राक्षस है, राक्षस! यह सब उसीकी करतूत है। झूठ-मूठ कुछ लिख-लिखाकर उसी ने तुम्हारे भैया को गिरफ़्तार करवाया है। हाय री अभागिन! तुम्हारे नन्हें माथे पर यह भी बदा था?"

बुढ़िया यों कलप रही थी कि इतने में बाहर से एक लड़के की आवाज़ आई, "मेरी माँ यहाँ है, क्या?"

"आ बेटा," शंकमलम ने कहा।

शंकमलम का बेटा अन्दर आया। आते-ही-आते उसने कहा, "माँ, माँ! भैया मुत्तय्यन को पुलिस पकड़कर ले गई—लोग कहते हैं। कहते हैं, भैया ने मठ के रुपये का ग़बन कर दिया। नालिश हो गई। लोग कहते हैं, थाने में पुलिस वाले भैया को खूब मार-पीट रहे हैं।......"

इतना सुनते ही अभिरामी हाहाकार कर धड़ाम से नीचे गिर पड़ी और फ़र्श पर सिर पटक-पटककर रोने लगी। बुढ़िया ने उसका सिर अपनी गोद पर रख लिया और सान्त्वना भरे स्वर में कहने लगी, "अरी पगली! इस नालायक छोकरे की बक-झक पर विश्वास कर लिया तूने? यह जानता क्या है? वह ज़माना गया जब थाने में मार-पीट हुआ करती थी। अब तो लाट साहब की भी मजाल नहीं कि किसी पर हाथ उठा सके। अगर किसी ने हाथ उठाया तो आँख फाड़ देंगे, आँख! क्या समझी!......फ़िक्र न कर। मेरी बात सुन। यहाँ के पुलिस सब-इन्सपेक्टर की पत्नी को मैं जानती हूँ। बड़ी अच्छी हैं बिचारी। मैं तुझे उनके पास ले चलती हूँ। सारी बात उनको बता। कोई बात न छिपाना उनसे। वह अपने पति से कहकर मुत्तय्यन को रिहा करवा देंगी। चल चलें। अब तेरा इस घर में रहना भी खतरनाक है।"

१४

अभिरामी की प्रार्थना

उस दिन रात के करीब दस बजे सब-इन्सपेक्टर सर्वोत्तम शास्त्री कलक्टर के कैंप से लौटे तो अन्दर से मर्मस्पर्शी स्वर में किसी लड़की के गाने की मधुर आवाज़ आई। शास्त्री जी आश्चर्य के साथ कुछ देर बाहर ही खड़े-खड़े गाना सुनते रहे और फिर धीरे से अन्दर अपने कमरे में गये। उसके अगले कमरे के अन्दर, पूजागृह के चित्रों के सामने पंचमुख दीप जल रहा था। एक लड़की वहाँ बैठकर गा रही थी और शास्त्री जी की पत्नी तथा बच्चे पास बैठे गाना सुनने में लीन थे।

शास्त्री जी ने दो-एक बार गला साफ किया और बूट से फ़र्श पर दो-तीन बार आवाज़ की। तभी उनके परिवार के लोगों को उनके आने का पता लगा। अभिरामी ने तुरन्त गाना बंद कर दिया और उठ खड़ी हो गई। शास्त्री जी की श्रीमती मीनाक्षी अम्माल भी उठकर शास्त्री जी के पास आईं और बोलीं, "इस बिचारी पर बड़ा संकट आया है। सब तुम्हारे पुलिस-विभाग की दया है। इस सारे पाप का फल किसे भुगतना होगा, भगवान् ही जाने! ..."

"पहले कुछ बताओगी भी, कि पाप-पुण्य की ही रट लगाओगी?"

"मैं कुछ नहीं बताऊँगी। पहले वचन दो कि इस लड़की की रक्षा करोगे। तभी मैं सारी बात बताऊँगी।

"यह भी खूब रही! चित्रसेन गन्धर्व की-सी कहानी मालूम होती है! लेकिन मैं कौन? श्रीकृष्ण या अर्जुन? किसी ने कल शाम तक किसी का सिर धड़ से अलग करने का वचन दिया है क्या?"

"बातें बनाना तो तुम्हें खूब आता है। कृष्ण बनो या अर्जुन, या कामदेव ही बनो। उससे मेरा कोई मतलब नहीं। इस लड़की के भाई को जेल से छुड़ा दो, बस, यही मैं चाहती हूँ।"

"इसका भाई? कौन? वही तो नहीं जिसके बारे में मुख़्तार पिल्लै ने मठ के रुपये का ग़बन करने की शिकायत की थी?"

"हाँ वही। उस मुख़्तार पिल्लै को फांसी पर लटका दो, तो भी कोई बुरा नहीं। तुमने भी उस लुच्चे की बातों पर विश्वास करके उस लड़के को गिरफ़्तार

करवा दिया !"

इसके बाद मीनाक्षी ने शास्त्री जी को वह सारी बात बताई, जो उसने शंकमल्लम और अभिरामी से मालूम कर ली थी।

सारी बात सुनने के बाद शास्त्री जी ने कहा, "मैं पहले ही से जानता था कि मुत्तयाह पिछले छँटा हुआ बदमाश है। अच्छा, अब वह नहीं बचेगा। उसको अच्छा सबक सिखाता हूँ। झूठा बयान देने के अभियोग में उसे खूब सज़ा दिलाता हूँ। अगर मुत्तय्यन दो-तीन दिन हवालात में रहे, तो भी बुरा नहीं। उस बदमाश के खिलाफ़ अभी खूब इलज़ाम लगाया जा सकेगा। तुम इस लड़की को समझा-बुझा-कर भेज देना।"

मीनाक्षी बोली, "वाह ! यह बिचारी इतनी देर बाद अब कहाँ जायगी ? केवल एक भाई था, जिसके आसरे पर यह रहती थी। बुढ़िया शंकमल्लम ने संयोग-वश इसे देख लिया और हमारे पास ले आयी। वरना परमात्मा जाने इस अभागिन की क्या गत बनती ? आज रात तो यह यहीं बितायगी।"

अभिरामी पूजा-गृह में ही खड़े-खड़े सब बातें सुन रही थी। उसे यह बात साफ़ समझ में आ गई कि मुत्तय्यन जल्दी हवालात से नहीं छूटेगा। मीनाक्षी अम्माल की सान्त्वना से उसके मन को जो शान्ति मिली थी वह अब काफ़ूर हो गई। उसका हृदय खिन्न हो उठा। व्यथा आँखों के ज़रिये फूटकर निकलना चाहती थी। उसने अपने को सँभालने की बड़ी कोशिश की, लेकिन उससे रहा नहीं गया। वह सिसकियाँ भरने लगी।

इतने में किसी के भागे आने की आहट सुनाई दी। अगले ही क्षण एक पुलिस वाला अन्दर आया और सब-इन्सपेक्टर को सलाम किया।

"क्या गड़बड़ है यह ! इतने घबराये हुए क्यों हो ? थाने को कोई चुरा ले गया क्या ?" शास्त्री जी ने स्वभावोचित विनोद के साथ पूछा।

"नहीं साहब !"

"तो फिर हुआ क्या ?"

"कुछ नहीं साहब !"

"अगर कुछ नहीं, तो इतनी घबराहट क्यों ?"

"नहीं साहब ?"

"क्या नहीं है, बेवकूफ़ ?"

"घबराहट नहीं है, साहब ? दो कैदी हवालात से भाग गए, साहब !"

"क्या कहा ? क्या, सचमुच ?"

"हाँ साहब ! कुरवन शोकन और वह लड़का, जिसे हमने आज शाम

गिरफ़्तार किया था, दोनों भाग गए, साहब !"

इन्सपेक्टर, उनकी पत्नी तथा अभिरामी, तीनों यह समाचार सुनकर मग्न रह गए। पर तीनों के मन में इस समाचार की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न हुई।

इन्सपेक्टर ने सोचा, "नासमझ कहीं का ! ख्वाह-म-ख्वाह सारा मामला बिगाड़ लिया।" सिपाही से वह बोले, "चलो, भागो यहाँ से ! उल्लू कहीं के ! तुम सबका पत्ता काट करके दम लूँगा। जाओ यहाँ से।"

यह कहकर शास्त्री जी रिवाल्वर लेने के लिए अपने कमरे के अन्दर चले गये।

मीनाक्षी देखती रह गई। उसकी समझ में नहीं आया कि इसका क्या फल होगा। इतना वह समझ गई कि कोई अनहोनी बात हो गई है।

पर भोली अभिरामी तो यह ख़बर सुनकर ख़ुशी के मारे फूली न समाई। उसे सिर्फ़ यही मोटी बात मालूम हुई कि उसका भैया जेल से बचकर भाग गया। वह बिचारी क्या जाने कि उसका परिणाम क्या होगा ?

जब इन्सपेक्टर रिवाल्वर लेने के लिए कमरे के अन्दर गये, तो उनकी पत्नी भी उनके साथ-साथ चली गई। तब अभिरामी पूजा-गृह के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और ज़ोर से प्रार्थना की, "हे ईश्वर ! ऐसा करो कि भैया पुलिस के हाथ न लगे !"

इन्सपेक्टर फ़ौरन कमरे से निकल आये तो अभिरामी की प्रार्थना उनके कानों में पड़ी। उन्होंने दयार्द्र दृष्टि से अभिरामी को पल-भर के लिए देखा, और तुरन्त बाहर चले गए।

उनका मन कह रहा था, "हाय री अभागिन लड़की !"

१५

भूख और धुआँ

घर के दरवाजे पर ताला लगा देखकर मुत्तय्यन पल-भर के लिए अवाक् खड़ा रहा। उसे इसकी आशा ही नहीं थी। अब खड़े-खड़े सोचने की भी फुरसत नहीं थी। हाथ मलने लगा। दाँतों तले होंठ दबाने लगा। उधर पुलिस वालों का शोरगुल हर घड़ी नज़दीक आता जा रहा था।

उस समय उसके मन में बाकी सब विचारों को दबाती हुई एक बलवती इच्छा उठी। वह यही कि पुलिस वालों के हाथ में फिर नहीं फँसना चाहिए। उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे ईश्वर! फिर एक बार अपनी आँखों से अभिरामी को देख लूँ, तो उसके बाद मुझे किसी बात की परवाह नहीं। पुलिस चाहे मुझे पकड़कर गोली से उड़ा दे, तो भी मुझे कोई चिन्ता नहीं। बस, एक बार अपनी अभिरामी को देख लूँ। तब तक पुलिस के हाथों से मेरी रक्षा करो।

क्षण-भर के लिए उसने सोचा, कहीं छिप जाऊँ। उसने चारों तरफ नज़र दौड़ाई। घर के अन्दर फाँदने का प्रयत्न करना बेकार था। आधी कोशिश में ही पुलिस वाले पकड़ लेंगे। अगर ऐसा न भी हुआ, घर के अन्दर वह छिप सका, तो भी उसका पकड़ा जाना निश्चित था। यहाँ कहीं भी छिपना संभव नहीं। फ़िलहाल भागना ही अच्छा होगा। बाद में जो कुछ होगा, देखा जायगा।

मुत्तय्यन भागने लगा। न उसे रास्ते का ख़याल था, न दिशा का। जिधर से उसके पैर उसे ले चले, उधर ही से वह भागता रहा। गाँव से बाहर निकलते ही एक विशाल मैदान पड़ता था। मैदान पर चाँदनी का धीमा प्रकाश पड़ रहा था। बस, मैदान पार करने तक ख़तरा था। उसके आगे सड़क के दोनों तरफ घने पेड़ थे। वहाँ सुरक्षित पहुँच सका, तो बचने की उम्मीद हो सकती थी।

जब वह मैदान का आधे से ज्यादा हिस्सा पार कर चुका था, तब पीछे से पुलिस का शोर-गुल सुनाई दिया। उसकी रफ़्तार और तेज़ हो चली। यह सड़क आ गई! सड़क के एक तरफ पेड़ों की घनी छाया के कारण अन्धेरा था। मुत्तय्यन उसी तरफ़ से भागने लगा। उसे और किसी बात की सुधि ही न रही। भागना चाहिए, भागते रहना चाहिए। बस, यही एक विचार था उसके मन में। और वह भागता ही रहा। पुलिस के पीछा करने की आवाज़ धीमी हो चली और धीरे-धीरे

घटकर एकदम बंद ही हो गई। फिर भी वह नहीं रुका। भागता ही रहा।

सात-आठ मील आगे चलने पर वह सड़क कोल्लिडम नदी की तटवर्ती सड़क से जा मिली। जब मुत्तय्यन वहाँ पहुँचा, तब रात के करीब दो बज चुके थे। चाँद अस्त हो चुका था। चारों तरफ घना अन्धेरा छाया हुआ था। सड़क की एक तरफ़ राहगीरों के बोझा रखने का पत्थर का पुल सा दिखाई पड़ा। मुत्तय्यन थक कर चूर हो चुका था, सो जरा देर विश्राम करने के ख्याल से उस पर बैठा। बैठे-बैठे इच्छा हुई, ज़रा देर पैर पसारकर लेट लिया जाय। ज्यों ही वह लेटा, नींद ने उसे घेर लिया।

*** *** ***

पौ फटी। तरह-तरह के पंछियों की मधुर चहचहाहट सुनाई देने लगी। नालों से खेतों में जो पानी बह रहा था, उसका कल निनाद तानपूरे के सुर की तरह बज रहा था। कुछ दूर पर एक किसान हल कंधे पर रखे, जुताऊ बैलों को हाँकता चला आ रहा था। उसके कंठ से एक विलक्षण प्रकार का गाना निकल रहा था।

"अभिरामी ! तुम्हारे गले का यह हाल कब से हुआ ?" कहते-कहते मुत्तय्यन ने आँखें खोलीं। उठकर बैठा और चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ाई। अचानक उसे पिछले दिन की सब घटनाएँ याद हो आईं। पुल पर से झट उतर पड़ा और कोल्लिडम के तट पर उगी हुई काँस की घनी झाड़ियों में दौड़कर जा छिपा।

जब किसान पुल के पास पहुँचा, तब दूसरी तरफ़ से दो पुलिस वाले आये। रात-भर जागने और दौड़-धूप करने के कारण वे थके-माँदे दिखाई दे रहे थे।

"अबे बच्चू। यहाँ किसी आदमी को तुमने देखा ?" एक पुलिस वाले ने पूछा।

किसान घबराया हुआ सा उनकी तरफ ताकने लगा, तो दूसरे पुलिस वाले ने पूछा, "अरे ताकते क्या हो ? यहाँ कोई आदमी, लड़का या बच्चा-बुच्चा देखा तुमने ?"

किसान ने फ़ौरन एक कागज़ की पुड़िया पीछे की तरफ फेंक दी और पुकार-कर कहा, "नहीं साहब ! मैंने नहीं देखा साहब। कतई नहीं।"

एक पुलिस वाले ने किसान को पुड़िया फेंकते देख लिया था। उसने जाकर पुड़िया उठा ली और उसे खोलने लगा। यह देखकर किसान और जोर से चिल्लाने लगा, "नहीं साहब ! मैंने नहीं फेंकी थी वह पुड़िया ! बिलकुल नहीं साहब !"

पुलिस वाले ने पुड़िया खोली, तो उसके अन्दर से एक बिच्छू निकला। बिच्छू को देखते ही पुलिसवाला बड़बड़ाता हुआ उसे फेंक कर किसान पर झपटा। दोनों पुलिस वालों ने किसान के दोनों कान पकड़ लिये और धमकाने लगे, "बात क्या है,

बे ? सच-सच बोल। वरना · · · !"

"बता देता हूँ साहब ! अभी बता देता हूँ। हमारा दुरैसामी है न, दुरैसामी ! उसने क्या किया, कल मैं सो रहा था—सो रहा था, तो दुरैसामी ने क्या किया, एक ततैया पकड़कर कान में डाल दिया साहब ! मेरे कान में ! हाँ साहब, सच ! मैंने कहा, तुमने मेरे कान में ततैया डाला, तो मैं तुम्हारे कान में बिच्छू पकड़कर डालूँगा। इसीलिए एक बिच्छू पकड़कर लाया साहब ! बड़ी मुश्किल से पकड़ पाया साहब। मिलता कहाँ है बिच्छू ? यह एक मिल गया ग़नीमत समझो। · · · लेकिन न जाने कैसे आप लोग इस बात को जान गए ! बड़े अचंभे की बात है कि मुझे देखते ही आपने बिच्छू के बारे में सवाल कर दिया। वाह ! मेरी उसकी बात आप लोग जान कैसे गए ? हाँ ? · · "

पुलिस वालों की दिव्य दृष्टि पर किसान आश्चर्य कर ही रहा था कि उन्होंने झल्लाकर उसे धक्का देकर हटा दिया और अपनी राह ली।

*** *** ***

मुत्तय्यन ज़रा दूर पर छिपे-छिपे यह सारा नाटक देख रहा था। पुलिस के चले जाने के बाद वह काँस की घनी झाड़ियों से होकर मन-ही-मन कुछ सोचता हुआ चलने लगा। आज दिन-भर सड़क पर पुलिस की दौड़-धूप काफ़ी रहेगी, अतः आज सड़क पर भूलकर भी क़दम नहीं रखना चाहिए। उसने सुन रखा था कि अगर कोई काँस के झुरमुट के अन्दर छिप जाय तो उसका पता लगाना किसी से नहीं हो सकता। इस बात की सत्यता अब उसे पूर्ण रूप से विदित हो गई। काँस की झाड़ी में दस फुट की दूरी पर खड़े व्यक्ति को भी देखना संभव नहीं। कोलिडम के तट पर तो मीलों तक काँस की घनी झाड़ियाँ फैली हुई थीं। जो उसके अन्दर छिप जाय, उसे कैसे ढूँढा जाय, चाहे कितने भी आदमी तलाश में क्यों न लग जायें ?

इसका अर्थ यह हुआ कि काँस की झाड़ी में वह जितने दिन चाहे, छिपकर रह सकता है। पुलिस को धता बता सकता है। पर प्रश्न यह है कि इस तरह छिपकर उसे करना क्या है ? क्यों छिपे वह ? आख़िर गीदड़ों की-सी यह ज़िन्दगी कितने दिन तक बसर की जा सकती है ? उसे अभिरामी से मिलना है। यह कैसे होगा ? आख़िर इसका उपाय क्या हो सकता है ?

अभिरामी की याद आई तो मुत्तय्यन यह सोचने लगा कि वह घर पर ताला लगाकर कहाँ चली गई होगी ? अचानक उसे बुढ़िया शेंकमलम की याद आई। हाँ ! जब पुलिस वाले उसे ले जा रहे थे तब शेंकमलम सामने से गुज़री थी। उसे देखकर वह रुक गई थी और कुछ देर आश्चर्य के साथ उसकी तरफ़ देख भी रही थी।

अगर तभी पता होता कि ये कम्बख्त उसे गिरफ़्तार करके ले जा रहे हैं, तो शेंकमलम को इतना तो कह दिया होता कि ज़रा अभिरामी की देख भाल कर लेना ! पर किसको पता था कि यह नौबत आयगी ? फिर भी शेंकमलम बिचारी भली औरत है। वह ज़रूर अभिरामी के पास गई होगी। उसे सारी बात समझाकर अपने साथ ले गई होगी। ठीक ! बात यही होगी। वरना अभिरामी और कहाँ जा सकती थी ?

या शायद''''''शायद''''''मुख़्तार पिल्लै तो दुबारा नहीं आ गया ?

यह ख़याल उठते ही मुत्तय्यन को ऐसी मर्मान्तक पीड़ा हुई जैसे हजार बिच्छुओं ने एक साथ डंक मार दिया हो। उसने जोर से सिर हिलाकर उस विचार को दिमाग़ से निकालने की कोशिश की। अरे, पिल्लै तो कायर है, डरपोक ! इतनी हिम्मत उसमें नहीं हो सकती। लेकिन, लुच्चा, लफंगा कहीं का ! अब तक उसने मेरा कुछ कम बिगाड़ा है ? पुलिस में झूठी शिकायत लिखाकर मुझे गिरफ़्तार कराया। जल्लाद कहीं का ! अभी सामने आये तो खून पी जाऊँ उस दुरात्मा का।

मारे क्रोध के मुत्तय्यन आपे से बाहर हो गया और आसपास की काँस को तोड़-मरोड़ कर फेंकने लगा। काँस की तेज़ धार से उसकी हथेली कट गई और उससे ख़ून टपकने लगा, पर उसे इसकी सुध कहाँ ?

अचानक उसके पास 'धत' से एक पत्थर आ गिरा ! दूर से "छू !" "छू !" की आवाज आई। काँस को हिलते देखकर किसी ने समझ लिया होगा कि अन्दर गीदड़ दौड़ रहा है और पत्थर मारा होगा।

अब मुत्तय्यन समझा कि काँस की झाड़ी के अन्दर भी सावधान रहना आवश्यक है।

❀ ❀ ❀

सांयकाल का समय था। सूरज डूब चुका था। अंधेरा धीरे-धीरे छाने लगा था। मुत्तय्यन काँस के झुरमुट से निकला और सड़क पर आया। पिछले दिन दोपहर के बाद उसने खाना नहीं खाया था, इसलिए भूख उसे सता रही थी। तन शिथिल हो गया था। लड़खड़ाता चला।

सड़क की दूसरी तरफ़ राजन नहर के किनारे पर केले के पेड़ों का एक बग़ीचा था। बड़े-बड़े केले गुच्छों पर से लटक रहे थे। मुत्तय्यन गिरता-पड़ता वहाँ पहुँचा। केले के एक गुच्छे में फल पके हुए से मालूम पड़े। मुत्तय्यन ने उसमें से एक फल तोड़ा और उसमें चाव से दाँत गाड़े। पर वह एकदम कच्चा निकला। उसे थूक दिया और निराश मन आगे बढ़ा।

कुछ दूर पर नारियल के बग़ीचे के बीच में एक मन्दिर का कलश दीख रहा

था। उसके पास कहीं धुआँ उठ रहा था। मुत्तय्यन ने सोचा, वहाँ कोई गाँव होगा; गाँव के घरों में इस समय खाना तैयार हो रहा होगा। यह विचार उठते ही मुत्तय्यन के मुँह में पानी भर आया। पेट में चूहे दौड़ने लगे। मुत्तय्यन के पैर उसे बरबस उस गाँव की तरफ़ ले चले।

१६

चोर ! चोर !

तिरुपरनकोविल की हवालात से दो कैदी बचकर भाग गए, यह ख़बर मुँह-मुँह से काफ़ी दूर तक फैल गई थी। यह अफ़वाह फैली थी कि दोनों भगोड़े मुद्दत के चोर हैं। ख़ून-ख़राबी से नहीं हिचकते। क़ातिल हैं, क़ातिल। तरह-तरह की कहानियाँ फैलीं कि फ़लाँ गाँव में उन्होंने फ़लाँ जुल्म किया। फ़लाने का क़त्ल किया था, फ़लाने को लूटा था, इत्यादि। चार जने कहीं एक साथ बैठ जाते तो यही गप्पें होतीं। कुछ लोग मौक़ा पाकर वे सब क़िस्से-कहानियाँ सुनाने लग जाते, जो उन्होंने इधर-उधर से सुन रखी थीं।

पनंगुडी का गाँव। सुब्बय्या मुदलियार का घर। मुदलियार दालान में बैठे सन्ध्यानुष्ठान कर रहे थे। मुदलियार की पत्नी भोजन परोसने के लिए पत्ते बिछा रही थी। मुदलियार की बूढ़ी माँ आँगन के एक कोने में लेटी हुई थी। कमरे की ताक पर मिट्टी के तेल की एक छोटी सी बत्ती जल रही थी। मुदलियार का लड़का उसकी धीमी रोशनी में बैठा अलाप के साथ सबक याद कर रहा था।

"इसलिए, लड़को ! मुद्दत का चोर कभी-न-कभी पकड़ा ज़रूर जाता है।" इस उपदेश के साथ लड़के ने सबक ख़त्म किया।

ठीक इसी समय बाहर कुत्ता भूँकने लगा।

मुदलियार ने अपनी पत्नी से पूछा, "क्यों जी ? पीछे के किवाड़ का कुण्डा लगा दिया न ? गाँव-गाँव में चोरों का डर छाया हुआ है। सुना है, तिरुपरनकोविल की जेल से दो कैदी बचकर भाग निकले हैं।"

"चोर आवें तो आने दो ! यहाँ धरा क्या है, जिसे ले जायगा ? ले-देकर एक कंगन का जोड़ा था, लगान अदा करने के लिए उसे भी तुमने बेच डाला। चोर से हमें क्या डर ?" पत्नी ने झुँझलाकर कहा।

इतने में बाहर दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ आई। सब चौंक पड़े। फिर खटखटाहट हुई।

"कौन है ?" मुदलियार ने चिल्लाकर पूछा।

"मैं हूँ जी ! ज़रा दरवाज़ा खोलिए।"

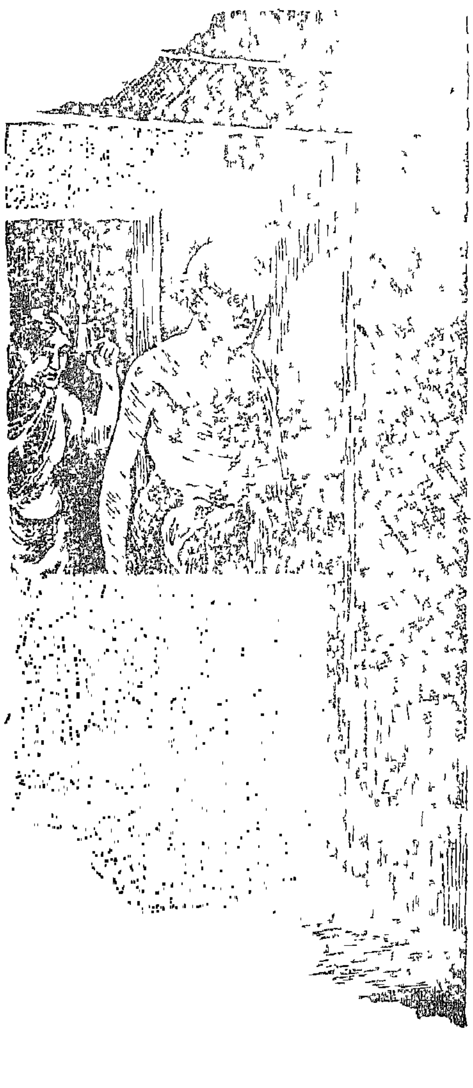
"मैं हूँ का क्या मतलब ? कौन हो तुम ?"

"इसे क्या मतलब? चलो, मैं हूँ। खोलिए तो दरवाज़ा!"

"कौन है इस तरह अकड़कर बोलने वाला?" कहते कहते मुदलियार उठे।

आँगन में लेटी हुई उनकी माँ यह सुनकर हकबका उठी और मुदलियार का रास्ता रोक लिया। "न जाना बेटा! मेरी बात मानो। न जाना तुम!"

मुदलियार ने माँ को एक तरफ हटा दिया और फुरती के साथ बाहर चले। बुढ़िया कहते-कहते उठी और पास से बत्ती को लेकर बेटे के पीछे-पीछे चली।



मुदलियार ने दरवाज़ा खोलते ही पूछा, "कौन है वह?"

"बड़ी भूख लगी है, चौधरी जी! कुछ खाने को दे सकते हैं?" मुत्तय्यन ने दीन स्वर में याचना की।

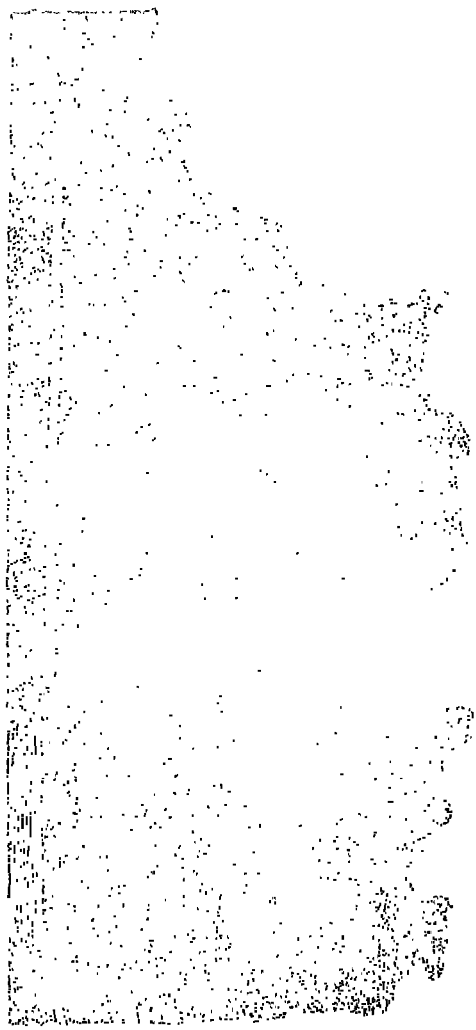
उसकी बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि बुढ़िया ने "अरे बाप रे! चोर आया!" चिल्लाती हुई बत्ती नीचे गिरा दी। बत्ती बुझ गई। अँधेरा छा गया।

चारों तरफ़ से बुढ़िया के शोर की गूँज सी उठी—"चोर!" "चोर!"

पड़ोस के घर से, सामने के घर से और आस-पास के घरों से शोर मचा, "चोर!" "चोर!" यह शोर घर-घर फैल गया और गाँव के आख़िरी घर तक पहुँचा। "चोर!" "चोर!" चिल्लाते हुए कुछ लोगों ने किवाड़ बन्द करके कुण्डे लगा दिए।

कुछ और वीर पुरुष दौड़कर बाहर निकल आए । लाठी, मूसल, हँसिया, कुदाल, कुल्हाड़ी—जिसके हाथ जो लगा, उठाकर ले आया ।

बत्ती बुझते ही मुदलियार का साहस भी बुझ गया । वह झट घर में घुस गये और किवाड़ बंद करके कुण्डा लगा दिया । क्षण-भर के लिए सुत्तय्यन हक्का-बक्का सा खड़ा रहा । बाद में देखा, चारों तरफ से लोग शोर मचाते हुए भागे आ रहे हैं । समझ गया कि वहाँ खड़े रहने में ख़तरा है ।



"वह भाग रहा है । वह ! छोड़ो मत ! पकड़ो, पकड़ो !"—लोग तरह-तरह से चिल्ला उठे । गली के सब कुत्ते एक साथ भूँकने लगे ।

कुछ दूर भागते रहने के बाद सुत्तय्यन ने देखा, चारों तरफ से लोग उसीकी तरफ़ भागे आ रहे हैं । उसे साफ़ प्रतीत हुआ कि अब भागना बेकार है । मन्दिर के सामने एक दिये का खंभा था । सुत्तय्यन ने उसके पास खड़ा होकर लोगों को यह समझाना चाहा कि मैं चोर नहीं हूँ । लेकिन रोशनी के पास पहुँचने पर क्या देखता है कि एक आदमी हाथ में छुरा लिये उसकी तरफ़ भागा आ रहा है । अगले ही क्षण आगन्तुक ने छुरा भोंकने के लिए हाथ उठा दिया । सुत्तय्यन ने झट अपने को बचा लिया और झपटकर उसके हाथ से छुरा छीन लिया । इस

छीना-झपटी में आने वाले के कन्धे पर छुरा लग गया और खून बह निकला। वह धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा।

मुत्तय्यन के हाथ में अब छुरा था। वह खून से लथपथ था। मुत्तय्यन के हाथ पर और कमीज़ पर खून था। लैंप की रोशनी में मुत्तय्यन ने यह देखा। बस, एक ही क्षण में उसके चेहरे का भाव भयानक हो उठा। आँखें अपने-आप तरेरकर ताकने लगीं। वह दाँत पीसने लगा। खून का नशा शायद इसी को कहते हैं।

इतने में बहुत से लोगों ने लाठी वगैरह लिये उसे चारों तरफ़ से घेर लिया। मुत्तय्यन छुरा तानकर गरज उठा, "आओ सब! एक-एक की खबर लेता हूँ!" यह कहकर वह दाँत पीसने लगा।

लोगों ने उसका वह भयानक चेहरा देखा। खून से लथपथ छुरा देखा। ज़मीन पर पड़े घायल आदमी को देखा। यह सब देखकर एक आदमी घबरा गया और "हाय! हाय!" चिल्लाता हुआ भाग निकला। बस, भीति का रोग घड़ी-भर में सब पर छा गया। सभी के सब तितर-बितर होकर बेतहाशा भागने लगे। मुत्तय्यन भयानक रूप से चिल्लाता हुआ उनका पीछा करने लगा।

१७

नदी किनारे

पाँच मिनट के अन्दर उस सारी गली में एक भी आदमी नहीं रहा। घायल आदमी तक उठकर भाग गया। सिर्फ़ कुछ आवारा कुत्ते जहाँ-तहाँ खड़े भूँक रहे थे।

मुत्तय्यन घरल्ले से चलकर गाँव से बाहर निकला। जिस काम के लिए वह आया था, वह तो पूरा नहीं हुआ। उसे खाना नहीं मिला। उसकी भूख नहीं मिटी। फिर भी उसके शरीर की सारी थकान उस समय न जाने कहाँ चली गई थी। एक अवर्णनीय उत्साह उसके मन में उमड़ रहा था। उसके अंग-अंग में एक नई उमंग का संचार हो रहा था। थोड़े में, वह विजयोन्माद में झूम रहा था।

संसार में कायर ही अधिक होते हैं। जान पर खेल जाने वाला एक व्यक्ति जान के प्यारे सैकड़ों आदमियों का अकेले मुकाबला कर सकता है। इस सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन उसे आज अनुभव में मिला। स्वभावतः ही साहसिक कार्य उसे पसंद थे। सो इस अनुभव ने उसमें असीम उत्साह और आत्म विश्वास भर दिया।

तारों के झिलमिल प्रकाश में मुत्तय्यन अन्धाधुन्ध चला जा रहा था। चलते-चलते आखिर वह एक ज्वार के कटे हुए खेत में जा पहुँचा। वहाँ एक मचान था। उस में कोई नहीं था। मुत्तय्यन उसपर चढ़कर वहीं लेट गया। काफ़ी देर तक उसे नींद नहीं आई। करवटें बदलता रहा। उसके मन में एक के बाद दूसरे कई विचार लहरों की तरह उठ रहे थे। यह कहने की आवश्यकता भी है कि कल्याणी और अभिरामी के ही विचार उनमें सबसे अधिक थे?

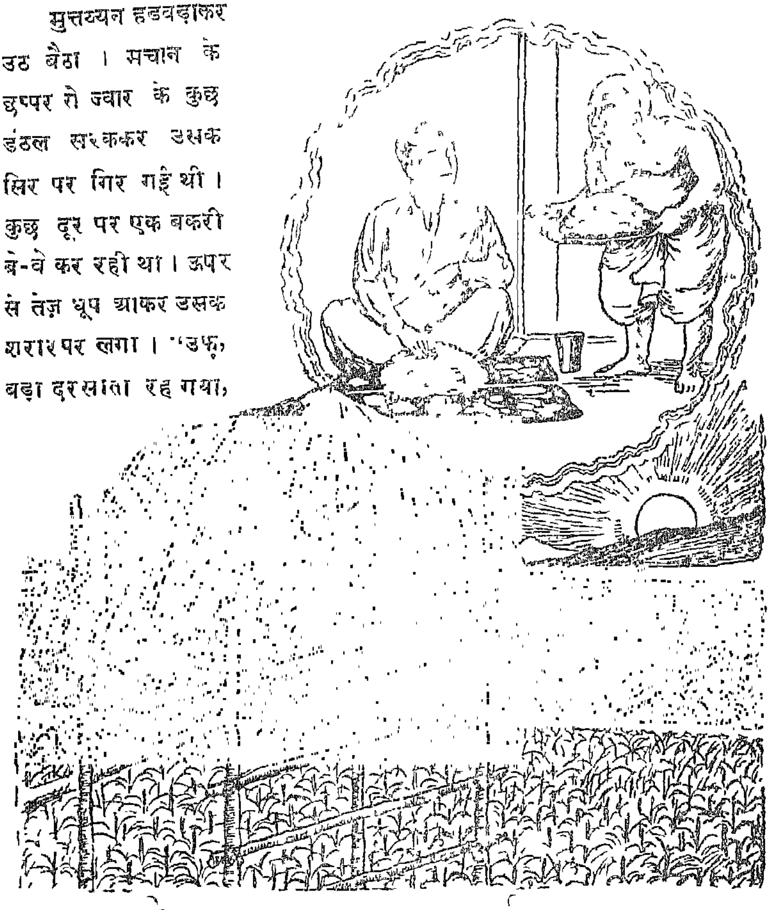
***   ***   ***

मुत्तय्यन के सामने एक लंबा-चौड़ा केले का पत्ता बिछा हुआ है। श्रीकृष्ण के राज-भवन में सुदामा के आगे जैसे तरह-तरह के खाद्य-पदार्थ परोसे हुए थे, ठीक उसी तरह मुत्तय्यन के भी आगे विविध प्रकार की खाने की चीज़ें परोसी हुई हैं। भात, सब्ज़ियां, मिठाइयाँ, पक्वान वग़ैरह के ढेर लगे हुए हैं। मुत्तय्यन उन सब पर टूट पड़ा है और मुट्ठी भर-भरकर मुँह में डालता जा रहा है! रसोइया एक हट्टा-कट्टा नाटा आदमी है। वह थाली में भर-भरकर खाना ला रहा है और परोस रहा है। वह डालता ही जाता है कि मुत्तय्यन "और डालो!" "और डालो!" कहता जा

रहा है। आखिर रसोइया झल्ला उठता है और "अब तुम्हारे सिर पर ही डालूँगा" कहकर थाली मुत्तथ्यन के सिर पर दे मारता है।......

*** *** ***

मुत्तथ्यन हड़बड़ाकर उठ बैठा। मचान के छप्पर से ज्वार के कुछ डंठल सरककर उसके सिर पर गिर गई थी। कुछ दूर पर एक बकरी बे-बे कर रही थी। ऊपर से तेज़ धूप आकर उसके शरीर पर लगी। "उफ़, बड़ा दरसाती रह गया,"



मुत्तथ्यन ने सोचा। तुरन्त उसे रात की सब घटनाएँ याद आयीं। पास में खून से रँगा हुआ छुरा पड़ा था, जो इस बात का प्रमाण दे रहा था कि यह सब सपना नहीं सच है।

भूख उसे परेशान किये दे रही थी। मचान पर बैठे-बैठे उसने चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई। कुछ दूर पर कोल्लिडम नदी दिखायी दी। उसके प्रवाह के पास एक

छकड़ा खड़ा था। छकड़े से एक स्त्री और पुरुष उतरे। उन्होंने गाड़ी के अन्दर से एक पोटली निकाली। मुसव्यल समझ गया कि पोटली में संबल ही होगा। उसकी भूख सौगुना बढ़ गई।

मिनट भर मुसव्यल सोचता रहा। मचान पर एक कम्बल का चीथड़ा पड़ा हुआ था। संयोगवश मुसव्यल की निगाह उस पर पड़ी। उसने फिल्मों में डगलस फेयरबेंक्स-जैसे चोर-वेशधारी अभिनेताओं को देखा था। उनका चित्र अब उसके सामने आया। फौरन कुछ निश्चय करके उसने चाकू से कंबल का एक टुकड़ा काट लिया। आँखों के लिए दो छेद उसमें बना लिए और उसे मुँह पर बाँध लिया। इसके बाद छकड़े की तरफ़ तेज़ी से गया।

स्त्री-पुरुष दोनों ने आराम से दातुन की और फिर नदी-किनारे, बालू पर बैठकर संबल की पोटली खोली। पिछली रात को तैयार किये गए "इमली, भात" की मोहक सुवास चारों तरफ फैलने लगी। भात पर जो पत्ते थे उनको पतिदेव ने उठाकर नदी के जल में धो दिया और बालू पर उन्हें बिछाया। फिर पत्नी से कहने लगे, "देखो! रोज तुम्हीं मुझे खाना परोसा करती हो। आज मैं परोसूँगा। ठीक है न?"

"जब तुम्हीं इतने उदार हो गए, तो न जाने आज क्या होने वाला है। न मालूम आँधी आयगी या प्रलय ही मचेगी! कौन जाने हाथ का कौर मुँह तक पहुँचे ही न पाय," पत्नी ने कहा।

इसी समय एक रोम-शोषक गरज सुनाई दी, "ह हा हा!" दोनों चौंक पड़े। पास की काँस की झाड़ियों में से एक नकाबपोश व्यक्ति आता दिखाई दिया। उसका रूप बड़ा भयानक था। उसके हाथ में छुरा था।

यह देखकर पति-पत्नी के प्राण सूख गए। दोनों घबराकर उठे और छकड़े की ओर सरपट भागे। वह व्यक्ति दाँत पीसता हुआ और बीच-बीच में हृदय-भेदी शोर मचाता हुआ, कुछ दूर तक उनके पीछे भागा। बाद में वह लौटा, नदी-किनारे जाकर संबल के आगे बैठ गया और बड़े चाव से उसे ले-लेकर खाने लगा। क़रीब आधी पोटली चट कर जाने के बाद उसने नदी में हाथ धो लिए और पोटली हाथ में लेकर काँस की झाड़ी में कहीं घुस गया।

छकड़े के पास अवाक् से खड़े दोनों जने यह सब दृश्य देख रहे थे। जब वह व्यक्ति झाड़ी में घुसकर ओझल हो गया, तो दोनों गाड़ी लेकर वहाँ से चल दिए।

१८

अभिरामी की यात्रा

मुत्तय्यन और कुरवन के बच निकलने की ख़बर पाते ही सब इन्सपेक्टर सर्वोत्तम शास्त्री घर से निकले थे न ? उसके बाद पाँच-छः दिन तक वह घर नहीं लौटे। आख़िर एक दिन शाम को वह घर पहुँचे। चोरों की तलाश में लगातार दौड़-धूप करने के कारण वह बहुत ही थके हुए थे। माथे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। चेहरा देखा नहीं जाता था।

आते ही वह कमरे में पड़ी आरामकुर्सी पर बैठ गए और लंबी साँस ली। मीनाक्षी जानती थी कि ख़ाली हाथ सामने जाने पर वह चिढ़ेंगे। इसलिए वह गिलास भर ठंडा पानी लेकर उनके पास पहुँची। शास्त्री जी पानी पी चुके तो मीनाक्षी बोली, "तुमने भी ग़ज़ब कर दिया। बड़ी देर लगा दी लौटने में। मुझे तो बड़ी चिन्ता हो गई थी। उस बेचारी के तो आँसू रोके नहीं रुकते······।"

"रो रही है न ? ख़ूब रोने दो !······" शास्त्री जी बात काटकर बोले। अचानक उन्हें शायद कुछ याद आ गया। पूछा, "वह लड़की अभी तक यहीं है क्या ?"

"हाँ यहीं है। और जायगी कहाँ ? उसका तो और कोई आसरा ही नहीं।"

"वाह वाह ! उसके लिए हम क्या करें ? कहाँ है वह ? बुलाओ तो उसे !"

अभिरामी किवाड़ के पास खड़ी उनकी बातचीत सुन रही थी।—यह जानने की उत्सुकता से कि भैया के बारे में शास्त्री जी क्या ख़बर लाये हैं। शास्त्री जी की आख़िरी बात सुनकर वह आँखें पोंछती हुई बाहर आई।

शास्त्री जी ने उसे देखा तो विषाद-युक्त व्यंग के साथ बोले, "हाँ, लड़की ! बेवक़ूफ़ लड़की ! रो रही है न ? रो। ख़ूब रो ! उस दिन तूने प्रार्थना की थी न, कि तेरा भैया पकड़ा न जाय ? वह पकड़ा नहीं गया। तेरी प्रार्थना पूरी हो गई। अब तो खुश है न ?"

यह कहकर शास्त्री जी थोड़ी देर अभिरामी की ओर देखते रहे और फिर माथा पीटते हुए बोले, "हाय री पगली !"

अभिरामी कुछ समझ नहीं सकी। उसे इतना मालूम हुआ कि मुत्तय्यन पकड़ा नहीं गया। लेकिन शास्त्री जी की बातों से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कुछ

अनहोनी बात हो गई है।

"उसे क्यों धमकाते हो? बेचारी निरी बच्ची है, क्या जाने यह सब बात?" मीनाक्षी ने कहा।

"हाँ हाँ। बड़ी भोली है। कुछ नहीं जानती। उसका भाई भी कुछ नहीं जानता। अरी लड़की! अब अपने भैया को भूल जा। हालत अब क़ाबू से बाहर हो गई है। अगर वह हवालात से बचकर न भागता, तो अगले ही दिन मैं उसे रिहा कर देता। अगर वह फ़ौरन पकड़ा गया होता, तो भी सज़ा बहुत कम होती। अब तो उसके खिलाफ़ लूट और डकैती के पाँच केस दर्ज हो चुके हैं। उस पुराने मुजरिम कुरवन को और उसके साथियों को तेरे भाई ने अपने साथ मिला लिया है। हत्या को छोड़कर दण्ड विधान में बताये गए और सब अपराध वह कर चुका है। किसी-न-किसी दिन वह पकड़ा ज़रूर जायगा। तब कम-से-कम काले पानी की सज़ा होगी उसे।''''''बस, यह समझ ले कि अब तेरे कोई भाई नहीं है।"

सर्वोत्तम शास्त्री ने एक ही साँस में यह सब बात कह डाली, तो अभिरामी फूट-फूटकर रोने लगी। मीनाक्षी उसे प्यार के साथ अन्दर ले गई और सान्त्वना भरे स्वर में बोली, "रोओ न, बेटा! वह गुस्से में बड़बड़ा रहे हैं। तुम पर ऐसी कोई विपदा नहीं आयगी।"

मीनाक्षी जब फिर कमरे में आई, तो शास्त्री जी बोले, "इस लड़की को आख़िर क्या करें? कितने दिन तक हम इसे अपने घर में रख सकते हैं? यह तो ठीक नहीं है। इसके सगे-सम्बन्धी कोई नहीं हैं, क्या?"

"कोई नहीं हैं। यही तो कठिनाई है! बड़ी दुविधा है।''''''मेरी एक सलाह है। बताऊँ?"

"हाँ हाँ। ख़ुशी से बताओ। शास्त्रों में भी उत्तम पत्नी की यही व्याख्या की गई है कि वह मंत्रणा देने में मंत्री के समान होती है।"

"अपना मज़ाक रहने दो। देखो, तुम्हारी बहन मद्रास शहर में सरस्वती विद्यालय चला रही हैं न? बार-बार लिख रही हैं कि हम भी उनकी मदद करें। तो क्यों न इस लड़की को वहाँ भेजा जाय? यह भी तो मदद है!"

"वाह-वाह। ठीक सूझा तुम्हें! आज ही लिख दो उन्हें।"

"देखा! दुनिया में ननदें भी कभी-कभी काम आती हैं।" कहकर मीनाक्षी हँसने लगी।

इस निश्चय को शास्त्री-दम्पति ने शीघ्र ही कार्यान्वित किया। मीनाक्षी ने अपनी चिट्ठी में अभिरामी की समझ और गुणों की ऐसी प्रशंसा की थी कि सरस्वती-विद्यालय की अध्यक्षा शारदामणि बहन ने उसे तुरन्त भिजवाने के लिए

लिख दिया। यह निश्चय हुआ कि मीनाक्षी खुद ही अभिरामी को मद्रास ले जाकर सरस्वती विद्यालय में भर्ती करा आये।

इसके अनुसार मीनाक्षी अम्माल और अभिरामी एक दिन रामेश्वरम् एक्सप्रेस से मद्रास के लिए रवाना हुए। जब रेल चलने लगी तो अभिरामी की आंखें डबडबा आईं। इस विचार से उसे मर्मान्तक पीड़ा हुई कि भैया को मुसीबत में छोड़कर मैं दूर देश जा रही हूँ। जब उसने सोचा कि मुत्तय्यन की इस सारी विपदा की जड़ मैं ही हूँ, तो उसकी पीड़ा सौ गुनी बढ़ गई। आह! अगर इस समय मुत्तय्यन भी साथ होता, तो यात्रा का कैसा मज़ा आता!

जब वह यह विचार कर रही थी, तब अचानक मुत्तय्यन का नाम उसके कानों में पड़ा। वह ध्यान से सुनने लगी।

❋❋❋ ❋❋❋ ❋❋❋

"अखबार में मुत्तय्यन के बारे में कोई खबर है?" उसी डिब्बे में बैठे एक सज्जन ने दूसरे से पूछा।

"अखबार को क्या और कोई काम नहीं है कि दुनिया भर के चोरों-डाकुओं की खबरें छापें?" एक और ने कहा।

"अजी, यह कोई ऐसा वैसा चोर नहीं है। कल की बात तो आपने सुनी ही होगी?"

"नहीं तो। और कहीं डाका पड़ा क्या?"

"नहीं जी, कोई मामूली डाका नहीं। कहते हैं शंकरमठम् गाँव में दो दिन पहले एक शादी हुई थी। दूल्हा-दुलहन समेत बाराती अपने गाँव लौट रहे थे। रास्ते में सूरज डूबा ही था कि अचानक मुत्तय्यन और उसके साथियों ने उन्हें आकर घेर लिया। सभी मर्द डर के मारे भाग खड़े हुए। लेकिन नई ब्याही लड़की बड़ी हिम्मत के साथ आगे बढ़कर मुत्तय्यन के सामने खड़ी हो गई और बोली, 'भैया, मुझे अपनी छोटी बहन समझ लेना। अभी परसों मेरी शादी हुई है। इसलिए हमें कुछ न करो भैया!' लोग कहते हैं, लड़की की यह बात सुनकर कि 'मुझे अपनी बहन मान लेना!' मुत्तय्यन अचानक बच्चे की तरह रो पड़ा। यही नहीं, उसने बारातियों को कुछ नहीं कहा और अपने आदमियों को लेकर पल-भर में नदारद हो गया। कैसी आश्चर्य की बात है! न?"

"यह भी सुनने में आता है कि मुत्तय्यन की एक बहन थी, जिस पर वह जान देता था।"

अभिरामी सब गप्पें सुन रही थी। उसकी आँखें भर आईं। वह बड़ी कठिनाई से आँसू रोक पाई।

"भैया, भैया! इस जीवन में फिर तुम्हें देख भी पाऊँगी?" उसके हृदय में यही अश्रुमय पुकार मची हुई थी।

१६

विवाह-मण्डप में चोर

"कैंप, कोल्लिडस की घाटी ।

"महाराज राजश्री महामहिम मुत्तय्या पिल्लै, बुधवार, २० जुलाई की रात के ११ बजे आपके घर पधारेंगे । उनका समुचित स्वागत-सत्कार करने के लिए तैयार रहें । यदि आपकी तरफ़ से ज़रा भी बेपरवाही होने की ख़बर मिली, तो आपको कठोर दण्ड दिया जायगा ।"

इस तरह के पत्र उस तहसील के पचास-साठ रईसों को एक ही दिन मिले । जिन-जिनको यह पत्र मिला, उनके प्राण सूख गए । 'ज़बानी डाक' के ज़रिये तहसील भर में और आस-पास के इलाकों में यह ख़बर फैल गई । लोगों में ऐसी घबराहट छा गई, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ।

बड़े-बड़े अमीर घरानों के लोग किवाड़ों पर दोहरे कुण्डे लगाने लगे । फ़ौलाद की तिजोरियों पर एक की जगह दो ताले लगाये गए । बहुत से लोग सिरहाने पर लंबी-चौड़ी लाठी रखकर सोने लगे । बहुत ही बड़े लोगों ने बन्दूक के लाइसेंस के लिए अर्ज़ियाँ भेजीं । और कुछ रईसों ने बड़े-बड़े पहलवानों को तनख़्वाह देकर अपने घरों में रख लिया । कुछ और ज़मींदार ख़ुद ही लाठी आदि चलाना सीखने लगे ।

रात को गली में कहीं एक कुत्ता भूँका, तो बस, सभी गाँव वालों की नींद रात-भर के लिए हराम ।

सूरज डूबने के बाद सड़कों पर चलना करीब-करीब बन्द ही हो गया । कभी विवश होकर रात को सफ़र करना पड़े, तो भी लोग बीस-पचीस का दल बाँधकर, हाथों में मशाल लेकर ही चलते थे । एक बार इस तरह आमने-सामने चलने वाले दो दलों ने एक दूसरे को डाकू-दल समझ लिया और एक दूसरे की हड्डी-पसली चूर कर दी !

मुत्तय्यन भी अविश्वसनीय साहस के काम करता ही गया । कभी वह चिट्ठी में निर्धारित तारीख़ पर ही डाका डालने जाता । फिर कभी आगे-पीछे जाता ।

जहाँ कहीं भी जाता, या तो अकेले जाता, या एक दो ही साथियों के साथ जाता । पर रईस लोग यह समझ लेते कि थोड़ी दूर पर उसके गिरोह के लोग तैयार खड़े होंगे और इस डर के मारे मुत्तय्यन को मुँह माँगी चीज़ देकर पिंड छुड़ाते ।

कभी-कभी मर्द लोग भुजायें ठोककर बाहर निकलते भी तो स्त्रियाँ उनके पाँव पकड़ कर गिड़गिड़ातीं कि चोरों को कुछ-न-कुछ दे-दिला कर छुटकारा पा लें।

मुत्तय्यन के बारे में वे सिर-पैर की अफ़वाहें फैलने लगीं। ज्यों-ज्यों अफ़वाहें फैलती जाती थीं, त्यों-त्यों लोगों की भीति भी बढ़ती जाती थी। और लोगों में जितनी भीति बढ़ती जाती थी, मुत्तय्यन का भी दुःसाहस उतना ही बढ़ता जाता था।

गोविन्दनल्लूर में उसने जो काम किया, वह उसके दुःसाहस की मानो चरम सीमा थी।

*** *** ***

गोविन्दनल्लूर के एक बड़े रईस के यहाँ विवाह था। सारी गली को एक करके मंडप बनाया गया था। मंडप में एक प्रसिद्ध गायक का गाना हो रहा था। शाम के आठ बजे थे। गैस के प्रकाश में आँखें चौंधियाई जा रही थीं। पुरुषों की अँगूठियाँ और स्त्रियों के कर्णाभूषण उस प्रकाश में जगमगा रहे थे। चन्दन, गुलाब और अगर बत्तियों की सुगन्ध मन को मोहित किये दे रही थी।

एक तरफ़ खूब सजे हुए सोफ़े पर दूल्हा-दुल्हन बैठे थे। उस सारे पंडाल में केवल यही दो ऐसे थे जिनके मुँह नहीं चल रहे थे। बाकी सब लोग या तो पान-तम्बाकू खा रहे थे, या कुछ-न-कुछ गप-शप कर रहे थे।

गायक महोदय अपनी संगीत-प्रवीणता का अद्भुत प्रदर्शन कर रहे थे। सन्त त्यागराज के एक सुन्दर कीर्तन की धज्जियाँ उड़ाने के बाद उन्होंने एक तमिल गीत गाना शुरू किया, जिसके शुरू के बोल थे—'मुत्तु कुमरय्यने !"

यह गाना शुरू हुआ नहीं कि उस विशाल सभा में एकदम सन्नाटा छाया नहीं। यदि वहाँ एक सुई गिरती, तो उसकी भी आवाज सुनाई पड़ी होती।

पर अगले ही क्षण सभी लोग एक साथ फुसफुसाने लगे, मानो अपने क्षणिक मौन पर लज्जित हो गए हों। यद्यपि लोग धीमे ही स्वर में बातचीत कर रहे थे, फिर भी उतनी विशाल संख्या में लोगों की कानाफूसी भी सागर-गर्जन-सी बन गई थी, जिसमें बेचारे गवैये का स्वर कहीं दब गया।

वहाँ के सभी लोगों की बातचीत का विषय केवल एक था। और वह था, मुत्तय्यन !

यद्यपि सभी लोग मुत्तय्यन की ही बात कर रहे थे, तो भी दो व्यक्तियों की बातों पर खास तौर से ध्यान देना हमारे लिए आवश्यक हो गया है। वे दोनों ही हमारे पुराने परिचित हैं। इनमें से एक हैं पुड्डलम के धर्मकर्त्ता पिल्लै। और दूसरे हैं तिरुपरनकोविल मठ के मुख्तार शंकु पिल्लै।

"यह छोकरा हमारे ही गाँव का है, भाई साहब! बचपन से ही बड़ा बदमाश था वह। मैं अक्सर कहा करता था कि यह छोकरा बड़ा होने पर डाकू बनेगा," धर्मकर्त्ता पिल्लै बोले।

"मैं कहता हूँ यह सब इन पुलिस वालों की नालायकी का फल है। मैंने इस लफंगे की खूब ख़बर ली थी और फिर इसे पुलिस के हवाले किया था। पुलिस का निकम्मापन देखिये कि उसे हवालात से बच निकलने दिया······"शंकु पिल्लै ने गप्पें हाँकीं।

"हाँ, हाँ। मैंने सुना, पुलिस में भी कुछ लोग इसके साथी बने हुए हैं। इसीलिए उसे पकड़ा नहीं जा रहा है," धर्म कर्त्ता पिल्लै ने कहा।



"हो सकता है, क्यों नहीं? आजकल सज्जनता का ज़माना थोड़े ही है? चोरों-डाकुओं ही की चाँदी है। मेरी तो जान में जब तक तिरुपरनकोविल के सब इन्सपैक्टर का तबादला नहीं होगा, तब तक इस चोर को पकड़ना संभव नहीं। अगर आज मुझे पुलिस का प्रधान बनाया जाय तो यकीन मानिये, घड़ी भर में उसे पकड़कर अन्दर नहीं किया, तो फिर कहना। इस मिनट वह कहाँ है, यह मैं जानता हूँ।······"

मुख़तार पिल्लै यों बे-पर की उड़ा ही रहे थे कि अचानक सभा में फिर एक बार सन्नाटा छा गया। गवैये ने गाना बंद कर दिया। साजिन्दों ने बाजे मंच पर रख दिए। सभी लोग मुख़तार पिल्लै की तरफ़ एकटक देखने लगे। लोगों के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। आँखों में भीति छाई हुई थी।

यह सब देखकर मुख़तार पिल्लै का भी दिल धड़कने लगा। सब लोग

उनके सिर के ऊपर देख रहे थे, इसलिए उन्होंने भी सिर उठाकर देखा।

बस, देखते ही उनका सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। कलेजा मुँह को आने लगा।



उनके पीछे एक व्यक्ति खड़ा था। उसकी आँखों पर नकाब था और दायें हाथ में कटारी।

"अरे बाप रे!" पिल्लै चीत्कार कर उठे और तुरन्त उठकर भागने लगे।

अगले ही क्षण मंडप-भर के सब लोग उठ खड़े हुए और तितर-बितर होकर चारों ओर भागने लगे। गैस लाइट गिरकर टूट गए। बच्चे रोने लगे। स्त्रियाँ हाय-हाय करने लगीं। एकदम खलबली मच गई।

२०

शंकु पिल्लै का आत्म-समर्पण

अन्धाधुन्ध भागने वालों में मुखतार पिल्लै सबसे आगे थे। उनके पीछे-पीछे मुत्तय्यन भाग रहा था। किसी भी समय वह उन्हें एक ही झपट में पकड़ कर गिरा सकता था। पर वह उन्हें तुरन्त पकड़ना नहीं चाहता था। एकान्त स्थान में उन्हें धर दबाने के इरादे से वह उनके पीछे-ही-पीछे भाग रहा था। आखिर गाँव से ज़रा दूर बाहर, भूसे के एक ढेर के पास उसने उन्हें पकड़कर गिराया। उनकी छाती पर घुटना टेककर बैठ गया और चाकू तान लिया।

"शंकु पिल्लै साहब! बताइए तो, मैं इस मिनट कहाँ हूँ?" कहकर वह दाँत पीसने लगा।

भय के मारे शंकु पिल्लै अधमरे से हो गये। "भैया! मुझे छोड़ दो भैया! मैं तुम्हारे मामले में दखल नहीं दूँगा ......" शंकु पिल्लै बड़बड़ाने लगे।

"क्या कहा? मेरे मामले में दखल नहीं देंगे आप? अरे रे रे! आप महानुभाव को ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। आपको मेरे मामले में दखल देना ही होगा। ज़रूर। ह ह ह हा!" मुत्तय्यन विकट अट्टहास कर उठा।

फिर कठोर स्वर में पूछा, "रे पापी! सच-सच बोल! अभिरामी का क्या हुआ? इस समय कहाँ है वह? सच बताया तो जान बख्श दूँगा। वरना तेरी जान की खैर नहीं। बोल!"

"हाय रे मेरे बाप! सच-सच बताता हूँ। उस दिन के बाद मैंने उसे देखा ही नहीं। सुना है कि कोई उसे पुलिस-इन्सपेक्टर के घर ले गया। इन्सपेक्टर की पत्नी ने उसे मद्रास के किसी स्कूल में भर्ती कराया है। और कुछ नहीं जानता मैं। मुत्तय्या, तुम्हारे पैर छूता हूँ। मैं बाल-बच्चों वाला आदमी हूँ। बस, मुझे छोड़ दो!" शंकु पिल्लै सिसकियों के बीच बोले।

"तूने अबतक जो कुछ कहा, वह सही है न? अगर मालूम हुआ कि तूने झूठ बोला है तो बस, खून पी लूँगा। समझा?"

"नहीं, नहीं। मैंने झूठ बोला था। मेरे बाल-बच्चे नहीं हैं......।"

"भाड़ में जा तू और तेरे होने वाले बाल-बच्चे! मैं पूछता हूँ कि अभिरामी के बारे में तूने जो कुछ कहा था, वह सच है कि नहीं? उस दिन के बाद तूने उसे

देखा हो नहीं ?"

"बिलकुल नहीं। तुम्हारे सिर की क़सम! मुझे छोड़ दो। मेरी छाती दर्द कर रही है। दम घुट रहा है। तुम्हारा भला होगा·····।" शंकु पिल्लै अब सचमुच ही रोने लग गए।

मुत्तय्यन फिर बोला, "जा! चला जा! तुझे छूना ही पाप था और उसे धोने के लिए मुझे गंगा नहाना पड़ेगा। लेकिन अगर मुझे मालूम हुआ कि तूने फिर कोई काला कारनामा रचा, तो तेरा गला घोंट दूँगा, चाहे उससे मेरा हाथ भी काला क्यों न हो जाय। समझा ?"

यह कहकर मुत्तय्यन उठा। उसका उठना था कि मुख़्तार पिल्लै वहाँ से बे-तहाशा भाग खड़े हुए।

शंकु पिल्लै जब मुत्तय्यन के हाथ में अकेले फँसे थे, तब उसे वह मौक़ा मिला, जिसकी वह बहुत दिन से राह देख रहा था। कई बार उसने यह कहकर दाँत पीसे होंगे कि "उस बदमाश को एक बार फिर मेरे हाथ में फँसने दो। देखो कैसा मज़ा चखाता हूँ।" लेकिन जब उसका मौक़ा मिला, तब वह बदला नहीं ले सका। मुख़्तार पिल्लै की कायरता ने उसे एकदम अशक्त बना दिया था।

इसका एक और कारण भी था। अभिरामी के बारे में शंकु पिल्लै ने जो ख़बर सुनाई थी, उससे मुत्तय्यन के मन में एक भारी परिवर्तन हुआ। उसे विश्वास हुआ कि वह ख़बर सच थी। इसका असर यह हुआ कि उसके मन में द्वेष और कटुता की जो भावना थी, वह दूर हो गई। उसे ऐसा लगा मानों उसके हृदय पर का एक भारी बोझ हट गया। यहाँ तक कि घर छोड़ने के बाद पहली बार आज उसके मन में हर्ष की लहर-सी उठी।

ऐसी स्थिति में शंकु पिल्लै के काले ख़ून से अपना हाथ रँगना उसे सचमुच ही अच्छा नहीं लगा। यही कारण था कि उसने उन्हें छोड़ दिया। जब वह उठकर भाग गए, तो वह ख़ुशी-ख़ुशी सीटी बजाता हुआ वहाँ से चलने लगा।

* * *

वहाँ, विवाह-मण्डप में, चोर के चले जाने के बाद सब लोग फिर से एकत्र हुए और आपस में सलाह-मशविरा करने लगे। धर्मकर्त्ता पिल्लै, जो प्रधान मेहमानों में से थे, कुछ अन्य लोगों से बोले, "इतना सा छोकरा! अकेले यहाँ आकर इतनी खलबली मचाकर चला गया है और हम सब हाथ-पर-हाथ धरे खड़े हैं।"

यह सुनते ही एक लड़के ने, जो हाथ-पर-हाथ धरे खड़ा था; तुरन्त हाथ एक दूसरे से हटा दिए। जैसे उस लड़के को गुस्सा आया, वैसे ही वहाँ उपस्थित और भी कुछ लोगों का पौरुष जाग गया। सबने एक दूसरे को प्रोत्साहन दिया, "चलो

चलें !" "आइए, इसे अब छोड़ना नहीं चाहिए," इत्यादि । लाठियों व लालटेनों के साथ सब लोग चोर की खोज में निकले ।

गाँव के बाहर ज़रा दूर पश्चिम की तरफ़ जब वे पहुँच चुके थे, तब मुख़्तार पिल्लै सामने आते हुए मिले । लोगों को देखते ही वह बोले, "क्यों जी ? आप सब मनुष्य हैं कि और कुछ ? एक भला आदमी आगे जा रहा है, हम भी जाकर उसका साथ दें, यह ख़याल आपमें से किसी को भी क्यों नहीं आया ? अगर आप लोगों ने साथ दिया होता, तो उस बदमाश को वहीं-का-वहीं पकड़ सकते थे !"

उनकी बात पूरी होते ही ज़रा दूर से हँसी की आवाज़ आई । सुनकर पिल्लै का शरीर सिहर उठा । लेकिन किसी ने उनकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया । सब लोग उसी तरफ़ को भाग चले, जहाँ से हँसी की आवाज़ आई थी ।

गाँव से आधी मील पश्चिम में राजन नहर थी । उसमें उस समय पानी काफ़ी बह रहा था । नहर के आर-पार बाँस का एक पुल बना हुआ था । मुत्तय्यन जब उस पुल के नज़दीक पहुँचा, तो "वह भाग रहा है !" "छोड़ो मत !" "पकड़ो !" की आवाज़ आई । उसने देखा, बहुत से लोग उसका पीछा करते हुए भागे चले आ रहे हैं । तुरन्त उसे एक उपाय सूझा । पुल पर आधी से अधिक दूर पार करने के बाद उसने इस तरफ़ से कुछ बाँस की लकड़ियाँ खोलकर नहर में बहा दीं । फिर नहर के उस पार जाकर एक पेड़ के पीछे छिपकर खड़ा हो गया ।

चिल्लाते हुए जो लोग उसके पीछे आये, जब वे पुल के टूटे हिस्से के पास पहुँचे, तो धड़ाम से पानी में गिर पड़े ।

"हा हा हा !" का विकट अट्टहास करता हुआ मुत्तय्यन अन्धकार में विलीन हो गया ।

२१

पूस के मास

पूस का महीना। पिछले महीने तक जिन खेतों में हरियाली लहलहा रही थी, वहीं अब स्वर्णिम आभा फूट रही है। धान की बालें दानों से इस भाँति लदी हैं कि डंठलें उनके बोझ के कारण धराशायी हुई पड़ी हैं। प्रातःकाल के समय, उन-पर छिड़की हुई ओस की बूँदों पर जब बाल-सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानों मोतियों की असंख्य राशियाँ बिखरी पड़ी हों। मेंड़ों पर चलते समय ओस की बूँदें जब तलुओं पर लगती हैं, तो उनके शीतल स्पर्श से स्वर्गिक सुख प्राप्त होता है। कुछ मेंड़ों पर अरहर के पौधे लहलहा रहे हैं। उन पौधों पर सुनहरी नालिकाओं से झाँकने वाले नन्हें-नन्हें फूलों की निकाई का कैसे बखान करें? उनकी कान्ति को शब्दों में कैसे अंकित करें?

कुछ और मेंड़ों पर मुइयाँ के पौधों के झुरमुट से उगे हुए हैं। उनके उन पत्तों की कैसी हरीतिमा! कैसी कोमलता! उन पत्तों पर पड़े हुए एक-दो ओस-कण उनके हर कोंपल पर निखर उठते हैं और इस तरह लुढ़कते से रहते हैं, कि उन्हें दिन-भर देखते रहने की इच्छा होती है। लेकिन कठिनाई यह है कि धूप चढ़ते ही ये बूँदें न मालूम कहाँ ओझल हो जाती हैं!

जो खेत पक गये, उनमें बड़े सवेरे से लोग आ जाते हैं और फ़सल काटने लगते हैं। ऐसे खेतों में से ताज़ा भुसे की सुगन्ध छिटक रही है। जी चाहता है कि उस सुगन्ध का रसास्वादन करते हुए, और उस दृश्य का आनन्द लेते हुए सारा जीवन वहीं व्यतीत कर दें।

जब सूरज ठीक सिर के ऊपर पहुँच जाता है, तब फ़सल काटने का काम बंद किया जाता है। कटी फ़सल के गट्ठर बाँधे जाते हैं। फिर उन गट्ठरों को सिर पर उठा ले जाकर खलिहान में पहुँचाया जाता है।

सुनते हैं कि श्रीदेवी का निवास-स्थान लाल कमल का फूल है। हो सकता है, साल में दस महीने के लिए यह बात सही हो। पर पूस और माघ के महीनों में, हमारा विश्वास है, धान के खेतों-खलिहानों में ही श्रीदेवी का निवास होगा। उन महीनों में धान के खलिहानों का सौन्दर्य एवं श्रीविलास देखते ही बनता है। खलिहान के कुछ भागों में कटी फ़सल के गट्ठर लगाये जाते हैं। कुछ लोग उनको

दे-देकर पीटते हैं । जब धान छूट जाते हैं, तो एक तरफ़ भूसे का ढेर लगाते जाते हैं । धान के अम्बार लगाये जाते हैं ।

खलिहान के बीच में बरगद का एक विशाल वृक्ष शाखोपशाख होकर फैला हुआ है । कौए, गौरैया और तरह-तरह-के-पंछी, झुण्ड के झुण्ड उस पर बैठे चहचहा रहे हैं । हाँ, उस सुखद बेला में कौओं का 'काँव' 'काँव' भी मधुर संगीत-सा प्रतीत हो रहा है । बगले जब अपने पंख झाड़ते हैं, तब उसकी आवाज़ भी मीठी लगती है ।

बरगद के पेड़ के नीचे जहाँ-तहाँ कुछ स्त्रियाँ बैठी हैं । हर एक के सामने एक-एक टोकरा रखा हुआ है । प्रत्येक टोकरा एक छोटी-मोटी दूकान है । भुनी हुई मूँगफली, उबले हुए शकरकन्द, भुनी हुई जौ की बालें, पान-सुपारी-तम्बाकू-बीड़ी वग़ैरह तरह-तरह की चीजें बेची जाती हैं । लेकिन दमड़ी के पीछे दमड़ी ! फिर भी कुल कमाई देखी जाय तो बिल्कुल मामूली सी होगी । चार आने की चीज़ों के बदले में आठ आने के धान मिले होंगे । बस, इससे ज़्यादा कुछ नहीं ।

इस तरह की एक फेरी वाली के साथ-साथ चलना अब हमारे लिए आवश्यक हो गया है । अपने पास बैठी एक और टोकरे वाली के साथ उसका झगड़ा हो गया । "छिः छिः ! तेरा क्या दोष ! वह करतार अन्धा था जिसने तुझे पैदा किया !"— पास वाली पर इस कठोर वाक्‌बाण का प्रयोग करने के बाद उस औरत ने अपना टोकरा उठाकर सिर पर रख लिया और तेज़ी से वहाँ से चल पड़ी । खेतों की मेंड़ों पर ही चलकर वह एक नहर के किनारे पर पहुँची । नहर की दोनों तरफ़ घना जंगल था । किनारे के साथ-साथ एक पगडंडी जाती थी । टोकरे वाली उस पगडंडी पर कुछ दूर चली । इसके बाद एक स्थान पर उस नहर से एक नाला अलग निकल गया था । वहाँ पर एक पुल था । पुल पर पहुँचते ही टोकरे वाली ने बड़ी उत्सुकता के साथ देखा । पुल पर एक रुपये का सिक्का चमक रहा था । टोकरे वाली ने वह रुपया लेकर आँखों पर लगा लिया और कुछ अपने ही आप कहने लगी, "अन्नदाता ! गरीबनेवाज़ ! नहीं जानती कि तुम मानुस हो या देव ! चाहे तुम कोई भी हो ! परमात्मा तुम्हारा भला करे । उस दिन तुम आकाशवाणी की तरह बोले थे । उसी के मुताबिक मैं भी हर दूसरे दिन यहाँ आती हूँ और तुम भी मेरे लिए एक-एक रुपया रख जाया करते हो । हे परमात्मा ! अगर मेरा सारा जीवन इसी तरह चलता रहे, तो मरने से पहले पूरे हज़ार रुपये जमा कर लूँगी । उसके बाद मुझे किसकी परवाह ?"

इस तरह बड़बड़ाती हुई, बुढ़िया ने टोकरे से मूँगफली, शकरकन्द वग़ैरह चीजें निकालकर पुल पर रखीं और अन्त में चावल की एक पोटली भी निकालकर रक्खी । फिर "कृपा करो परमात्मा !" कहती हुई खाली टोकरा लेकर लौट चली ।

उसके चले जाने के थोड़ी ही देर बाद झाड़ियों के अन्दर से मुत्तय्यन निकल आया। पुल पर बैठकर पैर लटका लिए और आराम से मूँगफली खाने लगा।

अचानक आहट सुनकर वह उछल पड़ा और कमर से छुरा निकालकर चौकन्ना हो गया। इतने में 'बाबू जी, बाबू जी ! मैं हूँ शोकन !" कहता हुआ कुरवन शोकन उसके सामने आ खड़ा हो गया।

"अरे बेवकूफ़ ! मैंने तुझे साफ़ हिदायत दी है कि हर जगह मेरे सामने न आया कर ! तो फिर यहाँ क्यों आया ?" मुत्तय्यन ने पूछा।

"यों ही नहीं आया बाबू जी ! काम से आया हूँ। एक आदमी फँसा था न ? वह आया है—रुपये के साथ।"

"अच्छा, ठीक है। शाम को सूरज डूबने के बाद उसे बोझ रखने वाले पुल के पास ले आना। अब यहाँ न खड़ा रहना !" मुत्तय्यन बोला।

"जी बाबूजी !" कहकर शोकन वहाँ से चला गया।

*** *** ***

उस दिन शाम को, कोल्लिडम नदी-तट के साथ वाली सड़क पर, बोझा उतारकर आराम करने के लिए बनाये हुए एक पत्थर के चबूतरे पर एक आदमी बैठा, सहमी आँखों से इधर-उधर देख रहा था। यह वही चबूतरा था जिस पर मुत्तय्यन हवालात से बचने के बाद सोया था। ज्यों-ज्यों प्रकाश धीमा होता गया, त्यों-त्यों उस आदमी की घबराहट भी बढ़ती गई। आख़िर चबूतरे के पीछे आहट सुनकर वह चौंक पड़ा और मुड़कर देखा।

वहाँ पर एक नक़ाबपोश व्यक्ति छुरा हाथ में लिये खड़ा था। देखकर पहला आदमी तिलमिला गया और हड़बड़ाता हुआ उठा। पर नक़ाबपोश के पीछे कुरवन शोकन को भी खड़ा देखकर उसकी जान में जान आई !

"क्यों जी ? बात क्या है ? जल्दी बताओ," मुत्तय्यन ने कड़ककर पूछा।

"कुछ नहीं," वह आदमी बोला।

"तो फिर भाड़ में जाओ तुम !"

"तुम्हें देखने आया मैं........."

"अच्छा, देख लिया न ? अब जा सकते हो।"

"ज़रा सब्र कीजिए। मुझे ज़रा सँभलने दीजिए !"

"क्या ? यही कहना चाहते हो न, कि पुलिपट्टी के ज़मींदार साहब ने तुम्हें मेरे पास भेजा है ? वह तो मैं जानता हूँ। उन्होंने रुपया भी भेजा होगा, वह मुझे दे दो !"

अजनबी ने कपड़े की गाँठ खोलकर उसमें से दस-दस रुपये के नोटों का एक

बंडल निकाल मुत्तय्यन को दिया।

"अच्छा, अब तु . जाओ !" मुत्तय्यन ने घृणा के साथ कहा।

उस आदमी ने कुछ बोलना चाहा, पर कुरघन शोकन ने उसे रोक दिया और बोला, "देखिए मुनीम जी ! मुझे तो आप सारी बात समझा चुके हैं। अगर यहाँ उसे दुहराते रहें तो सुबह हो जायगी। मैं सब-कुछ समझा दूँगा। हाँ, हाँ। उस औरत का काम तमाम ही कर देंगे। फ़िक्र न कीजिए।"

२२

उजाला और अन्धेरा

मुत्तय्यन ने नोटों को एक हाथ में दबा लिया और कोल्लिडम के ऊँचे तट से घाटी में उतरकर प्रवाह की ओर चला। प्रवाह के पास पहुँचने पर वह किनारे के साथ-साथ पूर्व की ओर चलने लगा।

पूर्णिमा की रात थी। अभी थोड़ी ही देर हुए चाँद का उदय हुआ था। पश्चिम में ज्यों-ज्यों अंधेरा बढ़ता गया, चांद का उजाला त्यों-त्यों अधिक निखरता गया। कुछ देर में वह सारा नदी-प्रदेश एक अद्भुत मायालोक में परिणत हो गया। शुभ्र ज्योत्स्ना, श्वेत बालुका, और सफेद काँस! नदी की धारा भी दूर तक पिघली हुई चाँदी की तरह जगमगा रही थी।

उस सुषमासम्पन्न वेला में नदी-तट के साथ शुभ्र बालुका पर चलते-चलते मुत्तय्यन को हठात् कल्याणी की याद हो आई।

"कल्याणी, कल्याणी! मेरी निर्धनता ही के कारण तुमने मुझे ठुकराया था न? बूढ़ा धनी था, इसीलिए उससे ब्याह कर लिया न? देखो, अब मेरे पास धन है। अपार धन की राशि है। ठहरो! एक-न-एक दिन तुमसे मिलूँगा ही। तब यह सारा धन तुम्हारे सिर पर डालूँगा। देखूँ, तब तुम क्या कहोगी?" मुत्तय्यन मन-ही-मन कहता जा रहा था।

"जानता हूँ तुम क्या कहोगी। कहोगी, 'तुम तो चोर हो, डाकू!' मुझसे आँख मिलाते हुए भी डरोगी। घबराओगी। शायद पुलिस का नाम लेकर पुकारोगी! ह, ह, हा!"

मुत्तय्यन ज़ोर से हँस पड़ा। उस निस्तब्ध नदी-प्रदेश में उसकी हँसी भयानक रूप से गूँज उठी।

"लेकिन मुझे चोर बनाया किसने? तुमने। हाँ। तुमने, तुम्हारे मां-बाप ने, तुम्हारे रिश्तेदारों ने, तुम्हारे गाँव वालों ने! हा हा हा! मेरा कैसा अनादर किया था तुम सबने? मगर अब।"

मुत्तय्यन की भयानक हँसी फिर नदी-प्रदेश में गूँज उठी। अभी शाम को जो सौदा तय हुआ था, उसको याद करते ही वह हँस-हँसकर लोट-पोट होने लगा—कोई औरत—बड़ी अक्खड़ औरत। और एक बड़ा आदमी जो उस औरत से

आमने-सामने लड़ नहीं सकता। वह चाहता है कि उस औरत के घर डाका डाला जाय। इसके लिए उसने मुत्तय्यन को दो हज़ार रुपया दिया है। "बड़ा आदमी—मेरा सर! कमीना कहींका! उसे सबक सिखाना होगा। लेकिन अब नहीं, फिर कभी!"

पर वह औरत भी बड़ी मुँहफट मालूम पड़ती है। कहते हैं उसने कोल्लिडम वाले डाकू को पकड़कर पुलिस के हवाले करने की शपथ खाई है। सचमुच सरफिरी औरत मालूम पड़ती है। उसका भी घमंड चूर करना ही होगा।

इस तरह विचार-तरंगों में गोते खाता हुआ मुत्तय्यन जा रहा था। एक स्थान पर पहुँचकर उसने नदीतट से ज़रा हटकर काँस के घने झुरमुट में प्रवेश किया। झाड़ी के अन्दर कुछ दूर चलने पर एक भारी पेड़ का ठूँठ पड़ा मिला। किसी ज़माने में नदी की बाढ़ इस पेड़ को जड़ से उखाड़कर वहां लायी होगी। यहाँ पर वह रेत में फंसकर पड़ा रह गया होगा।

मुत्तय्यन इस पेड़ के पास गया। उस ठूंठ में एक भाग खोखला था। मुत्तय्यन उसके पास बैठ गया और उस छेद के अन्दर हाथ डाला। बहुमूल्य हीरे जवाहिरात, सोने-चाँदी के गहने और सिक्के नोटों के पुलिन्दे वगैरह उसके अन्दर से निकले। मुत्तय्यन ने सब निकाल निकालकर गोद पर डाल लिये। फिर दोनों हाथों से उनके साथ खिलवाड़ करता हुआ बोला, "कल्याणी! एक दिन यह सारी संपत्ति तुम्हारे चरण तले डालने ही वाला हूं! देखती रहना।"

*** *** ***

कृष्णपक्ष आरंभ हुआ। चाँद का आकार दिन पर दिन घटने लगा। चन्द्रोदय का भी समय रोज़ पीछे पड़ता जा रहा था। आखिर अमावस का पिछला दिन आया।

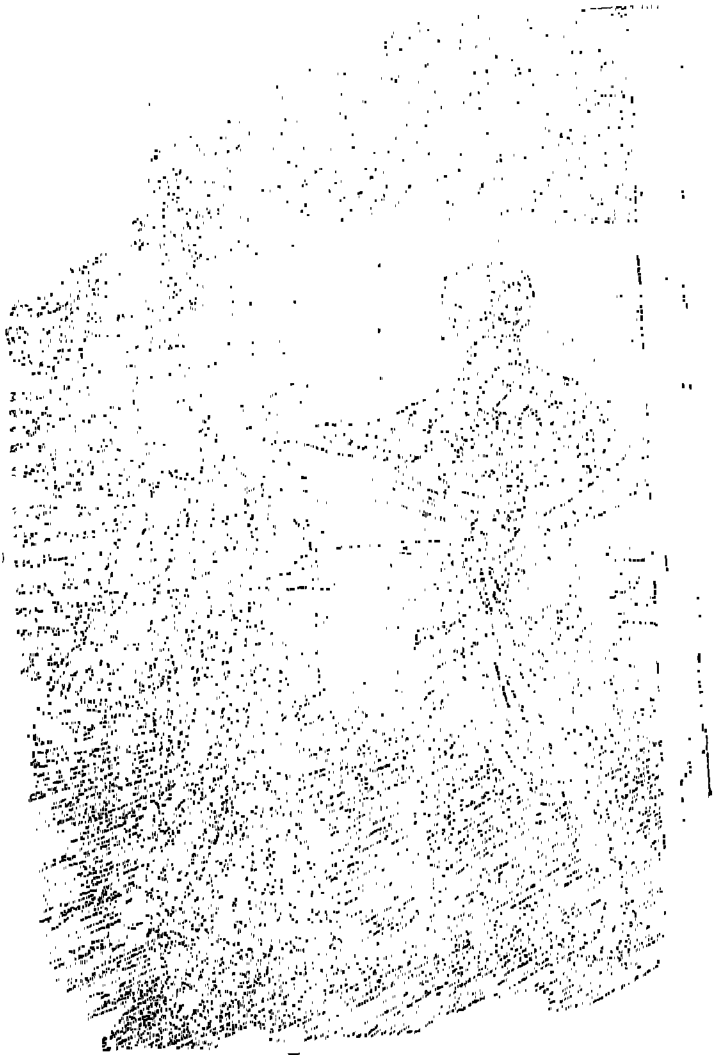
आधी रात का समय था। घनान्धकार काली स्याही की तरह छाया हुआ था। मुत्तय्यन और शोक्कन एक घर के पिछवाड़े में खड़े थे। शोक्कन ने मुत्तय्यन को घर का सारा हाल समझाने के बाद पूछा, "मैं भी साथ चलूं, बाबू जी?"

"नहीं। मैं एक बार बिगुल बजाऊँ तो घर के अन्दर आना! दो बार बजाऊं तो भाग जाना। समझे?' मुत्तय्यन ने कहा।

इसके बाद उसने जेब से एक छोटी सी टार्च निकाली और स्विच दबाकर यह देख लिया कि दीवार कहां से फाँदनी है। पल ही भर में फिर बत्ती बुझा दी और दीवार पर चढ़ने लगा।

आंगन में जब वह कूद पड़ा, तो ज्यादा आवाज़ नहीं हुई। फिर भी तुरन्त एक स्त्री ने घबराहट के साथ पूछा, "कौन है?"। मुत्तय्यने दबे पांव उसकी तरफ

गया और अचानक टार्च का स्विच दबाया। वह स्त्री अधेड़ उमर की थी। एक नकाबपोश व्यक्ति को छुरा लिये सामने खड़ा देखकर वह चौंक पड़ी और "चोर!



चोर" चिल्ला उठी। सुत्तरयन ने छुरा दिखाकर धमकाया, "अगर शोर मचाया, तो जान ले लूँगा!" और बत्ती फौरन बुझा दी।

इतने में कमरे के अन्दर से एक और स्त्री आँगन की तरफ़ दौड़ी आयी। तारों का झिलमिल प्रकाश आँगन में पड़ रहा था। उसके सहारे मुत्तय्यन ने उसे देख लिया और झपट कर उसका कंधा पकड़ लिया। वह तुरन्त खड़ी हो गयी।

"शोर न मचाओ। सभी गहने उतार कर दे दो। वरना......" मुत्तय्यन कुछ और कहना ही चाहता था, पर उसका कंठ काँप गया। बातें निकल नहीं रही थीं। वह अवाक् हो गया।

क्योंकि उस स्त्री के कंधे पर हाथ रखते ही उसके सारे शरीर में बिजली सी दौड़ गयी। वह खुद समझ नहीं सका कि उसे हो क्या गया।

अचानक वह स्त्री मुड़ी। तारों के धीमे प्रकाश में उसने मुत्तय्यन के चेहरे की तरफ़ घूर कर देखा। फिर पूछा, "मुत्तय्या! क्या, तुम्हें सिर्फ़ मेरे गहने ही चाहिये?"

मुत्तय्यन के पाँव तले से धर्ती खिसक सी गई। वह आवाज ? "कौन है यह!"

उसने टार्च का 'स्विच' दबाकर उस स्त्री के चेहरे की तरफ देखा।

हाँ! वह कल्याणी ही थी।

२३

ज़मींदार की भूल

विवाह के दिन माँगल्य-सूत्र-धारण के समय कल्याणी को मूर्छित होते देखने के बाद हमने उसकी सुधि नहीं ली। उसके बाद से लेकर अबतक की उसके जीवन की घटनाओं को जान लेना अब आवश्यक हो जाता है।

नामरे ओडे के ज़मींदार पंचनदम पिल्लै उन सत्पुरुषों में से थे, जो इस संसार में विरले ही देखे जाते हैं। अपने जीवन में उन्होंने केवल एक ही बार भारी भूल की थी। वह यह थी कि उन्होंने बुढ़ापे में एक नवयुवती से ब्याह कर लिया। पर यदि हम उनके प्रारम्भिक जीवन पर ज़रा दृष्टि डालें तो उनपर क्रोध करने के बजाय सहानुभूति ही प्रकट करेंगे।

पंचनदम पिल्लै शिक्षित थे। उनका हृदय विशाल था और आदर्श उच्च थे। कुछ दिन तक वह ब्रह्मज्ञान सभा (थियोसाफ़िकल सोसाइटी) के सदस्य रहे, परन्तु उस सभा के कुछ सिद्धान्त पसन्द न आने के कारण उससे अलग हो गये। एक समय था जब राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति भी उनकी दिलचस्पी थी। पर जब उस आन्दोलन का रुख ज़रा तीव्र हुआ और कानून तोड़ना, जेल जाना आदि उसके अंग बन गये, तो पिल्लै ने कहा, यह सब हमसे नहीं हो सकता और ईमानदारी के साथ उससे अलग हो गये।

सिर्फ एक बार वह ज़िलाबोर्ड के चुनाव लड़े थे और जीत भी गये थे। पर एक वर्ष के अनुभव से उन्हें मालूम हो गया कि इन संस्थाओं के अन्दर कितना भ्रष्टाचार और अन्धेरगर्दी चलती है। इसलिए उन्होंने चुनावों को भी अलविदा बोल दी।

उनका निजी आचरण स्वच्छ एवं अनिन्द्य था। रामायण में कहा गया है कि लक्ष्मण ने सीतादेवी के केवल पाँव ही देखे थे। इसी तरह पंचनदम पिल्लै सचाई के साथ कह सकते थे कि मैंने पराई स्त्रियों को आँख उठाकर देखा तक नहीं है।

उनके निर्मल जीवन की शोभा को कई गुना बढ़ाने वाली एक और घटना भी थी जिसका उल्लेख आवश्यक है। जैसे प्रायः अमीर घरानों में होता है, पिल्लै का ब्याह उनके लड़कपन में ही हो गया था। वह विवाह उनके जीवन का एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य साबित हुआ।

पहली पत्नी से उनके दो तीन बच्चे हुए और मर गये। इसके बाद उनकी पत्नी को वह रोग हुआ जो मानवीय रोगों में सबसे अधिक भयानक होता है। वह पागल हो गई।

लगभग बीस वर्ष का समय पंचनदम पिल्लै ने उस पगली के साथ बिताया। उसका रोग दूर करने के लिए उन्होंने कोई डाक्टर बाकी नहीं छोड़ा। कोई ओझा या टोना-टोटका उतारने वाला ऐसा नहीं था जिसे उन्होंने अपनी पत्नी का मतिभ्रम दूर करने के लिए न बुलाया हो। भारत भर में कोई स्वास्थ्य-प्रद स्थान ऐसा नहीं था, जहाँ वह पत्नी को इलाज के लिए न ले गये हों।

कभी कभी वह जरा संभल जाती। तब वह स्वयं अपनी देखभाल कर सकती थी। पर कभी कभी उसका पागलपन असीम हो जाता। जंजीर से बाँधकर कमरे में हर वक्त बन्द रखने की नौबत आ जाती। ऐसे मौकों पर केवल पंचनदम पिल्लै उसके पास जा सकते थे. और कोई नहीं।

फिर कभी वह एकदम निश्चल, निकम्मी बैठी रहती, मानों ब्रह्महत्या का पिशाच सवार हो। तब उसकी हर तरह की सेवा-शुश्रूषा पंचनदम पिल्लै ही किया करते थे।

उन दिनों बहुत से मित्रों ने उन्हें बार-बार आग्रह किया था कि वह दूसरी शादी कर लें। मित्रों ने कहा, "इस पगली के साथ आखिर सारा जीवन तो व्यतीत नहीं किया जा सकता। इतनी विशाल सम्पत्ति पड़ी है। आपके बाद इसका उपभोग करने के लिए उत्तराधिकारी तो चाहिए न ?" इत्यादि।

पर पंचनदम पिल्लै ने उनकी बातों पर कान ही नहीं दिया था। उन्होंने सोचा, जो विवाह के पवित्र बन्धन में हमारे साथ जुड़कर एक हो गई है, उसके प्रति अपना कर्त्तव्य हमें निभाना ही होगा।

कभी-कभी भविष्य की चिन्ता उन्हें सताती। यह सोचकर परेशान हो जाते कि अगर पत्नी से पहले मेरा देहान्त हो जाय तो इस बेचारी की क्या गति होगी? लम्बी साँस खींचकर रह जाते।

कभी प्रार्थना करते, "हे ईश्वर! कितने दिनतक यह बेचारी इस तरह दुख झेलती रहेगी? अबतक जो कुछ इसने सहा, क्या वह पर्याप्त नहीं था? इसके कष्टों का शीघ्र अन्त कर दो न, दयामय!"

आखिर उनकी प्रार्थना पूरी हो ही गई। एक दिन जब वह बाहर गये थे, वह पगली अचानक शोर मचाती हुई दौड़ी और पिछवाड़े के कुएँ में गिरकर प्राण त्याग दिये।

एक तरह से पंचनदम पिल्लै को इससे कुछ सान्त्वना ही मिली। कुछ दिन-

तक उन्हें विश्वास ही नहीं हो सका कि उनकी उद्भ्रान्ता पत्नी सचमुच उन्हें छोड़-कर चल बसी है।—ठीक उसी तरह, जिस तरह उम्रक़ैद भुगतने वाले को अपनी रिहाई की ख़बर पर तुरन्त विश्वास नहीं हो पाता। जब उनका यह भ्रम दूर हुआ, और जब उन्होंने अनुभव किया कि सचमुच हम स्वतन्त्र हो गये हैं, तो उनके मन में भविष्य के विचार उठने लगे।

जबतक पत्नी जीवित थी, तबतक पिल्लै सोचा करते थे कि यदि वह मर जाय तो सारी सम्पत्ति धार्मिक संस्थाओं के हवाले करके ख़ुद सन्यासी हो जायँगे। अब भी उनका वह विचार ज्यों का त्यों था। परन्तु नव-प्राप्त स्वतंत्रता का उपभोग वह कुछ और दिनतक करना चाहते थे। इसी इच्छा से प्रेरित होकर संन्यास-ग्रहण का समय स्थगित करते जा रहे थे। फिर भी देश की सभी धार्मिक संस्थाओं व मठों-हवेलियों के बारे में



पूछताछ और उनके साथ लिखापढ़ी करना उन्होंने शुरू कर दिया था।

ऐसी ही परिस्थिति में एक बार पंचनदम पिल्लै को कल्याणी का अद्भुत सौन्दर्य देखने और उसकी मस्तीभरी हँसी की ध्वनि सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। बस, उसी घड़ी उनका सारा जीवन-ध्येय एकदम पलटा सा गया।

हमने पहले ही इस बात का ज़िक्र किया है कि जब कोल्लिडम नदी में प्रवाह काफ़ी होता था, तब बड़े बड़े अधिकारीगण तट के साथ-साथ नावों में सफ़र किया करते थे। एक बार एक डिप्टी कलेक्टर इस तरह नाव में जब गये तब पंचनदम

पिल्लै भी उनके साथ थे। दोनों पुराने साथी थे। काफी अर्सा बाद मिले थे। सो दोनों ने निश्चय किया कि नाव में साथ-साथ चलेंगे और खूब जी भरकर बातें करेंगे।

रास्ते में पूंकुन्नम गाँव के पनघट पर उन्होंने देखा कि दो नवयुवतियाँ एक दूसरी पर पानी छिड़कती, हँसती-खेलती हुई नदी में नहा रही हैं। उनकी गागरें किनारे पर रक्खी थीं। उधर ये दोनों खेलने में मस्त थीं कि इतने में एक गागर ज़रा खिसककर पानी में तैरने लगी और धीरे-धीरे बहती जाने लगी। संयोग-वश एक लड़की ने इसे देख लिया और चिल्लाकर कहने लगी, "अरी कल्याणी! वह



गागर! पानी में बहती चली जा रही है! जल्दी उठाओ! उठाओ न?"

कल्याणी ने नटखटपन के साथ कहा, 'तुम्हीं उठाओ न?" और पानी को

ओर ज़ोर से धक्का दिया। उससे लहरें उठकर गागर पर लगीं और गागर दूर पर चली गई जहाँ पानी और गहरा था। इतने में नाव गागर के निकट पहुँच गई, और डिप्टी कलैक्टर ने झुककर उसे उठाना चाहा। इस प्रयत्न में उनका टोप खिसककर पानी में गिर पड़ा। इस पर उन्होंने झट गागर को छोड़कर टोप की तरफ़ हाथ बढ़ाया। फलतः गागर भी डूब गई और टोप भी। गागर बाद में निकाल ली गई लेकिन टोप तो नष्ट ही हो गया।

कल्याणी पानी में खड़े-खड़े यह सब दृश्य देख रही थी। पहले उसके मधुर होंठ ज़रा खिले और उनपर मुस्कराहट की रेखा दौड़ गई। मुस्कराहट दबी हँसी में परिणत हुई। इसके बाद वह मधुर स्वर में खिलखिलाकर हँस पड़ी जिससे वह सारा नदी प्रदेश गूँज उठा। उतनी मोदमई, हार्दिक हँसी, पंचनदम पिल्लै ने अपने जीवन में कभी सुनी नहीं थी। वह सुन्दर मुख, वह मृदुल कपोल, और मधुर हँसी का वह किंकिणी-निनाद पिल्लै के हृदय में अमिट रूप से अंकित हो गया। उसी क्षण उनका जीवन-ध्येय भी बदल गया। सोचने लगे, "इतने वर्षों तक अनन्त प्रतीत होने वाला दुःख भोग चुके हैं। कम से कम अब सुखी जीवन क्यों न बितायें?"

पंचनदम पिल्लै के कोई वयस्क पुत्र होता तो शायद वह कल्याणी का विवाह उसके साथ करा देते और उन दोनों को सुखी देखकर ही स्वयं सुख उठाते। चूँकि पुत्र नहीं था, इसलिए उन्होंने कल्याणी को अपना बनाना चाहा। अब तक मित्रों ने दूसरे विवाह के पक्ष में जो जो दलीलें पेश की थीं, उन सबको याद करके न्यायान्याय-विवेचन करने लगे।

आखिर उन्होंने कल्याणी के बारे में पूछताछ की और उसे पत्नी भी बना लिया।

२४

विधवा कल्याणी

विवाह होने के एक ही सप्ताह के अन्दर पंचनदम पिल्लै जान गये कि मैंने कैसी भयानक भूल कर दी।

विवाह के दिन जब कल्याणी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी थी, तब भी पंचनदम का दिल बैठ गया था। पर ज्यों ही उसको होश आया, उनके भी हृदय में उत्साह का फिर संचार हो गया। "उपासना की अधीश्वरी सी, सुख-दीपिका सी, मुख से चाँदनी छिटकाती हुई, चंचल, मदभरी, काली चितवन से हृदय हरती हुई सामने खड़ी यह सुन्दरी पूर्णतया मेरी है!"—यह सोचते ही उनके गर्व की सीमा नहीं रही थी! जी चाहता था कि गाँव-गाँव में, शहर-शहर में डौंडी पिटवाकर इस महान तथ्य की घोषणा कराऊँ।

विवाह के उपलक्ष्य में पिल्लै ने जिले भर के सब बड़े अधिकारियों को बुला कर भारी दावत दी थी। जो लोग दावत में आये थे, उनका एक ग्रुप-फोटो खिंचवाया गया था। उस समय किसी ने यह सुझाव रक्खा था कि नव-विवाहित दंपती का एक अलग फोटो खिंचवाया जाय। पंचनदम पिल्लै को भी यह पसन्द आया। उसके अनुसार पंचनदम पिल्लै कुर्सी पर बैठ गये और कल्याणी उनके पास खड़ी हो गयी। दोनों का एक फोटो उतारा गया।

विवाह के एक सप्ताह बाद उस फोटो की प्रति पिल्लै को मिली। उन्होंने बड़ी उत्सुकता के साथ उसे उठाकर देखा। बस, देखते ही उनका चेहरा उतर गया। उन्होंने अनुभव किया कि मैंने बड़ी भारी भूल कर दी है।

इससे पहले उन्होंने अपना चेहरा आइने में देखा था और कल्याणी को सामने देखा था। पर अपने को और कल्याणी को एक साथ देखने का अवसर अब तक उनको मिला नहीं था। अब चित्र में जब उन्होंने यह देखा, तो उनका हृदय कुंठित हो गया! आयु में और रूप-रंग में कितना भारी अन्तर! हाय! एक नव-युवती के जीवन को मैंने नाहक बर्बाद तो नहीं कर दिया?

एक और बात से उनकी यह आशंका पुष्ट हो गयी। पिल्लै ने देखा कि मेरे घर आने के बाद कल्याणी ने हँसना छोड़ दिया। जिस मोहक मुस्कान और मस्ती-भरी हँसी पर मुग्ध होकर वह अपना हृदय दे बैठे थे, वह सब अब कहाँ गयीं?

कौन छीन ले गया उन्हें ? उन कदनीय कोमल कपोलों पर अब भंवर ही नहीं पड़ते, सो क्यों ?

अगर हसती नहीं, तो रोये भी तो ? यह तो रोती भी नहीं ! पंचनदम पिल्लै ने चाहा कि कल्याणी भले ही न हंसे, पर रोये जरूर। अगर रोती, तो वह नजदीक जाकर सांत्वना तो देते। आँसू बहाती तो उन्हें पोंछते। सिसकती-बिलखती, तो उठा कर गोद में लिटा लेते और धीरज बंधाते। इस तरह अपनी असीम चाह और प्रेम को प्रकट करने का कोई न कोई मौका तो उन्हें मिलता।

परन्तु कल्याणी न तो हंसती थी, न रोती ही थी। पंचनदम पिल्लै का वह खूब आदर-सत्कार करती थी। अपने आचरण में किसी तरह की शिकायत के लिए उसने गुंजाइश ही नहीं रक्खी थी। उसके व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता था कि उस घर की स्वामिनी, उस परिवार की प्रधान नारी और उस वृद्ध की पत्नी बन कर जीवन बिताना वह अपना कर्त्तव्य समझती है। फिर भी पंचनदम पिल्लै को ऐसा मालूम हो रहा था मानों वह अपनी हंसी-खुशी, हृदय और प्राणों तक को पूंकुलम में ही छोड़ आयी है और निर्जीव शरीर को ही लेकर यहाँ चल-फिर रही है।

कल्याणी के मुख पर हंसी की वह रेखा फिर से लाने के लिए पंचनदम पिल्लै ने कोई प्रयत्न उठा नहीं रक्खा था, पर सब बेकार। अन्त में वह समझ गये कि कल्याणी के और मेरे बीच में एक ऐसी गहरी और विशाल खाई है जिसे कभी पाटा नहीं जा सकता। यह अनुभव होते ही उनकी अन्तरात्मा से यह हाहाकार उठा कि "हे ईश्वर ! मैंने यह कैसा महा पाप कर दिया !" पश्चात्ताप की अग्नि में वह जलकर राख हो रहे थे।

ऐसी परिस्थिति में, मानों उन्हें इस यातना से मुक्ति दिलाने के लिए उनको टाइफ़ाइड का रोग हुआ। संसार में कितने ही लोगों को टाइफ़ाइड होता है। उनमें से कितने ही लोग स्वस्थ भी हो उठते हैं। पर जब पंचनदम पिल्लै को टाइफ़ाइड हुआ, तो उन्हें यह निश्चय हो गया कि अब मैं स्वस्थ नहीं होने का। सोचा, जीवन में मैंने जान-बूझ कर जो एक महापाप किया, उससे निवृत्त होने का मार्ग परमात्मा ही मुझे दिखला रहा है।

बुखार होते ही पिल्लै ने अपने वकीलों को बुला कर वसीयतनामा लिखवाया और अपनी सारी सम्पत्ति के स्वामित्व, उपभोग एवं वितरण का सर्वतंत्र स्वतंत्र अधिकार कल्याणी को प्रदान किया। वकीलों और रजिस्ट्रार के चले जाने के बाद एक दिन उन्होंने कल्याणी को एकान्त में अपने पास बुलाया।

कल्याणी नम्रतापूर्वक आकर उनकी शय्या के पास खड़ी हो गई। पिल्लै ने उसे शय्या पर अपने पास बिठाया और बड़े प्रेम के साथ उसके माथे पर हाथ रख कर बोले, "कल्याणी ! मैंने तुम्हारे प्रति भारी अन्याय कर दिया है। तुम्हारा जीवन ही मेरे कारण बर्बाद हो गया—उजड़ गया। क्या, तुम मुझे क्षमा करोगी ?"

सुनकर कल्याणी आश्चर्यचकित रह गई। उसे ऐसी बातों की आशा ही नहीं थी। उसने विस्फारित नेत्रों से उनको देखा।

पिल्लै बोले, "हाँ, कल्याणी ! मैंने भारी अपराध कर दिया। मैं तुम्हारे योग्य पति नहीं हूं, न तुम मेरे योग्य पत्नी हो। न जाने मुझसे कैसे यह महान भूल हो गई। कल्याणी ! मैं जानता हूं कि इस पाप का कोई प्रायश्चित नहीं। तुम्हारे साथ मैंने जो अन्याय कर डाला उसे अब किसी तरह दूर नहीं किया जा सकता। तुम्हारा जीवन उजाड़ हो गया है। उसका बदला कैसे और किस रूप में चुकाया जा सकता है ? मेरे पास जो कुछ था, वह यही सम्पत्ति थी। वह मैंने तुम्हें दे दी है। समस्त सम्पत्ति की सर्वतंत्र अधीश्वरी मैंने तुम्हीं को बनाया है। मैं जानता हूं कि तुम समझदार हो, इस सम्पत्ति की ठीक ठीक देखभाल करोगी।"

कल्याणी का आश्चर्य और विस्मय हजार गुना बढ़ गया। पर वह कुछ बोल नहीं सकी। समझ नहीं सकी कि क्या बोलूं। उस मौके पर वह बोल भी क्या सकती थी ?

पंचनदम पिल्लै शय्या पर उठ बैठे और कल्याणी का हाथ अपने हाथ में ले लिया। बोले, "कल्याणी ! ये सब गौण बातें हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो मैं अभी बताने जा रहा हूं। मैं तुम्हें मुक्ति दिलाता हूं। इस वैवाहिक बंधन से तुम्हें छुड़ाता हूं। भविष्य में अगर तुम अपनी पसंद के किसी युवक से विवाह करोगी तो उससे मेरी आत्मा को असन्तोष नहीं, बल्कि पूर्ण सन्तोष प्राप्त होगा।"

इतने दिन बाद, अभी पहली बार कल्याणी की आँखों में आंसू आये। उसके हृदय में एक उत्कट इच्छा, बलवती अभिलाषा उठी। उसने उठकर पंचनदम-पिल्लै को हृदय से लगाना चाहा। उन्हें "चाचा !" कहकर पुकारने और अपने हृदय का किवाड़ खोलकर उसमें दबे हुए रहस्य को उन्हें बतलाने की उसे तीव्र इच्छा हुई। पर जब वह इस चाह को लेकर उठ खड़ी हुई, तबतक उसका हृदय फिर "वज्रादपि कठोर" बन गया। उसने सोचा कि वह रहस्य केवल उसका ही नहीं है बल्कि सुन्दरम् भी उसका साझेदार है। अतः उन दोनों को और परमात्मा को छोड़कर और किसी पर उसे प्रकट नहीं किया जा सकता।

इस कारण कल्याणी कुछ नहीं बोली। उसने अंजलिबद्ध होकर पंचनदम-पिल्लै की शय्या की परिक्रमा की और अपना सिर उनके चरणों पर रखकर नमस्कार

किया। तब उसकी अश्रुधारा से उनके पाँव भीग गये।

इस घटना के पाँच ही छः दिन बाद पंचनदम पिल्लै इस संसार से चल बसे। कल्याणी, दुनियावालों की आँखों में विधवा बन गई।

२५

पुलिपट्टी का लाल

किस्से-कहानियों और पुराण-इतिहासों में कथानायक या नायिका के कुछ शत्रु कहानी के आरंभ में ही उठ खड़े होते हैं और अन्ततक कथानायक या नायिका को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं। कहानी समाप्त होते समय उन्हें उनकी बुराइयों का उचित दण्ड मिल जाता है।

परन्तु साधारण जीवन में अक्सर ऐसा नहीं हुआ करता। जीवन में समय समय पर हमारे कुछ मित्र या शत्रु हुआ करते हैं जिनसे हमें लाभ या हानि होती है। बस, वहीं उनका काम समाप्त हो जाता है। हमारी भी उनके साथ मैत्री या विरोध वहीं मिट जाता है।

हमारे जीवन में हमें हानि पहुँचानेवाला एक ही व्यक्ति नहीं होता, न हमारा शुभचिन्तक ही एक व्यक्ति होता है।

मुत्तय्यन और कल्याणी के भी जीवन में ऐसा ही हुआ। हमने देखा कि मुत्तय्यन के जीवन में मुख़्तार पिल्लै ने कैसे प्रवेश किया था और उसका क्या परिणाम हुआ। जहाँतक मुत्तय्यन के जीवन से सम्बन्ध था, अभिरामी के मद्रास चले जाने की उसे सूचना देने के साथ उस महानुभाव की लीला समाप्त हो गई। इसके बाद वह महापुरुष इस खोज में संलग्न हो गये कि कौन युवती अनाथ या निःसहाय है, किस ग़रीब की लुटिया डुबोई जाय, और किसकी झोंपड़ी में आग लगाई जाय। उनके पापों का दंड देने का भी भार हम ईश्वर पर ही छोड़ दें।

जैसे मुत्तय्यन के जीवन में बकरी की ख़ाल ओढ़े हुए उस जंगली बिलाव ने प्रवेश किया था, ठीक उसी तरह कल्याणी के भी जीवन में एक दुरात्मा ने प्रवेश किया। पुलिपट्टी रत्नम पिल्लै उसका नाम था। तामरैओडै के ज़मींदार का वह निकट का रिश्तेदार था। उसके पिता के समय में उसके भी घर में उतनी ही सम्पत्ति थी जितनी तामरैओडै के ज़मींदार की। पर जब से छोटे साहब के पर उगे, तब से हालत ने एकदम पलटा खाया। जब वह मद्रास में कालिज में पढ़ रहा था, तभी उसने ऐयाशी और नवाबी ठाट का सारा हुनर सीख लिया था। बाद में एक बार विलायत भी हो आया था। मद्रास और विलायत में ऐशपरस्ती की जो शिक्षा

उसने पाई थी, पुलिपट्टी के गांव में भी वैसा ही जीवन-क्रम उसने अपना रक्खा था।

बड़े आदमियों की दोस्ती बढ़ी। अक्सर उनको पार्टियाँ देनी पड़ती थीं। थोड़े ही दिनों में यह मशहूर हो गया कि अप-टू-डेट ड्रेस पहनने में, अव्वल दर्जे की पार्टियाँ देने में और दूसरों के चुनावों में सबसे आगे रहकर काम करने में पुलिपट्टी के पिल्लै साहब का सानी रखनेवाला उस ज़िले भर में कोई नहीं।

जब यह शोहरत मिल गई, तो फिर क्या पूछना था ? एक तरफ़ पुश्तैनी जायदाद धीरे-धीरे हवा में उड़ती जा रही थी और दूसरी तरफ़ क़र्ज़ का बोझ दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था।

पर क्या मजाल, कि पुलिपट्टी के लाल उससे ज़रा भी विचलित हुए हों ? वह तो गुलछर्रे उड़ाते गये, रुपया पानी की तरह बहाते गये।

उसकी इस लापरवाही का एक विशेष कारण भी था। उसे यह आशा थी कि तामरैओडै के ज़मींदार के चूंकि कोई सन्तान नहीं है, इसलिए उनकी अपार सम्पत्ति आख़िर मुझीको मिलेगी।

रत्नम जब मद्रास में शिक्षा पा रहा था, तब तो पंचनदम पिल्लै का भी वही विचार था। पर उसके पुलिपट्टी लौटने पर जब पंचनदम पिल्लै ने उसकी चाल ढाल और रंग-ढंग देखा, तो उन्हें उससे हार्दिक घृणा हो गई। उन्होंने उसी क्षण यह ठान ली कि मेरी सम्पत्ति की एक कौड़ी भी इस धूर्त के पल्ले न पड़ने पावे। पर उस बेचारे को इसकी खबर ही नहीं थी। वह इस ख्याल में भूला रहा कि आखिर सम्पत्ति कहाँ भागी जाती है ? बूढ़े का अन्तिम संस्कार तो आखिर मुझी को करना है न ?

जब सुना कि पंचनदम पिल्लै दूसरा विवाह करनेवाले हैं, तो रत्नम-पिल्लै पर मानों पहाड़ गिरा। वह गुस्से से भर गया और शादी में भी नहीं गया। जिस किसी से मिलता, पंचनदम पिल्लै की बुराई करता। कहता, "उधर मरघट बुला रहा है, इधर ये शादी कर रहे हैं ! ढलती उमर में बुड्ढे का भी दिमाग़ फिर गया मालूम होता है !"

उसे इतना गुस्सा चढ़ा कि उसने उपनाम से एक पत्र भी अखबारों में छपवा दिया, जिसमें बूढ़ों द्वारा बालिकाओं से विवाह करने की प्रथा की तीव्र निन्दा की गई थी। जब वह पत्र अखबारों में छप गया, तो रत्नम ने हर किसी दोस्त और परिचित को घर पर बुला कर अखबार दिखलाया और अपना पत्र पढ़ाया।

कुछ महीनों तक रत्नम का यह क्रोध जारी रहा। बाद में एक दिन तामरै ओडै की गली से जाते जाते संयोगवश उसकी नजर कल्याणी पर पड़ गई।

उसका अलौकिक रूप देखकर रत्नम विस्मित रह गया। सोचा, ऐसा अनुपम सौन्दर्य और इस बुड्ढे के भाग्य में ? स्वभाव से रसीला था ही। बदचलनी की तो उसने हद ही कर रक्खी थी। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि उसी क्षण उस धूर्त के मन में दुर्वासना ने घर कर लिया।

२६

पहला सबक

इसके कुछ दिन बाद रत्नम, पंचनदम पिल्लै के पास गया और उनसे गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की कि जान-अनजान में मुझसे जो भी भूल-चूक हुई हो, उसके लिए आप मुझे क्षमा कर दें। पंचनदम पिल्लै ने न तो उसके पिछले व्यवहार की ही परवाह की थी, न उसकी क्षमायाचना को ही अब उन्होंने कुछ महत्त्व दिया। हाँ, उन्हें उसकी नम्रता पर आश्चर्य अवश्य हुआ। परन्तु उस पर भी उन्होंने ज्यादा सोच-विचार नहीं किया। बोले, "भैया, यह कैसी बातें हैं! तुम मुझ से क्षमा क्यों माँगो और मैं तुम्हें क्षमा किस बात के लिए करूँ? मुझे तुम से जरा भी नाराजी नहीं। चिन्ता न करो। जाओ।"

रत्नम का उद्देश्य पंचनदम पिल्लै से सम्बन्ध गांठ कर उनसे मिलने के बहाने बार-बार उनके घर आने-जाने का था। पर पिल्लै के शान्त स्वभाव ने उस चाल को विफल कर दिया। अतः वह बड़ी झुंझलाहट के साथ लौट चला।

इसके बाद भी दो-तीन बार वह आत्माभिमान को मार कर बिना बुलाये पंचनदम पिल्लै के घर गया। कल्याणी को दूर पर से इधर-उधर आते-जाते देखने का अवसर भी तब उसे मिला। पर उसके नजदीक जाने और उससे बातें करने का मौका उसे नहीं मिल सका। कुवासना की जो आग उसके मन में सुलग उठी थी, वह इन कारणों से भयानक रूप से धधकने लगी।

*** *** ***

पंचनदम पिल्लै के देहावसान के समय रत्नम गाँव में नहीं था। पर ज्यों ही उसको खबर मिली, वह गांव भाग आया। अगर पंचनदम पिल्लै कोई वसीयतनामा न छोड़ जाते, तो उनके बाद उनकी सारी सम्पत्ति रत्नम को ही मिलती। इसलिए उसने सोचा कि अभी से सम्पत्ति की देखभाल अपने हाथ में ले लेनी चाहिए। इस बहाने से कल्याणी के साथ बात करने और दोस्ती गांठने का भी मौका मिल जायेगा।

यही सब सोच कर वह तामरैओडै चला आया था। पर वहाँ पहुँचने पर जब उसे वसीयत की सब बातें मालूम हुईं तो उसका दिल एकदम बैठ गया। पहले

सोचा कि वसीयत को ही जाली बता कर अदालत में मुकदमा लड़ा जाय। फिर भी इस विचार को प्रकट न करके कल्याणी के घर गया और पिल्लै के अन्तिम संस्कारों में सहयोग दिया। कल्याणी के पिता चिदम्बरम पिल्लै को उसकी पिछली कहानी मालूम नहीं थी, इस कारण पंचनदम पिल्लै के ख़ास रिश्तेदार की हैसियत से हर बात पर उससे सलाह लिया करते थे। प्रायः उसी की सलाह से सारा काम होता था।

क्रियाकर्म समाप्त हो जाने के बाद जमीन की जुताई-बंटाई के मामले तै करने की बारी आयी। रत्नम पिल्लै ने सलाह दी कि जमीन को ठेके पर चढ़ाना ही उचित होगा। मैं खुद इसकी व्यवस्था करूंगा। चिदम्बरम पिल्लै ने भी इसे मान लिया।

उस रात को भोजन के समय चिदम्बरम पिल्लै ने इसकी चर्चा छेड़ी। कल्याणी ने जब यह सुना तो वह बोल उठी, "पिता जी, जमीन की व्यवस्था अब तक जिस तरह होती आई है, उसी तरह आगे भी चलेगी। उसमें कोई अदल-बदल नहीं होना चाहिए।"

कल्याणी के स्वर में जो दृढ़ता थी, उससे उसके पिता को आश्चर्य हुआ, और जरा क्रोध भी।

"तुम क्या जानो यह सब बात, बेटा! खुदकाश्त करना बड़ी झंझट का काम है। असामियों को काबू में रखना कोई खेल नहीं। हमारे रत्नम पिल्लै की भी यही राय है," उन्होंने जरा चिढ़ कर कहा।

"वह रत्नम पिल्लै कौन हैं? हमारे घर के काम-काज में उनका क्या दखल?" कल्याणी ने व्यंग-भाव से पूछा।

सुन कर चिदम्बरम पिल्लै हकबका गये। फिर भी जरा संभल कर बोले, "यह क्या बचपन की बात करती हो बेटा? रत्नम पिल्लै और कौन हो सकते हैं? अपने पुलिपट्टी के जमींदार की ही बात मैं कर रहा था। यहाँ की ऊंच-नीच सब वही तो जानते हैं! मैं इस गाँव के लिए अजनबी जो ठहरा! और तुम तो अभी नादान बच्ची हो, दुनियादारी से बेखबर! तुम से यह सारा काम कैसे संभलेगा?"

कल्याणी उनकी बात काट कर बोली, "पिता जी। बूढ़े के साथ अपनी लड़की का ब्याह कराने से पहले आपको ये सब बातें सोच लेनी चाहिए थीं।"

चिदम्बरम पिल्लै का सिर यह सुन कर झुक गया। उनकी ज़बान बंद हो गई। उनकी समझ में नहीं आया कि कल्याणी के स्वभाव में ऐसा परिवर्तन कैसे आ गया। एक ही दो दिन के अन्दर उन्हें साफ मालूम हो गया कि कल्याणी ही

इस घर की सर्वतंत्र स्वतन्त्र अधीश्वरी है। उसी की बात यहां चल सकती है। उसमें मेरा कोई दखल नहीं हो सकता।

जब यह बात स्पष्ट हो गई, तो चिदम्बरम पिल्लै नाराज होकर अपने गाँव लौट गये।

उनके जाने के बाद, उस विशाल भवन में कल्याणी अपनी वृद्धा फूफी के साथ अकेली रहने लगी। जमीन का सब कारोबार पहले ही की तरह चलता था। कारिन्दों-आसामियों को कल्याणी अक्सर घर बुलाती और आवश्यक आदेश दिया करती। जमीदार का अचानक स्वर्गवास होने पर वे लोग घबराये हुए थे कि पता नहीं अब क्या होगा। जब उन्हें मालूम हुआ कि सारी व्यवस्था ज्यों की त्यों चलेगी, तो उनके उत्साह व खुशी का ठिकाना न रहा।



ये सब बातें रत्नम पिल्लै के मन में आग में घी का काम करती थीं। उसकी सब चालें बेकार होती गयी। फिर भी वह हताश नहीं हुआ। बार-बार वह जमीदार के घर जाता और नौकरानी से कहला भेजता कि ठकुरानी से कुछ खास बातें करनी हैं। पर नौकरानी लौटकर यह जवाब दे जाती कि ठकुरानी अस्वस्थ हैं- कोई खास बात हो तो मुनीम जी से कर लें।

बार-बार की इस निराशा के बावजूद पता नहीं रत्नम कब तक अपना यह

"आक्रमण" जारी रखता। पर एक बार एक विशेष घटना हुई, जिसने इसकी इतिश्री कर दी।

जमींदार के घर के द्वार पर हमेशा एक कुत्ता बंधा रहता था। ऊंची नसल का था। देखने में बड़ा ही भोला और प्यारा लगता था। कभी भूंकता नहीं था। न किसी को नाहक काटता-वाटता ही था। पर अगर मालिक ने किसी की तरफ इशारा करके छोड़ दिया, तो पिण्डुली का कम से कम आधा सेर माँस काट कर न खा जाय तो उसे चैन नहीं पड़ती थी।

उस दिन वह कुत्ता, बैठक की खिड़की की सीखची के साथ बंधा हुआ



था। ज्यों ही रुस्तम पिल्लै द्वार के पास पहुँचा, उस खिड़की के अन्दर एक युवती का हाथ दिखाई दिया। वह सोने की चूड़ियां पहने हुए था। सुन्दर, मृदुल, कमनीय था वह हाथ देखते ही देखते उस हाथ ने कुत्ते की चेन (जंजीर) को धीरे मे खोल दिया। साथ ही खिड़की के अन्दर से मधुर स्वर में "छू" की आवाज आई। बस, कुत्ता एक बार "वौव" करके भूंका और फिर पुलिपट्टी के पिल्लै साहब पर झपटा, मानों ज्यादा बातें करने में उसे विश्वास नहीं था। पिल्लै साहब भागने लगे। कुत्ते ने उनका पीछा किया। थोड़ी ही देर में पिल्लै साहब की पतलून कुत्ते के दांतों के बीच में फंसकर 'टर' से फट गई। अगले ही क्षण पिल्लै साहब की पिण्डुली में कुत्ते के दाँत गड़ गये। पिल्लै साहब शोर मचाते हुए दुगुने वेग से भागने लगे। कुत्ता भी उनके माँस का मजा लेता हुआ उनके पीछे-पीछे दौड़ा। गली के कोने तक उचित सत्कार के साथ उन्हें बिदा करने के बाद ही कुत्ते को घर लौटने का ख्याल आया।

डरकर भागनेवाले के साथ प्रायः किसी को भी सहानुभूति नहीं होती। इस मानवीय दुर्बलता के कारण जब पिल्लै साहब कुत्ते के डर के मारे भागे, तब गली के सब लोग—बड़े-बूढ़े तक—ठहाका मार कर हंसने लगे। कुछ शरारती लड़कों ने

कुत्ते को खूब दाद भी दी। कुत्ते के दाँतों ने पिल्लै के पैर में तथा गाँववालों की हंसी ने उसके हृदय में गहरा घाव कर दिया। कल्याणी के प्रति उसके मन में असीम द्वेष की भावना भड़क उठी। पिल्लै साहब ने ठान ली कि इस औरत से किसी तरह बदला लेकर छोड़ूँगा।

२७

पिल्ले साहब का बदला

रत्नम पिल्ले ने कल्याणी से बदला लेने की कई चालें सोचीं। आखिर उसने यह निश्चय किया कि तामरैओड़े की सारी जमीन पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया जाय ताकि कल्याणी को अदालत में मुकदमा लड़ने या उससे सन्धि वार्ता करने के लिए विवश होना पड़े।

उस साल तामरैओड़े के खेतों में बहुत अच्छी फसल हुई थी। फसल कट चुकी थी, लेकिन धान की राशें सब खलिहानों में ही पड़ी थीं। कल्याणी अभी निर्णय नहीं कर पायी थी कि खलिहानों से ही धान को व्यापारियों के हाथ उठा दिया जाय, या कोठी में लाकर कुछ दिन के लिए रक्खा जाय।

एक व्यापारी बार बार आकर मांग रहा था कि धान को तुरन्त उठा दिया जाय। लेकिन मुनीम जी को यह ठीक नहीं जंचा। "हमारे यहां धान क्वार के मास में ही उठाया जाता है!" उन्होंने कहा।

इनमें ऐसी बातें हो ही रही थीं कि इतने में एक आदमी बेतहाशा भागा आया और हांफता हुआ बोला, "ठकुरानी साहिबा! गजब हो गया! अनर्थ हो गया!"

पूछने पर उसने बताया, "पुलिपट्टी के लोग आकर खलिहान से धान उठा रहे हैं। बीस-तीस ठेले आये हुए हैं। सौ से ज्यादा लठैत आगे लाठी लेकर खड़े हैं। सब शराब के नशे में चूर मालूम होते हैं। लाठी घुमाकर हमें धमका रहे हैं। यही खबर देने के लिए मैं भागा आया और यहां आकर ही दम लिया!"

बूढ़े मुनीम जी ने यह सुना तो हताश होकर वहीं बैठ गये। बिचारे सज्जन आदमी थे। उनके जमाने में कभी ऐसा संकट सामने नहीं आया था। उन्हें कुछ सूझा ही नहीं कि विपदा का सामना कैसे किया जाय?

कुछ देर तक कल्याणी भी विचार-मग्न बैठी रही। अचानक उसकी आँखें चमक उठीं! बोली, "मुनीम जी! आइए, खलिहान चलें।"

मुनीम जी सन्न रह गये। पूछा, "क्या कहती हो बहू?"

"हां, मैं खुद खलिहान चलूंगी। आइए, चलें।" यह कह कर कल्याणी तैयार होकर चल पड़ी।

फूफी ने अन्दर से उसकी बातें सुन लीं। वह बाहर दौड़ी आई और उस का रास्ता रोकती हुई बोली, "कल्याणी, बेटा। मेरी बात मानो। वहाँ न जाना तुम!"

पर कल्याणी ने उसकी परवाह नहीं की। फूफी को प्यार से एक तरफ हटा दिया और आगे बढ़ी।



उसकी हिम्मत देखकर मुनीम जी का भी पौरुष जाग उठा। आसामी को पुकार कर कहा, "अरे, जाओ जल्दी। अपने सब आदमियों को इकट्ठा करो और लाठियों के साथ खलिहान में ले आओ।"

पर कल्याणी ने उन्हें मना कर दिया और कहा, "मुनीम जी! आदमियों-

लाठियों का कोई काम नहीं। आप अकेले मेरे साथ चलें, वही काफी है।"

दूर पर कल्याणी को देखते ही धान लूटनेवाले, लाठीवाले, ठेले सबके सब आश्चर्य चकित रह गये। उन इलाकों में जमींदारों की पत्नियां प्रायः खेतों की तरफ आती-जाती नहीं थीं। तिस पर जहां मार-पीट की आशंका थी, वहां कल्याणी को इस तरह अकेले आती देख कर सबके मन में एक अज्ञात भय छा गया। सब जहां के तहां खड़े ताकते रह गये।



कल्याणी शान से चल कर उनके बीच में खड़ी हो गई और सबकी तरफ एक बार दृष्टि दौड़ायी। फिर पूछा, "क्यों भाई! तुम सब कौन हो?"

कुछ देर तक वहां सन्नाटा छाया रहा। इसके बाद उनमें से एक आदमी, जो सबसे ज्यादा शराबी व मुंहफट था, बोल उठा, "हम सब आदमी हैं, बहूरानी!"

"तुम लोग किस जमीन के हो?" कल्याणी ने फिर पूछा।

"पुलिपट्टी की जमीन के।"

"अच्छा, तो यह खलिहान पुलिपट्टी का है, क्या?

"नहीं जी।"

"तो फिर यह किसका है?"

"तामरैओड़े की जमीन का।"

"अच्छा, अब सब लोग मेरी तरफ ध्यान से देखो। जानते हो न, मैं कौन हूं?"

शराबी ने यह प्रश्न सुना, तो चिल्ला उठा, "माता। महाकाली ! तुम तो महामारी हो ! हा हा ! मैंने कैसी भूल की कि तुम्हें पहिचान न पाया ! अरे लोगो, दण्डवत करो माता के सामने ! यह देवी हैं, देवी !" कहते कहते वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा, कल्याणी के आगे दण्डवत प्रणाम किया और बड़बड़ाने लगा, "माता, रक्षा करो। बचाओ हमें !"

बाकी लोग यह देख कर किंकर्त्तव्य-विमूढ से खड़े रहे।

कल्याणी अविचलित भाव से बोली, "अरे मूर्खो ! तुम्हारी रक्षा करने ही के लिए मैं आयी हूँ। जिस काम के लिए तुम लोग अब यहाँ आये हो, वह भारी अपराध है। दिन-दहाड़े डाका डालने के लिए आये हो तुम ! जानते हो इसकी सजा क्या होगी ? तुम्हें पकड़कर हथकड़ी-बेड़ी लगा दी जायेगी और सात साल की कड़ी कैद की सजा दी जायेगी। समझे ? जब तुम लोग जेल चले जाओगे, तब क्या, तुम्हारे ठाकुर साहब तुम्हारे बाल बच्चों की परवरिश करेंगे ?"

"राम कहो बहूरानी ! यहाँ मजूरी के ही लाले पड़े हैं। बाल-बच्चों की परवरिश तो दूर की बात है," एक किसान ने कहा।

"तो फिर उनकी बातों में आकर यहां लुटेरों का सा काम करने क्यों चले आये हो ? चलो, लौट चलो सब लोग। शाम को अपने घरवालियों को कोठी पर भेजना। दस-दस सेर अनाज हर एक को दिया जायेगा। खड़े क्यों हो ? जाओ।"

कल्याणी की यह बात आदमियों पर असर कर गई। एक आदमी अपने साथियों से बोला, "हां भई ? बहुरानी ठीक कहती हैं। हमारा क्या आता-जाता है जो नाहक बला मोल लें ?" उसकी बात मान कर पहले दस आदमी वापस जाने लगे। उनके पीछे-पीछे कुछ और लोग गये। थोड़ी देर में रहे सहे लोग भी आपस में कहने लगे, "भई, हम ही क्यों झगड़ा मोल लें ?" फलतः वे भी चले गये।

इसके बाद कल्याणी ने ठेले वालों को बुला कर उनसे बात की। परिणाम यह हुआ कि खलिहान से सारा नाज उन्हीं ठेलों में लद कर कल्याणी की कोठी में पहुंचा दिया गया। ठेले वालों को दुगुना भाड़ा मिल गया और वे खुशी-खुशी चले गये।

रत्नम पिल्लै को जब इसका सारा हाल मालूम हुआ, तो अपमान और क्षोभ के मारे वह जल-भुन कर रह गया। उसका द्वेष प्रचण्ड ज्वाला की तरह भभक उठा। इसी के परिणाम-स्वरूप उसे यह उपाय सूझा था कि कोल्लिडम-वाले डाकू को रिश्वत देकर कल्याणी के घर डाका डलवाया जाय।

२८

अपूर्व मिलन

जब तक पंचनदम पिल्लै जीवित थे, तबतक कल्याणी अपने हृदय के किले की प्रयत्न-पूर्वक रक्षा किया करती थी। उसमें वह मुत्तय्यन को प्रवेश करने ही नहीं देती थी। उसे प्रवेश करने देना उसने पाप समझा था। इस कारण जब कभी मुत्तय्यन की याद आती थी, झट वह घरेलू काम धंधों में संलग्न हो जाती और उस याद को मिटाने का प्रयत्न करती। ईश्वर से प्रार्थना करती कि "हे दयामय! पाप के विचार मेरे मन में उठने से बचाओ!" सीता, दमयन्ती, नलयिनी आदि सतियों की आख्यायिकायें याद कर लेती और मन को दृढ़ कर लेती। इस तरह सदा सजग रह कर मन को काबू में रखने की धुन में व्यस्त रहने के कारण, कोई आश्चर्य नहीं कि पंचनदम पिल्लै उसके मुख पर हंसी की रेखा तक नहीं देख पाते थे।

पति के जीवनकाल में उसने मन पर जितना ही कठोर नियंत्रण कर रक्खा था, उनके देहान्त के बाद उसे उतनी ही खुली छूट दे डाली थी। खासकर चूंकि पंचनदम पिल्लै ने उसे वैवाहिक बन्धन से मुक्त कर दिया था, इसलिए उसने सोचा कि अब मुत्तय्यन की याद करने में कोई पाप नहीं। इस तरह बंधनमुक्त होते ही उसका मन मुत्तय्यन की ओर दौड़ा गया और फिर वहाँ से हटा ही नहीं। उठते-बैठते, सोते-जागते, सदा मुत्तय्यन की ही याद उसके मन में समाई हुई थी।

उसे यह जानने की बड़ी उत्सुकता हुई कि मुत्तय्यन अब कहाँ है, और क्या कर रहा है। जब यह सन्देह उठता था कि शायद मुत्तय्यन ने विवाह कर लिया होगा तो उसके हृदय पर बरछियाँ चलने लग जातीं।

सोचती, "नहीं, नहीं। ऐसा कभी नहीं हो सकता।" इस विचार से जरा ढाढ़स बंध जाता। परन्तु अगले ही क्षण यह सोच कर खिन्न हो उठती कि न जाने वह कहाँ और मैं कहाँ? अब उससे मिलन कैसे हो सकेगा? तुरन्त यह सोचकर मनको सान्त्वना दे लेती कि नहीं नहीं, इस जीवन में निश्चय ही मैं उसे देखूंगी। उसके प्रति मेरा प्रेम सच्चा है, इसलिए यह कैसे हो सकता है कि हमारा पुनर्मिलन न हो?

कभी यह सन्देह उसे सताता कि "उन दिनों ही वह कहा करता था कि

तुम अमीर हो और मैं गरीब। अब तो मैं सचमुच ही अमीर हो गई हूँ। तो इससे कहीं उसकी घृणा और बढ़ेगी तो नहीं?" परन्तु साथ ही इस शंका का समाधान भी उसे सूझ जाता। सोचती, "ऐसा कुछ नहीं होगा। अबतक तो वह खुद समझ गया होगा कि सारा कसूर उसी का था। मैं कहूंगी, देखो, यह सारी सम्पत्ति तुम्हारी है। इसके साथ तुम जो चाहो करो। तब उसका मन पसीज जायेगा।" इस विचार से उसका मन नये ही उत्साह से भर जाता।

कल्याणी को इतनी बात उसके पिता से मालूम हो गई थी कि मुत्तय्यन पूंकुलम छोड़कर चला गया है और किसी मठ में गुमास्तागिरी करता है। उसका ठौर-ठिकाना जानने और उससे मिलने के लाख उपाय उसे सूझते थे। पर हर एक में कोई न कोई कमी नजर आती थी और वह उसे छोड़ देती थी।

ऐसी ही परिस्थिति में कल्याणी ने कोल्लिडम वाले चोर की चर्चा सुनी थी। जब सुना कि उसका नाम मुत्तय्यन है, तो उसे रोमांच हो आया। चोर के पिछले वृत्तान्त के बारे में पूछताछ करके उसने जान लिया कि वह किसी मठ में गुमास्ता था। इसमें उसका सारा सन्देह दूर हो गया। यह भी शंका उसी क्षण मिट गई कि अब मुत्तय्यन से कभी मुलाकात होगी भी या नहीं। उसने निश्चित समझ लिया कि किसी न किसी दिन वह मेरे घर डाका डालने आयेगा ही। इस निश्चय के साथ वह सोचने लगी कि जब मुत्तय्यन से मुलाकात हो, तो उसका कैसे स्वागत किया जाय!

कल्याणी चाहती थी कि मुत्तय्यन जब भी उसके घर आये, तब घर में भीड़ भाड़ न हो। इसी कारण पिता जी के नाराज होकर गांव चले जाने के बाद उसने उन्हें वापस बुलाने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया था। उसे मालूम तो जरूर था कि चिदम्बरम पिल्लै अपनी दूसरी पत्नी और बच्चों समेत तामरैप्पाडि चले आने के लिए तैयार थे। फिर भी उसने उसकी चर्चा ही नहीं छेड़ी थी।

अक्सर मुत्तय्यन के आने की आशा से वह रतजगे किया करती थी। कभी झपकियाँ ले लेती थी, तो इतनी हलकी कि जरासी आवाज होने पर जाग पड़ती थी। सोचती कि वह किस रास्ते, किस ढंग से आयेगा?—छप्पर फाँद कर आँगन में कूद पड़ेगा या सेंध लगा कर अन्दर घुसेगा, या डाकूदल के साथ, मशालें लिये, खुल्लम-खुल्ला आकर दरवाजा खटखटायेगा? अगर इस तरह आकर मुत्तय्यन ने दरवाजा खटखटाया और कल्याणी ने आकर दरवाजा खोला तो वह एकदम भौंचक्का न रह जायेगा? बार-बार मन ही मन उसकी कल्पना करके वह हंस पड़ती।

चाँदनी रातों में वह घर के आँगन में बैठे रात भर आकाश की तरफ़ ताकती रहती। सोचती, "यही चाँदनी वहाँ भी छिटक रही होगी, जहाँ मुत्तय्यन होगा।

हो सकता है, वह भी अब इसी तरह बैठे-बैठे इस चाँदनी का आनन्द लूट रहा हो।" जब उसे यह ख्याल आता कि शायद मुत्तय्यन भी मेरी याद कर रहा होगा, तो उसके सारे शरीर में गुदगुदी होती।

अँधेरी रातों में भी वह आँगन में बैठी तारों को निहारती रहती। मन ही मन कहती, "इस समय वह कोल्लिडम के तट पर कहीं अकेले पड़ा होगा। शायद इन तारों के साथ बातें कर रहा होगा।" झट उसे याद आता कि कोल्लिडम के तट पर रात के वक्त गीदड़ बोलते हैं। "कहीं बीस-पचीस गीदड़ मुत्तय्यन को घेर लें, तो?........" यह कल्पना करते ही उसका सारा शरीर सिहर उठता। कभी-कभी उसकी कल्पना में गीदड़ों का स्थान पुलिस वाले ले लेते। तब उसका दिल दहल उठता। उसके हृदय की तह से यह अश्रुमय प्रार्थना निकलती कि हे ईश्वर! ऐसी कोई बात न होने पावे।

मुत्तय्यन के डाकू बन जाने के कारण उसके प्रति कल्याणी का प्रेम या सम्मान जरा भी कम नहीं हुआ। वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि मुत्तय्यन कोई अनुचित कार्य कर सकता है। वह तो यहाँ तक सोचने लग जाती कि पुलिपट्टी के रत्नम जैसे आततायियों के घर डाका डालने में बुरा क्या हो सकता है?

मुत्तय्यन के बारे में दूसरों से बातें करने का भी अब उसे बड़ा चाव हो गया था। मुनीम जी तथा पड़ोस के लोगों से बार बार उसकी चर्चा छेड़ती। मुत्तय्यन मशहूर डाकू हो चुका था। उसका नाम बच्चे-बच्चे की ज़बान पर था। इसलिए उसके बारे में कल्याणी की दिलचस्पी से किसी को सन्देह नहीं हो सकता था।

किसी ने मुत्तय्यन की प्रशंसा की, तो वह उसकी निन्दा करती। किसी दूसरे ने मुत्तय्यन को बुरा-भला कहा, तो वह उसका पक्ष ले लेती! लोग कहते, "बहूरानी। तुम्हें पता तब चलेगा जब तुम्हारे घर डाका पड़ेगा"। कल्याणी झट जवाब देती, "अजी उसकी इतनी मजाल कहाँ, जो मेरे घर की तरफ़ ताक भी सके? भागनेवाले मर्दों ही का डाकू भी पीछा करते हैं। स्त्रियों की तो छाया से भागते हैं वे!"

मुत्तय्यन चोर कैसे बना और क्यों बना, इसके बारे में बहुत बढ़ी-चढ़ी अफवाहें फैली हुई थीं। लोग कहते थे कि उसकी बहन पर खुद मठाधीश ने हाथ साफ कर दिया था! मुत्तय्यन ने उन्हें रंगे हाथों पकड़ लिया और मारकर अधमरा छोड़ गया!

अभिरामी के कष्ट का हाल सुनकर कल्याणी जरा खुश हुई थी। "इस अभिरामी ही के लिए तो मुत्तय्यन ने मुझे ठुकराया था! अब क्या हुआ उसका?" यह सोच कर उसे हर्ष हुआ। लेकिन पल-भर में यह विचार बदल गया। बेचारी

लड़की। एकदम अनाथ हो गई। पता नहीं अब कहाँ कैसी निःसहाय अवस्था में पड़ी मुसीबत उठा रही है!

कल्याणी का मन अभिरामी की दयनीय स्थिति की कल्पना करके पानी-पानी हो उठा। इच्छा बलवती हो उठी कि अभिरामी को ढूंढ़-ढाँढ़ कर ले आऊं और अपने ही साथ रक्खूं। परन्तु साथ ही यह भी विचार उठा कि वह उचित नहीं होगा। उससे लोगों को शक हो सकता है। पहले मुत्तय्यन से मिल कर बातें कर लेनी चाहिए और चोरी-डाके की आदत छुड़ा देनी चाहिए। उसके बाद अभिरामी को खोजने में ही समझदारी है।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, मुत्तय्यन को देखने की उसकी चाह भी अदम्य होती गई। "मुत्तय्यन, मुत्तय्यन! तुम हर ऐरे-गैरे के घर चोरी करने जाते हो। इस पापिन के भी घर एक दिन आओ न?"—उसका हृदय करुण स्वर में क्रन्दन कर उठा।

*** *** ***

ऐसी ही स्थिति में एक रात को मुत्तय्यन दीवार फाँद कर उसके घर आया था। उसे देख कर वह अवाक खड़ा रह गया था। पर कल्याणी महीनों इसी शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में रही थी और इस मिलन के समय क्या-क्या बातें करनी चाहिए, कैसा व्यवहार करना चाहिए, आदि बातों का बार-बार पूर्वाभिनय कर चुकी थी। इसीलिए उसने झट यह प्रश्न किया था, "मुत्तय्या! क्या तुम्हें सिर्फ मेरे गहने ही चाहिए?"

पर इसके आगे वह जो कुछ कहना चाहती थी, वे सब बातें उसके मन में ही दबी रह गईं। उन्हे कहने का अवसर ही उसे नहीं मिला।

कल्याणी को पहचानते ही मुत्तय्यन आश्चर्य-चकित रह गया था। पर अगले ही क्षण उसे अकथनीय अपमान का अनुभव हुआ। "कल्याणी के घर में मैं चोरी करने आया!"—यह सोच कर वह अपमान के मारे सिकुड़ा जाता था। इच्छा हुई कि धर्ती में धँस जाऊं। उसी क्षण वह वहाँ से भागा और एक ही छलाँग में दीवार फाँदकर अन्धकार में विलीन हो गया।

खपरैलों के गिरने और दूर पर दो बार बिगुल बजाने की आवाजें न आतीं तो कल्याणी को विश्वास ही नहीं हो सकता था कि यह सब सपना नहीं, सच्ची घटना थी।

२६

रावसाहब उडैयार

रावसाहब शट्टनाथ उडैयार रायवरम तहसील के एक संभ्रान्त व्यक्ति थे। म्युनिसिपल कौंसिलर, जिलाबोर्ड के सदस्य, देवस्थानम् (मन्दिर-प्रबन्धों) समिति के अध्यक्ष आदि पदों को बड़ी दक्षता के साथ वहन करके बहुत ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इस तरह के सार्वजनिक कार्यों में संलग्न होने वाले उस तहसील के बहुत से लोग अपनी संपत्ति और सुख-चैन गंवा बैठे थे। परन्तु न जाने कैसे, उडैयार साहब पर इसका उलटा ही प्रभाव पड़ता दिखाई देता था। एक तरफ उनकी संपत्ति दिन-पर दिन बढ़ती जाती थी, तो दूसरी तरफ़ उनकी शानो-शौक़त और प्रभाव दिन-दूनी रात चौगुनी वृद्धि करता जाता था। लोग इसके तरह-तरह के कारण बताते थे। "भई, सब किस्मत की बात है, किस्मत की!" यह कुछ लोगों की राय थी। "किस्मत को मारो गोली! आदमी बड़ा चतुर है, काबिल है! मुंह में मिठास और हाथों में सफाई!" यह कुछ और लोगों की राय थी। और कुछ लोग कहते थे, "वह तो चोर है, अव्वल दर्जे का! म्युनिसिपल संस्थाओं में घूसखोरी और मन्दिरों में लूट-खसोट! उसकी अमीरी की यही तो कुंजी है!" और भी तरह-तरह की अफ़वाहें उनके बारे में उड़ती थीं।

रायवरम शहर के बाहर, सड़क के किनारे पर, उडैयार का बंगला बना था। चारों तरफ विशाल बगीचा और बीच में भारी कोठी। उस दिन उडैयार साहब बंगले के ड्राइंगरूम में बैठे समाचार पत्रों के लिए एक पत्र तैयार कर रहे थे। उडैयार के ख्याति प्राप्त कर करने तथा प्रभाव बढ़ाने का यह भी एक मुख्य मार्ग था। अखबारों में उनके गरमागरम पत्र अकसर छपा करते थे। कोई विषय ऐसा नहीं था, जिस पर वह अपनी राय इन पत्रों के द्वारा प्रकट न करते हों। कोई सप्ताह ऐसा नहीं जाता था जब उनके कम-से-कम दो पत्र अखबारों में न छपते हों।

इसी क्रम के अनुसार आज भी वह एक पत्र लिख रहे थे, जो इस प्रकार था :—

आदरणीय सम्पादक जी,

कोल्लिडम के इस प्रदेश में मुत्तय्यन नाम के एक डाकू के दुःसाहसपूर्ण कारनामे दिन-पर दिन बढ़ते जा रहे हैं। हाल में गोविन्दनल्लूर में हुए

ब्याह के अवसर पर उसने जो ऊधम मचाया था, उससे इस तहसील भर के लोगों में आतंक छा गया है। लोग सदा इस डर से भयभीत रहते हैं कि न जाने कब हमारे प्राण व सम्पत्ति को खतरा होगा।

कल मुत्तय्यन से मुझे एक चिट्ठी मिली। उसमें उसने लिखा है कि मैं एक दिन आपके घर अतिथि बनकर आनेवाला हूँ, उचित सत्कार का प्रबन्ध कीजिए।

एक नालायक चोर में इतनी हिम्मत आ गई है, तो उसका सारा श्रेय इस तहसील की पुलिस के अधिकारियों ही को है। पुलिस की इस योग्यता की लोग बड़ी सराहना कर रहे हैं। लोगों की यह हार्दिक अभिलाषा है कि पुलिस के इन सुदक्ष अधिकारियों को उचित तरक्की दी जाय!

भवदीय,

रावसाहब के एन. शट्टनाथ उडैयार

उडैयार साहब इस पत्र को लिख कर लिफाफे में बन्द कर रहे थे कि इतने में एक नौकर ने आकर कहा, "साहब! वह आदमी आया है!"

झट उडैयार के चेहरे पर भय की छाया सी दौड़ गई! लेकिन पलभर में ही संभल गये और बोले, "उसे अन्दर भेजो। देखो, और किसी को आने न देना, चाहे कोई भी काम हो। समझे?"

नौकर चला गया और थोड़ी ही देर में एक आदमी अन्दर आया। वह और कोई नहीं, मुत्तय्यन ही था।

मुत्तय्यन ही था। हाँ, नक़ाबपोश होकर नहीं, बल्कि 'शरीफ़ाना' लिबास पहनकर आया था।

आते ही उसने "गुड मार्निंग, सर!" कहकर उडैयार का अभिवादन किया और खड़ा रहा।

उडैयार कुछ देर तक उसे आश्चर्य के साथ देखते रहे और बाद में बोले "आख़िर इतना सा लौंडा होकर क्या उधम मचा रहा है तू!"

"उडैयार साहब! ज़रा अदब के साथ ही बातें करें तो अच्छा होगा न?" मुत्तय्यन ने कहा।

"जैसी आपकी मर्ज़ी, हुज़ूर। तशरीफ़ रखिए, हुज़ूर जनाबे आली जानते तो होंगे कि आपको इतनी तकलीफ़ क्यों दी गई?" उडैयार ने पूछा।

"आपके आदमी ने मुझे कुछ भी नहीं बताया। बस, इतना ही कहा कि आप मेरा चेहरा देखने के लिए उतावले हो रहे हैं। फिर भी मैं जानता था कि

आपकी उत्सुकता के पीछे कोई खास मतलब ज़रूर होगा। क्यों, ठीक है न ?" मुत्तय्यन की आँखें चमक रही थीं।

उडैयार सोचने लगे। ऐसा लगता था कि मुत्तय्यन से अपने मन की बात कहते हुए उन्हें ज़रा झिझक हो रही है। मुत्तय्यन ने यह भाँप लिया और उनको उसकाने के बहाने बोला, "उडैयार साहब ! दिल खोलकर बात कीजिएगा। चोरों में झिझक कैसी ?"

सुनकर उडैयार चौंक पड़े। पूछा, "इसके क्या मानी ?"

"ठीक ही तो कहता हूँ ! हम दोनों में आपस में झिझक काहे की ? मामूली चोर हूँ तो आप हैं मिस्टर- -चोर साहब ! फ़र्क़ तो सिर्फ़ इतना ही है न ? इसलिए फ़िक्र न कीजिए। कहिए; क्या आज्ञा है ?" मुत्तय्यन बोला।

उडैयार ने उसे घूरकर देखा और बोले, "लोग ठीक कहते हैं तुम्हारे बारे में। सचमुच तुम विलक्षण व्यक्ति हो। खैर, जाने दो। अब ज़रा ध्यान से सुनो। मैंने कुछ खास काम पर तुम्हें यहाँ बुलाया है। मेरे एक मित्र हैं। पाण्डिचेरी से कुछ माल लुका-छिपा कर लाना चाहते हैं। इस काम में तुम्हारी मदद उन्हें चाहिए। लेकिन देखो ! इसमें मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। वह मेरे मित्र हैं और तुम भी परिचित हो। बस, इसलिए मैंने इस काम में हाथ लगाया है। तुम राज़ी हो तो बताओ। हाँ, खतरा ज़्यादा होगा ही। पर मज़दूरी भी उसके अनुसार काफ़ी मिलेगी। क्यों, क्या कहते हो ?"

यह सुनकर मुत्तय्यन ने मुँह पर हाथ दबा लिया और हँसी रोकने की कोशिश की। पर उसमें सफल न हो सका, इसलिए ठहाका मार कर हँस पड़ा और बीच-बीच में उडैयार की भी तरफ़ देखा।

उडैयार को अपनी वेशभूषा का बड़ा ख्याल रहता था। मुत्तय्यन को हँसते देखकर उन्हें शक हो गया कि कहीं कोई पहनावा अस्त-व्यस्त तो नहीं है ! झट उठे और दीवार के साथ लगे हुए आइने में अपना रंग-रूप निहारने लगे।

मुत्तय्यन बोला, "टीपटाप में कोई कमी नहीं है, उडैयार साहब ! बिलकुल अप-टुडेट है। मैं उस पर थोड़े ही हँस रहा हूँ ? मेरी हँसी का तो कारण ही कुछ और है। पाँच छः साल पहले आपने ऐसे ही किसी चोरी के काम के लिए मुझ से गाड़ी ड्राइव करने को कहा था मैंने इन्कार किया तो आपने मुझे बर्खास्त कर दिया था। उस समय भी आपने यही कहा था कि यह सब किसी मित्र के लिए करा रहा हूँ, मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं। याद है न ?"

उडैयार के मानों बिच्छू ने डंक मार दिया। उचक कर उठ खड़े हुए। "अरे कम्बख्त ! तुम्हीं अब······?" उनकी जबान लड़खड़ाने लगी। आश्चर्य के मारे

कुछ कहते नहीं बना।

थोड़े देर बाद वह खड़े-ही-खड़े बोले, "गोविन्द नल्लूर के ब्याह में जब तुम्हें देखा था, तभी मुझे शक हुआ था कि तुम वही होगे। इसीलिए किसी तरह तुम्हें लिवा लाने के लिए अपने आदमी से कहा था। ठाठ से मूछें रखा ली हैं न तुमने? तभी तो मैं पहिचान न पाया ठीक से! ख़ैर। उन दिनों तो तुम बड़े भगत बनते थे! चोरी-चालाकी के नाम से ही भागते थे। लेकिन अब क्या हुआ? अब तो तुम मशहूर डाकू बन गये हो! अगर उसी समय से मेरे साथ ही रहते, तो कोई ख़तरा नहीं हो सकता था। अब तो बकरे की माँ कबतक ख़ैर मनायेगी वाला हाल है तुम्हारा। अब भी मेरी बात मानो और मेरे साथ हो जाओ। मैं एक दिशा में प्रवीण हूँ तो तुम दूसरी दिशा में लाजवाब हो। अगर हम दोनों मिलकर काम करें, तो सारी दुनिया को सौ-सौ बार ख़रीद कर बेच सकते हैं। क्या कहते हो? बोलो!"

"अजी मुझ को न बनाओ। मैं तुम्हारी नस-नस पहिचानता हूँ। अब तो मीठी-मीठी बातें करोगे, लेकिन ऐन मौके पर गला काट दोगे। कोई बात हो जाय तो मुझे फँसा दोगे और खुद साफ़ बच जाओगे। हाकिम लोग तो तुम्हारे साये से डरते हैं। अगर उन्होंने कुछ हिम्मत की भी, तो भी तुम्हारी तो पहुँच होम मेंबर तक है। बचने का कोई न कोई रास्ता ढूँढ ही लोगे। बलिदान का बकरा बनूँगा मैं! लेकिन हाँ। अब मैं इन बातों से बिलकुल नहीं डरता। तो बताओ, एक बार पाण्डिचेरी हो आऊँ, तो मुझे क्या दोगे?"

"पूरे एक हज़ार रुपये!"

"बस, इतना ही? अगर मैं यों न आकर रात को तुम्हारे घर पर डाका डालता तो कम-से-कम पाँच हज़ार की बात रहे हो कर!"

यह सुनकर शङ्कनाथ उडैयार चौंक पड़े। बोले, "सान की लकड़ी पर ही धार की तेज़ी आज़माओगे क्या?"

"अजी नहीं उडैयार साहब। ऐसा काम मैं कभी नहीं करूँगा। चोर के ही घर चोरी करना पेशे के उसूल के ख़िलाफ़ होगा न? इसलिए बेफ़िक्र रहो। मैं तुम्हारी मदद करता हूँ। उसके बदले में तुम्हें भी मेरी मदद करनी होगी। जब तुम्हारा काम पूरा हो जायेगा, तब तुम्हें एक मोटरगाड़ी मुझे देनी होगी। एक बार मद्रास हो आने की मेरी इच्छा है। क्यों, तय रहा न सौदा?" मुत्तयन ने पूछा।

उडैयार ने ज़रा सोचकर कहा, "ठीक है। देखा जायेगा।"

३०

मधुमास

अगले दिन मध्यान्ह का समय था। राजन नहर का पानी सूख गया था और उसकी बालूपर किनारे के घने वृक्षों की सुखद छाया पड़ रही थी। इस छायामय बालुका के ऊपर अपना अंगोछा बिछाकर उस पर मुत्तय्यन लेटा हुआ था।

वसंत काल का आरंभ था। चैत के अभी कुछ ही दिन बीते थे। जहाँ देखो, हरे-भरे-पेड़ पौधे ऐसे लहलहा रहे थे कि देख कर आँखें खुश हो जाती थीं। मृदु समीर उनके साथ खिलवाड़ कर रहा था। ज़रा दूर पर एक नीम का पेड़ फूलों-फलों से लदा, मनोहर दृश्य उपस्थित कर रहा था। मुत्तय्यन उसकी मनोरम सुगंध का आनन्द लेता हुआ बालू पर पड़ा था। उस पेड़ की घनी शाखाओं में कहीं छिप कर एक कोयल मधुर स्वर में कूक रही थी।

पिछले चैत से लेकर इस चैत तक करीब एक वर्ष मुत्तय्यन इस प्रदेश में दुबककर—लुक-छिपकर—चोर की ज़िन्दगी बसर कर चुका था। इस एक वर्ष के अन्दर दो बड़ी तहसीलों के सभी लोग उसके नाम से थर थर काँपने लगे थे। ऐसे चिर-परिचित प्रदेश को एक बारगी छोड़कर चले जाने का अब उसने इरादा कर लिया था। इस विचार से उसका मन व्यथित हो उठा।

उसे इस निश्चय पर पहुंचे अभी कुछ ही दिन हुए थे। हमने पहले देखा था कि कल्याणी से रात के वक्त अचानक, चोर के रूप में मिलने के बाद मुत्तय्यन किस तरह अपमानित और भयभीत होकर भाग निकला था। उस दिन वह ठीक उसी तरह बेतहाशा भागने लगा था, जैसे हवालात से बचने के दिन भागा था। आख़िर किसी तरह कोल्लिडम की घाटी के उस प्रदेश में पहुंच ही गया था, जो पिछले एक साल से उसे शरण दिए हुए था। रातों रात उसने नदी पार कर ली थी और दूसरे तट की घनी झाड़ियों में जाकर छिप गया था। उसी वक्त उसने अपने भविष्य के बारे में सोचना शुरू कर दिया था। उसे यह बात साफ़ मालूम हो गयी थी कि अब अधिक दिन इस तरह का जीवन बिताया नहीं जा सकेगा। पुलिस की कार्रवाइयाँ दिन पर दिन ज्यादा ज़बरदस्त होती जा रही थीं। किसी न किसी दिन उसे पकड़ा ज़रूर जायेगा। अगर पुलिस उसे पकड़ न भी सकी, तो

भी इस तरह निर्भयता के साथ अब अधिक दिन गुज़ारना संभव नहीं। इतने दिनों तक वह इस प्रदेश में पड़ा रहा, तो वह केवल कल्याणी से मिलने की इच्छा से। जब वह इच्छा इतने विलक्षण रूप से पूरी हुई, तो मुत्तय्यन हताश हो उठा।

इसी कारण उसने यह निश्चय किया कि अब तक जो कुछ धन उसके पास जमा है, उसे लेकर कहीं समुद्र पार भाग जाया जाय। पर उससे पहले एक बार मद्रास जाकर अभिरामी से मिलने की भी उसे इच्छा हुई। परन्तु यह सब काम पूरा हो कैसे?

जब वह इस उधेड़-बुन में लगा हुआ था, तब अचानक उसे याद आया कि राव साहब उडैयार ने उससे मिलने की इच्छा प्रकट की है। वह पहले ही ताड़ गया था कि उडैयार उससे क्या कराना चाहते होंगे। उडैयार के वास्तविक रूप से वह भली भाँति परिचित तो था ही, इसलिए उनकी ओर से खतरा होने की उसे बिल्कुल आशंका नहीं थी। पर उस काले साँप के बिल में दूध डालना उसे नापसंद था। उसका मन कह रहा था कि इससे आखिर उसे कोई लाभ नहीं होगा।

लेकिन समुद्र पार जाने की इच्छा प्रबल हुई, तो उसने सोचा, उडैयार के सहयोग से वह शायद पूरी हो सकती है। इसी आशा से प्रेरित होकर वह उडैयार से जाकर मिला था और 'चुंगी की चोरी' में उनकी सहायता करना स्वीकार कर लिया था। उस काम के लिए नियत दिन तक चुपचाप अपनी 'मांद' में छिपकर पड़ा रहना ही उसे उचित जंचा था। इस कारण इधर कुछ दिनों से उसकी सब कार्रवाइयाँ बंद थीं।

*** *** ***

आज रात नहर की बालुका-शय्या पर पड़े-पड़े हठात् उसके मन में कल्याणी की स्मृति जागृत हो उठी। यद्यपि उसने उसकी याद को एकदम भुलाने का संकल्प कर रक्खा था, और यह भी सोचा था कि उसकी याद को मन में स्थायी रूप देकर मैंने भारी भूल की थी, फिर भी उसका मन बरबस कल्याणी की ओर चला। उस रात को कल्याणी ने जो प्रश्न किया था, उसके शब्द बार-बार उसके कानों में गूंज उठते थे : "मुत्तय्या! क्या, तुम्हें केवल मेरे गहने ही चाहिए?"

उन शब्दों का तात्पर्य जानने के लिए उसका मन उत्कंठित हो उठा। यह सोचकर उसे आश्चर्य हुआ कि कल्याणी एक बुढ़िया के साथ, उस विशाल कोठी में अकेली क्यों रह रही है? सोचा, मैंने भारी मूर्खता की। एक बार उसके मुख को ज़रा ध्यान से देख तो लेता। कम-से-कम इतना ही पूछ लेता कि "कुशल तो हो?" मुत्तय्यन बड़ा उद्विग्न हो उठा।

इन्हीं विचार-तरंगों में थपेड़े खाते-खाते अचानक उसके मन में यह इच्छा

प्रबल हो उठी कि उस जीर्ण मन्दिर को एक बार देख आऊँ जहाँ मैंने और कल्याणी ने बचपन से लेकर जवानी तक कई वर्ष खुशी से खेलते-कूदते बिताये थे। कल्याणी के विवाह से पहले, उसके साथ उसकी आख़िरी मुलाकात भी तो वहीं हुई थी! कल्याणी का उस दिन का वह रूप उसकी आँखों के सामने पुनः सजीव हो उठा, जब उसने अश्रुभरे नैनों के साथ कहा था, "जानना चाहते हो मैं यहाँ क्यों आई? और मैं आती किसलिए? तुम्हारी ही तलाश में आई!"

अब मुत्तय्यन से रहा नहीं गया। उस प्रदेश को सदा के लिए छोड़कर जाने से पहले एक बार उस जीर्ण मन्दिर के दर्शन कर आने की उसने ठान ली। यह निश्चय करते ही कोई अज्ञात शक्ति उसे पूंकुलम की तरफ़ बरबस ले जाने लगी। शाम को मन्दिर के पास पहुँचते ही पर उसे यह मालूम हुआ कि वह अज्ञात शक्ति क्या थी! हाँ, वह अज्ञात शक्ति कल्याणी ही थी।

मन्दिर पहुँचने पर मुत्तय्यन ने आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से देखा कि उसी चबूतरे पर, जहाँ बैठकर खुशी से गाते-हँसते उसने कितने ही दिन बिताये थे, कल्याणी अकेली बैठी हुई है। वह हृदय थामकर रह गया।

३१

प्रेमियों का समझौता

मन्दिर के पास एक आम का पेड़ था। उसकी लाल-लाल कोंपलों के बीच में आम के नन्हें फूलों के गुच्छे खिले हुए थे। उनपर भौंरे और शहद की मक्खियाँ इस तरह चिपकी हुई थीं कि फूल नज़र ही नहीं आते थे। उनकी मधुर गुनगुनाहट सारे वन-प्रदेश को गुंजरित कर रही थी और प्रकृति देवी को मानों आनन्द विह्वल बना देती थी!

ज़रा दूर एक कंटीली झाड़ी से वनमल्लिका की एक लता लिपटी हुई थी। उसके ऊपर रंग-बिरंगी असंख्य तितलियाँ उड़ रही थीं, मानों लता पर लदे हुए फूलों की मोहक सुवास से आकृष्ट होकर ही वे उसपर मंडरा रही हों। उन तितलियों के परों पर भी कैसा अद्भुत वर्णजाल! उन पर कैसी रंग-बिरंगी बिंदियाँ! स्वच्छ, सफ़ेद रंग के पर, उनपर काले-काले बिन्दु। नीले-नीले पर और पीली-पीली बिन्दियाँ। पर पीले हैं तो बिन्दियाँ लाल-लाल। विधाता ने जब इन तितलियों का सृजन किया था, तब तरह-तरह के रंग घोलकर तैयार कर लिए होंगे और कल्पना की चित्र-वैचित्र्यपूर्ण उड़ान से प्रेरणा पाकर तरह-तरह से, विलक्षण ढंग से, तूलिका चलाई होगी।

कभी वे तितलियाँ वनमल्लिका की लता पर बैठतीं। अगले ही क्षण अकारण ही पर फड़फड़ाती हुई उड़ जातीं और सारे गगन का चक्कर काटतीं। उनके परों का फड़फड़ाना देखकर हमारा मन इस विचार से द्रवित हो उठता कि यह सुन्दर जीव इस तरह क्यों छटपटा रहा है? हाय, क्षणभर में कहीं ज़मीन पर गिरकर प्राण न छोड़ बैठे।

कल्याणी का हृदय उस समय ठीक उसी तरह फड़फड़ा रहा था, जैसे तितलियों के पर। मुक्तव्यन को आते हुए उसने देख लिया था। देखकर उसका मन बल्लियों उछलने लगा। पर अगले ही क्षण उसे यह डर हुआ कि उसे देखते ही मुक्तव्यन पिछली बार की तरह भाग न खड़ा हो जाय। इसी डर के मारे उसका हृदय धड़कने लगा।

उस रात को मुक्तव्यन के अचानक भाग खड़े होने पर कल्याणी का मन असह्य वेदना से चीख उठा था। ग्लानि और हताशा से वह विकल हो उठी थी।

सोचा कि मेरी ही मूर्खता के कारण मुत्तय्यन भाग गया है। मुत्तय्यन से मिलने की ही आशा अबतक उसके जीवन को सार्थक बनाये हुए थी। आशा की यह भी किरण अब लुप्त हो गई। मुत्तय्यन इसी तरह चोर का जीवन बिताता रहेगा और आखिर एक दिन पुलिस के हाथ उसे लगना ही पड़ेगा। तब फिर? जीवन भर का कारावास! उधर मुत्तय्यन जेल की सीखचियों के अन्दर तड़पता रहेगा और इधर उसे अकेली ही रहकर जीवन की मरुभूमि पार करनी होगी।

यह कल्पना कल्याणी के लिए असह्य हो उठी। उसकी आँखें डबडबा आयीं। इससे पहले वह शायद ही कभी आँसू बहाती थी। पंचलदम पिल्लै के साथ जब से उसका ब्याह हुआ तबसे उसने मानो दिलपर भारी पत्थर रख लिया था। पर उस रात की घटना के बाद वह बिलख-बिलखकर रोई। आँसुओं की धारा रोके नहीं रुकती थी।

कल्याणी की फूफी यह देखकर घबड़ा गई। एक दिन वह कल्याणी से बोली, "बेटा, जिस दिन से घर में चोर आया, उस दिन से पता नहीं तुम्हें हो क्या गया है। तुम घबड़ा गई हो। मुझे ऐसा लगता है कि देवी महामारी को भोग चढ़ाना होगा। चलो पूंकुलम चलें और सबके साथ मिल-जुलकर हँसी के साथ वहाँ कुछ दिन बिता आयें। तुम्हारी घबराहट तभी दूर होगी और तभी मन को चैन मिलेगो।"

फूफी ने यह सुझाव बड़े सरल भाव से रख तो दिया था, पर उसे आशा नहीं थी कि कल्याणी आसानी से उसे मान लेगी। इसलिए जब कल्याणी ने तुरन्त उसकी बात मान ली, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

पूंकुलम का नाम सुनते ही कल्याणी को अतीत की कितनी ही मधुर बातें याद हो आयीं। कोल्लिडम नदी तट का वह जंगल, वह पुराना जीर्ण मन्दिर, सब उसे पूंकुलम की ओर खींचने लगे। इसलिए उसने झट अपने पिता जी को चिट्ठी लिख दी। दो ही एक दिन में चिदम्बरम पिल्लै आये और दोनों को लेकर पूंकुलम लौट गये।

दो-एक दिन कल्याणी घर ही में पड़ी रही। बाद में गगरी उठाये नदी के लिए चल पड़ी। जब वह इतनी सी बच्ची थी, तभी उसे मना करने-वाला कोई नहीं था, तो अब जब कि वह विशाल ऐश्वर्य की अधीश्वरी हो चुकी थी, उसे मना करने की हिम्मत किसे हो सकती थी?

❀❀❀ ❀❀❀ ❀❀❀

अब मुत्तय्यन को सामने देखते ही कल्याणी उठकर खड़ी हो गयी। दोनों एक दूसरे को एकटक देखते हुए कुछ देर चित्रवत खड़े रहे। मुत्तय्यन से अचानक, अप्रत्याशित रूप से भेंट होने के कारण कल्याणी एक तरफ़ तो आश्चर्य चकित

हो रही थी और दूसरी तरफ़ उसे यह भी भय था कि कहीं कुछ ऐसी बात मेरे मुंह मे न निकल जाय जिससे मुत्तय्यन फिर भाग खड़ा हो जाय।

पर इस बार मुत्तय्यन भागनेवाला नहीं मालूम हो रहा था। पहले उसे विश्वास नहीं हो सका कि सचमुच ही कल्याणी मेरे सामने खड़ी है। जब यह भ्रम ज़रा दूर हुआ तो वह कल्याणी के पास आया।

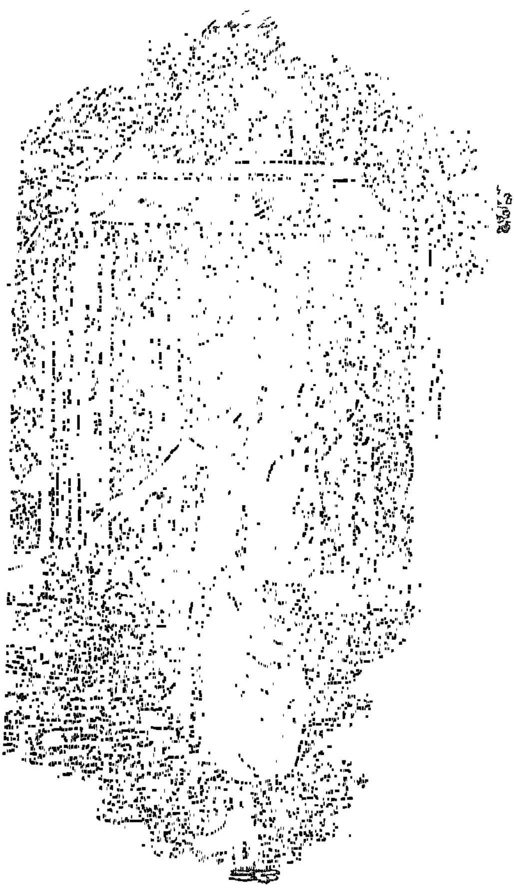
"कल्याणी! सचमुच तुम्हीं खड़ी हो, या कोई मायास्वरूप है?" उसनेपूछा।

"उचित तो यह था कि मैं तुम्हारे बारे में ऐसा सन्देह करूँ। क्यों कि इस घड़ी आँखों के सामने प्रकट होना और अगली घड़ी ओझल हो जाना, यह तुम्हारी ही तो आदत है!" कल्याणी बोली और दोनों हाथ फैलाकर उसके सामने खड़ी हो गयी, मानों उसे फिर भाग जाने से रोकना चाहती हो।



मुत्तय्यन यह देखकर खिल खिलाकर हंस पड़ा। कल्याणी भी हंसी रोक नहीं सकी। दोनों हंस पड़े। उन्हें इस तरह हार्दिक हंसी हंसे एक अर्सा गुज़र चुका था, इसलिए दोनों जी भरकर हंसे। जामुन के पेड़ पर चिड़ियों का एक घोंसला था इन प्रेमियों की हंसी सुनकर चिड़ियों के बच्चे डर गये और घोंसले से बाहर झांककर सहमी हुई नन्हीं नन्हीं आंखों से उन को देखने लगे।

मुत्तय्यन ने बड़ी कठिनाई से हंसी रोकली और बोला, "कल्याणी, सच मुच मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम्हीं सामने खड़ी हो। तुम यहाँ आयीं क्यों? उस पुराने मुत्तय्यन



की लाज में ? लेकिन वह तो अब खत्म हो चुका है। अब जो मुत्तय्यन जीवित है, वह तो डाकू है ! उसके और तुम्हारे बीच में ऐसी अथाह खाई बन गयी है जो इस कोल्लिडम नदी से भी अधिक विशाल है।"

"मुत्तय्यन ! यह मैं जानती हूँ कि तुम डाकू बन गये हो। लेकिन मैं भी तो वह पुरानी कल्याणी नहीं रही ! जंगल में मौज से मनें-खेलने वाली "बनदेवी" कल्याणी कब की खत्म हो चुकी है। अब जो तुम्हारे सामने खड़ी है, वह तो है विधवा कल्याणी।"

"यह क्या ? हाय ! उस पापी ने तुम्हारे साथ विवाह किया, तो क्या इस तरह तुम्हारा जीवन बर्बाद करने ही के लिए ?" मुत्तय्यन ने भग्न हृदय से पूछा।

"उन महापुरुष की निन्दा न करो, मुत्तय्या ! वह सचमुच पुण्यमूर्ति थे। उन जैसे कुछ महात्माओं की ही तपस्या का फल है कि यह संसार अब तक चल रहा है—छिन्न-भिन्न होकर बिखर नहीं जाता।"

कल्याणी की ये बातें सुनकर मुत्तय्यन की त्योरियाँ चढ़ गयीं। क्रूर स्वर में पूछा, "अगर पति के प्रति तुम्हारी इतनी श्रद्धा है, तो फिर इस डाकू की खोज में यहाँ क्यों आयीं ?"

कल्याणी की आंखों से टपाटप आँसू की बूँदें निकल आयीं। फिर वह गरम अश्रुधारा बनकर उसके मृदुल कपोलों पर बह चलीं।

देखकर मुक्तयम का हृदय द्रवित हो गया। रुद्धकंठ से बोला, "कल्याणी ! मैं बड़ा ही निर्दयी हूँ। और मूर्ख भी। तुमसे मिलने से पहले पल पल तुम्हारी ही याद में बिताया करता था। मेरा जी तड़प उठता था कि इस जीवन में कभी कल्याणी के दर्शन हो भी सकेंगे? पर जब तुम्हें देखने का सौभाग्य मिला, तो मूर्खता की बातें करके तुम्हें रुला रहा हूँ। मुझसे बड़ा अभागा दुनिया में कौन हो सकता है। कभी कभी सोचता हूँ, मैं इस संसार में पैदा हुआ ही क्यों?"

"और किस लिए पैदा हुए? एक मातृहीन लड़की का जी जलाने ही के लिए पैदा हुए तुम!" कल्याणी की बातों में वेदना की कराह थी।

कुछ देर बाद वह संभल कर शान्त स्वर में बोली, "मुत्तय्या! हमने जीवन में एक बार एक भारी भूल कर दी थी। ईश्वर ने हम दोनों के हृदय को प्रेम के बन्धन में बांध रक्खा था। हमने अपनी मूर्खता के कारण उस बंधन को तोड़ने का प्रयत्न किया। इस मूर्खता का फल भी हमें खूब मिला। अब फिर वही भूल न करें। इस तरह की ज़िंदगी तुम ज़्यादा दिन बिता नहीं सकते। एक न एक दिन पुलिस के दाव में आकर ही रहोगे। इसलिए मेरी बात मानो! कुछ दिन तक चुप चाप कहीं पड़े रहो और जब खलबली कुछ कम होगी, दोनों समुद्र पार के किसी अज्ञात देश को भाग चलें। वहां जीवन का एक सुखमय पर्व आरंभ करेंगे।"

कल्याणी की बातों में अपने ही विचारों की गूंज सुनकर मुत्तय्यन फिर चौंक पड़ा। फिर भी अपना आश्चर्य प्रकट किये बिना बोला, "कल्याणी, तुम तो मुझे देश-निकाला देने पर सदा उतारू रहती हो।"

"क्या अभी तक तुम मुझे समझ नहीं पाये, मुत्तय्या? मैं तुमको अकेले थोड़े ही भेज रही हूँ? पहले जहाज़ में तुम जाओगे, तो अगले जहाज़ में मैं भी तुम्हारे पीछे पीछे चल दूंगी।"

"क्या सच कहती हो, कल्याणी? अच्छी तरह सोच-विचार कर फिर एक बार बोलो। क्या इतनी विशाल संपत्ति, घर-द्वार, नौकर-चाकर, भाई-बन्धु, सबको छोड़कर इस चोर के साथ चलने के लिए तैयार हो तुम? सचमुच?"

"हां, मुत्तय्या! मेरी निगाह में तुम्हीं इन सबसे बढ़कर हो। दिवंगत ज़मींदार की इच्छानुसार इस सारी संपत्ति को धार्मिक संस्थाओं के लिए छोड़ दूंगी। बस, हमें धन की कोई आवश्यकता नहीं। जहां भी जायेंगे, मेहनत-मशक्कत करके गुजारा कर लेंगे।"

"अब भी तुम्हीं मेरी खातिर महान बलिदान कर रही हो, कल्याणी! मैंने कुछ और ही सोचा था। मेरी अभिलाषा थी कि लूट का सारा धन एक दिन तुम्हारे चरणों पर लाकर डाल दूं और कह दूं कि इसका जैसा चाहो उपयोग कर लेना।

लेकिन तुम तो मेरी खातिर कुबेर की सी इस विशाल संपत्ति को ठोकर मारने के लिए तैयार हो रही हो। अब भी हार मेरी ही हुई। पर इस बार मैं पहले की तरह हठ नहीं करूंगा। विदेश जाने के लिए मैं तैयार हूं। लेकिन उससे पहले मुझे एक काम करना है जिसके लिए मैं वचन दे चुका हूँ। साथ ही मद्रास जाकर एक बार अभिरामी को देखना चाहता हूँ। उसके लिए सब तैयारियां हो चुकी हैं। बस, एक-दो महीने और सब्र कर लेना।"

"हाय रे! फिर एक बार तुम खतरा ही तो मोल लेने जा रहे हो!"

"नहीं कल्याणी! अबके मैं काफ़ी सावधान रहूंगा। कलतक मुझे अपनी जान की परवाह नहीं थी। चाहता था कि मौत आ जाय। लेकिन अब, जब तुम से फिर मुलाकात हो गयी, जब मालूम हो गया कि इतने दिन बाद भी तुम्हारा प्रेम ध्रुवतारा की तरह स्थिर है, प्राणों का मोह मुझ में पुनः जागृत हो उठा है। अब मैं जीना चाहता हूँ। इसलिए सावधान रहूंगा।"

३२

मोटर-दुर्घटना

सूर्य अस्त हो चुका था। पश्चिमी आकाश में अर्धचन्द्र उदित हो रहा था, मानों शान्त सागर में सुन्दर नौका तैर रही हो। नीले आकाश में टिमटिमाते तारों के बीच में रजत-आभूषण सा सुशोभित चन्द्रमा, थोड़ा सा ही प्रकाश दे रहा था। पर इस संसार में कुछ ऐसे भी लोग थे जिन्हें बालचन्द्र का यह धीमा प्रकाश भी अनावश्यक प्रतीत हो रहा था और जो उसके अस्त होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। थे थे चुंगी के चोर। थे एक मोटर गाड़ी में थे, जो पाण्डिचेरी से क़रीब आठ मील की दूरी पर खेतों के बीच में से चली आ रही थी।

मोटर गाड़ी पर लाल रंग लगा था। नंबर प्लेट का नाम तक नहीं। आगे की बत्तियां बहुत धीमी जल रही थीं। गाड़ी को चले क़रीब आध घंटा हो चुका था, फिर भी ड्राइवर ने एक बार भी भोंपू नहीं बजाया था।

गाड़ी में चार आदमी थे, जिनमें मुत्तय्यन भी एक था। उसके हाथ में एक रिवालवर था। वह खूब चौकस होकर बैठा था और गाड़ी के पीछे की तरफ सतर्क नेत्रों से देखता आ रहा था। उसे यह हुक्म हुआ था कि पुलिस की गाड़ी पीछा करे तो उस पर गोली चलावे।

प्रारब्ध, क़िस्मत, पिछले कर्मों का फल आदि के बारे में लोग जो कहते हैं, उसमें कुछ न कुछ सत्य अवश्य होना चाहिए। वरना, कल्याणी से पुनर्मिलन होने के बाद, उसके अमर प्रेम को प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद, मुत्तय्यन का मन ऐसे काम में कैसे लगता?

चन्द्रास्त होने लगा तो मोटर गाड़ी खेतों-खड्डों का रास्ता छोड़कर आम सड़क पर पहुँची। उस स्थान पर सड़क एक भारी झील के तट के साथ साथ जा रही थी। झील में पानी लबालब भरा, लहरें मार रहा था। आधी मील तक झील के किनारे के साथ साथ चलने के बाद सड़क दूसरी तरफ घूम गयी थी।

ज्यों ही मोटर सड़क पर पहुँची, ड्राइवर ने 'ऐक्सिलरेटर' को ज़ोर से दबाया। बस, गाड़ी हवा से बातें करने लगी। गाड़ी में बैठे हुए लोगों ने चैन की सांस ली कि बस, अब कोई ख़तरा नहीं है। मुत्तय्यन ने भी रिवालवर पर से अपनी पकड़ ज़रा ढीली की।

अचानक "हाल्ट" की आवाज़ आयी। उसके साथ ही साथ क़रीब दस

पुलिस वालों की टार्च लाइटों का प्रकाश गाड़ी पर पड़ा। जहां पर सड़क झील से हटकर घूम गयी थी, वहां बीस-पच्चीस पुलिसवाले झट से उठ खड़े हुए। ठीक इसी समय पीछे से एक मोटर गाड़ी के तेज़ी से आने की आवाज़ आयी। मुत्तथ्यन की गाड़ी के अन्दर किसी ने चिल्लाकर हुक्म दिया, "गाड़ी न रोको। तेज़ चलाओ।" ड्राइवर ने 'एक्सिलरेटर' को और ज़ोर से दबाया। गाड़ी अचिन्त्य वेग से गरजती हुई भाग चली।

इतने में एक भारी आवाज़ से हुक्म निकला, "शूट!" कई बन्दूकों से एक साथ गोलियां निकलीं। मुत्तथ्यन ने भी गोली चलायी। पर पहली गोली चलाने के बाद जबतक उसने दूसरी बार गोली चलाने की कोशिश की, उसे कहीं औंधे मुंह गिरने का सा अनुभव हुआ।

पुलिस वालों की एक गोली मोटर के टायर पर लगी। जिससे टायर फट गया। तेज़ चलने वाली गाड़ी अचानक घूम गई और झील की तरफ़ वेग से चली। अगले ही क्षण में गाड़ी उछल कर झील के अन्दर गिर पड़ी और एक दम डूब गयी।

पल भर के लिए मुत्तथ्यन हक्का-बक्का गया। पर अगली ही घड़ी वह समझ गया कि हुआ क्या है। जब उसे मालूम हुआ कि मैं मोटर के साथ साथ पानी में डूब गया हूँ तो उसे हिम्मत भी हुई कि अब बचना मुश्किल नहीं है। पानी तो उसके लिए माँ की गोद की तरह प्यारा था न?

हाथों-पैरों से टटोल कर उसने मोटर का किवाड़ खोल लिया और बाहर निकल आया। फिर धीरे से सिर पानी से बाहर उठाया। बहुत से पुलिस मैन बत्तियों व बन्दूकों के साथ सड़क से झील के किनारे की तरफ़ दौड़े आते दिखाई दिये। झट मुत्तथ्यन पानी में डूब गया और किनारे के साथ साथ पानी के अन्दर ही तैरता गया। ज़रा दूर जाने पर फिर सिर उठा कर देखा। जहाँ मोटर गिरी थी, वहाँ पुलिस वालों का भारी हो-हल्ला मचा हुआ था। लोग गाड़ी को पानी से निकाल कर किनारे पर लाने में लगे हुए थे।

मुत्तथ्यन समझ गया कि किसी ने उसे भागते हुए नहीं देखा होगा। अगर देखा होता तो अब तक भारी शोर मच जाता न? पुलिस वाले उसकी तलाश में किनारे के साथ साथ भाग तो आते न? पुलिस वालों को शायद यह मालूम नहीं था कि गाड़ी में कितने आदमी थे। अगर उसके साथी न बता दें तो पुलिस को उसके अस्तित्व का ही पता नहीं लग सकता।

मुत्तथ्यन ने सोचा, बदक़िस्मती में भी मैं औरों से खुशक़िस्मत रहा। इस विचार से उसे धीरज बंध गया और वह पानी में डुबकी लगा कर किनारे के साथ

साथ और आगे बढ़ा। क़रीब आधी मील इस तरह चलने के बाद वह किनारे पर पहुँचा और घनी झाड़ियों से निकल कर किनारे के ऊपर ही चलने लगा।

*** *** ***

रात के क़रीब एक बज चुका था। कुछ दूर पर रेलगाड़ी की आवाज़ आयी, तो मुत्तय्यन उस ओर जाने लगा। चैत का महीना था, इसलिए हवा में उसके सब कपड़े सूख गये थे। उसका मन न जाने क्यों उत्साह से भरा था। उतनी भारी दुर्घटना के बाद भी वह किसी तरह बच ही गया। इसका मतलब यही तो है कि उसमें कुछ अलौकिक शक्ति है! इस कल्पना से मुत्तय्यन का साहस और उत्साह सौगुना बढ़ गया।

सिग्नल की लाल बत्ती थोड़ी दूर पर दिखायी दे रही थी। मुत्तय्यन उसी की ओर चलता गया। उसका स्टेशन पर पहुँचना था कि मद्रास जाने वाली गाड़ी स्टेशन पर आकर रुकी। भाग्यवश रुपये की थैली जो उसने कमर से बाँध रक्खी थी, इस सारी दुर्घटना के बावजूद सुरक्षित थी। उसने मद्रास के लिए एक टिकट लिया और गाड़ी में जा बैठा।

जिस डिब्बे में वह चढ़ा था, उसमें भीड़ काफ़ी थी। अधिकतर लोग नवयुवक थे। गाना-बजाना खूब हो रहा था। मुत्तय्यन को उन लोगों का रंग-ढंग ही कुछ विलक्षण सा लगा। उसने उनमें से एक युवक से बातचीत छेड़ी, तो पता चला कि वे एक विख्यात नाटक कम्पनी के लोग हैं और मद्रास में नाटक खेलने के लिए जा रहे हैं।

३३

मुत्तय्यन कहाँ ?

पिछले अध्याय में वर्णित घटनाओं को हुए करीब दो मास बीत चुके थे।

तिरूपरन् कोविल के सबइन्सपेक्टर सर्वोत्तम शास्त्री एक दिन थके-थकाये मलिन मन के साथ घर लौटे, तो अन्दर से मधुर स्वर में यह गाना आ रहा था, "पिया बिन नाहीं चैन !" अगर शास्त्री जी के मन में उत्साह होता तो वह सीधे अन्दर जाते और खुद भी गाते और नाचने तक लग जाते। पर आज उनका मन खिन्न था। इसलिए अपने कमरे में गये, पगड़ी उतार कर खूंटी पर लटका दी और आरामकुर्सी पर धड़ाम से गिर पड़े।

शास्त्री जी की चिन्ता सकारण थी। उस दिन ज़िला पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने उनको खूब आड़े हाथों लिया था। उनकी बातों से ऐसा लगा कि अगर शास्त्री जी डाकू मुत्तय्यन को सजीव न पकड़ लाये या उसकी लाश को ही पेश न कर सके तो फिर उनकी नौकरी को ख़तरा हो जायेगा। सुपरिंटेंडेंट की बातों में आग बरसी थी।

इसमें सन्देह नहीं कि जब मुत्तय्यन तिरूपरन्कोविल की हवालात से बच कर भागा था, तब शुरू शुरू में शास्त्री जी ने उसको पकड़ने में अधिक तत्परता नहीं दिखायी थी। अभिरामी के प्रति उनके मन में जो वात्सल्य हो गया था, उसने मुत्तय्यन को गिरफ़्तार करने की उनकी व्यग्रता को ज़रा धीमा कर दिया था। इसके अलावा, मुत्तय्यन की कार्रवाइयाँ तीन सर्किल इन्सपेक्टरों के अधिकार-क्षेत्रों में हो रही थीं, इसलिए उसको गिरफ़्तार करने की ज़िम्मेदारी अकेले शास्त्री जी पर नहीं थी।

लेकिन अभी तीन महीने पहिले, मुत्तय्यन को गिरफ़्तार करने की स्पेशल ड्यूटी पर सर्वोत्तम शास्त्री को नियुक्त किया गया था। शास्त्री जी को यह बात पसंद तो नहीं आयी, लेकिन ऊपर की आज्ञा को टाल न सकने के कारण उन्होंने अनमने मन से यह काम संभाल लिया था।

बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जब से शास्त्री जी को इस स्पेशल काम पर लगाया गया, तब से मुत्तय्यन के चोरी-डकैती के कार्य भी अचानक बन्द हो गये। शास्त्री जी ने कोलिलडम नदी तट की चप्पा-चप्पा भूमि की ख़ाक छान डाली थी। जंगल, उपवन, झाड़-झंखाड़, यहाँ तक कि रेत व टीलों टीकरों तक को

उन्होंने नहीं छोड़ा था। फिर भी मुत्तय्यन का कहीं पता नहीं! शास्त्री जी को यहाँ तक शक होने लगा कि शायद वह कहीं कोल्लिडम के किसी मगर के पेट में तो नहीं चला गया।

यहाँ शास्त्री जी बिचारे इस तरह परेशान हो रहे थे और वहाँ ऊपर के अधिकारियों के मन में कुछ और ही शक घर करने लगा था। वह तो शास्त्री जी को ही सन्देह की निगाह से देखने लगे थे। अधिकारियों के पास बिना दस्तखत की कुछ चिट्ठियाँ भी पहुँची थीं जिन में यह शिकायत की गयी थी कि शास्त्री जी मुत्तय्यन की कार्रवाइयों में साथ दे रहे हैं। इस बात की जाँच करने ही के लिए सुपरिंटेंडेंट ने शास्त्री जी को इस स्पेशल ड्यूटी पर नियुक्त किया था। शास्त्री जी के ड्यूटी संभालते ही मुत्तय्यन की कार्रवाइयाँ भी बन्द हो गयीं, तो शास्त्री जी पर सुपरिंटेंडेंट का शक और बढ़ गया। आखिर उनका यह शक करना स्वाभाविक ही था न, कि शास्त्री जी ने मुत्तय्यन को सचेत करके उसकी कार्रवाइयाँ बंद करा दी होंगी?



*** ***

सच पूछो तो सर्वोत्तम शास्त्री इन तीन महीनों में काफ़ी व्यस्त रहे। कुरवन शोक्कन को उन्होंने गिरफ़्तार कर लिया था और उसके तीन साथियों को भी। उस खोंचेवाली को भी उन्होंने गिरफ़्तार कर डाला था, जो मुत्तय्यन को खाना दिया करती थी। ये सब इस समय 'सब-जेल' में थे। इन लोगों से पूछताछ करके शास्त्री जी ने लूट के माल का भी एक हिस्सा बरामद कर लिया था। लेकिन फिर भी मुत्तय्यन के बारे में उन लोगों से कुछ भी मालूम नहीं किया जा सका। आज भी सारा दिन वह इसी प्रयत्न में लगे रहे। कुरवन शोक्कन वगैरह को उन्होंने लालच

दिखलाया, धमकी दी और उन विशेष तरीकों से भी काम लिया जिनके लिए हमारी पुलिस काफ़ी मशहूर है। फिर भी कोई लाभ नहीं हुआ। आख़िर वे बिचारे बताते भी क्या, जब उनको मुत्तथ्यन के बारे में कुछ भी पता नहीं था ?

उधर सुपरिंटेंडेंट की झाड़। इधर पूछताछ में असफलता। शास्त्री जी का मन इससे बहुत ही हताश हो चुका था। यही कारण था कि घर लौटने ही वह थकावट के मारे चूर होकर आराम कुर्सी पर लेट गये थे।



कुछ देर बाद उनकी नज़र उस दिन के अख़बार पर पड़ी जो पास में मेज़

पर रक्खा था। उन्होंने अख़बार उठाया और कुछ अन्यमनस्कता के साथ उसके पन्ने पलटने लगे। अचानक उनकी नज़र एक मोटे शीर्षक पर पड़ी। न जाने क्यों, शास्त्री जी का मन उसकी तरफ़ आकृष्ट हुआ और वे बड़े ध्यान से शीर्षक के नीचे की पंक्तियाँ पढ़ने लगे। वह ख़बर नहीं, टिप्पणी थी, जो इस प्रकार थी :—

"मदुरा ओरिजनल मीनाक्षी सुन्दरेश्वर नाटक कंपनी वालों का प्रसिद्ध नाटक 'संगीत मनोरम' पिछले एक मास से यहाँ पर चल रहा है, फिर भी दर्शकों की भीड़ प्रतिदिन थियेटर में खचाखच भरी रहती है। हमारी राय में विख्यात मैसूर गुब्बी कम्पनी को भी इस कम्पनी वालों ने मात कर दिया है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि इस नाटक में चोर की भूमिका में अभिनय करने वाले कलाकार ने मद्रास वासियों के हृदय को मोह लिया है। कहानी के अनुसार नायिका मनोरम चोर से प्रेम नहीं करती। पर इस नाटक को देखते समय दर्शकों को आश्चर्य होता है कि यह कैसे संभव हो सकता है। जब चोर मंच पर आ जाता है तो दर्शकों को यह बात याद ही नहीं रहती कि हम केवल नाटक देख रहे हैं। बल्कि उन्हें भ्रम हो जाता है कि सचमुच ही चोर आ गया है।......"

इस टिप्पणी को पढ़ते समय शास्त्री जी के मुख पर सनसनी सी फैल गयी मालूम हो रही थी। ख़बर पढ़ चुकने पर वह कुछ देर गहरे विचार में निमग्न रहे। बाद में बड़ी जल्दी के साथ पुकार कर कहा, "मीनाक्षी! मीनाक्षी! यहाँ आओ तो!"

यह सुन कर उनकी धर्मपत्नी खाना बीच ही में छोड़ दौड़ी हुई आयीं।

"क्यों? क्या हुआ? चोर पकड़ा गया क्या? उसने आते आते पूछा।

शास्त्री जी इतने में ही फिर अख़बार में निमग्न हो गये थे और सिर उठाये बिना ही बोले, "नहीं नहीं! न चोर पकड़ा गया है न मोर। तुम जल्दी जल्दी दो कमीज़ों में सूटकेस डाल कर ले आओ तो!"

"हाँ हाँ। ज़रूर! मैं कमीज़ों में सूटकेस डाल कर लाती हूँ। इतने में आप भी बता दीजिए न, कि जूतों में पैर पहन कर ऐनक पर नाक लगाकर आख़िर जाना कहाँ है?"

"अरी भोली! यह भी नहीं जानती? तुम्हीं ने तो कहा था कि मद्रास में किसी चोर का ब्याह हो रहा है! वहीं जाना है मुझे भी।"

"अगर मेरी बहन को पता चलता कि उसके होने वाले दामाद को तुम चोर की उपाधि दे रहे हो, तो वह तुम्हें सस्ते में नहीं छोड़ती। ख़ैर! कुछ भी हो, मैंने पहले ही इरादा कर लिया था कि तुम्हें भी विवाह में लेकर ही जाना है। सामान सब बँधा-बँधाया तैयार है। बस, भोजन करने की देर है। लेकिन हाँ! तुम को

गाड़ी में बैठ कर आना होगा। कहीं यह हठ न ठान लेना कि गाड़ी मुझ पर चढ़ कर आये ! समझे न ?"

"वाह ! सचमुच तुम बड़ी समझदार हो। मैं तुम्हारी सी अक्ल कहाँ से लाऊँ ? उस के लिए तो मुझे कहीं चोरी करनी पड़ेगी !"

"हाँ हाँ ! चोर को पकड़ने की तमीज़ नहीं। तो कम से कम चोरी ही करो। चलो, जल्दी करो !"

इस तरह ये विनोदशील दम्पती मद्रास के लिए रवाना हुए।

३४

संगीत सतारम्

मद्रास में सर्वोत्तम शास्त्री की साली की पुत्री (भांजी) का विवाह संपन्न हुआ। एक ही दिन का समारोह था। रात को भोजन करने के बाद शास्त्री जी घूमने के लिए निकले। रास्ते में एक ट्राम, बिजली की बत्तियों की जगमगाहट के साथ जा रही थी। इस जगमगाहट के बीच में, ज्योतिमय अक्षरों में यह विज्ञापन आंखों को आकर्षित कर रहा था:—

"संगीत सतारम्"

हमारे नये सितारे को चोर की भूमिका में

—: देख कर आनन्द उठाइये :—

नाटक वालटाक्स थियेटर में चल रहा था। शास्त्री जी थियेटर पर पहुँचे तो देखा, जनता की भारी भीड़ पहले ही से जमा है। टिकटों के लिए काफ़ी धक्कम धक्का हो रहा था। शोरगुल असह्य था। पुलिस वाले हांथो में लाठी लिये, भीड़ को काबू में लाने के प्रयत्न में लगे हुए थे। थोड़ी ही देर पर टिकट घर के बाहर यह बोर्ड टांग दिया गया—"सारी सीटें भर गयीं।" इससे बहुत से लोग निराश वापस लौटे।

शास्त्री जी कुछ देरतक यह तमाशा देखते रहे और बाद में थियेटर के अन्दर जाकर अपनी सीट पर बैठे जिसे वह पहले रिज़र्व करा चुके थे। शुरू में नाटक बहुत ही मामूली था शास्त्री जी को आश्चर्य हुआ कि ऐसे तीसरे दर्जे के नाटक के पीछे लोग क्यों इतने पागल हुए जा रहे हैं ?

मंच पर जब चोर का प्रवेश हुआ, तो शास्त्री जी और सब बातों को भूल गये। शिकार को दूर पर देखने पर शिकारी कुत्ता जिस तरह बौखला उठता है, ठीक उसी तरह वह बौखला उठे। लेकिन शिकार तक पहुँचने में मानों एक ऊँची दीवार उन्हें रोक रही थी। इस कारण शास्त्री जी बेसब्र होकर छटपटाने लगे।

उनकी अन्तरात्मा कह रही थी कि चोर की भूमिका में अभिनय करने वाला व्यक्ति और कोई नहीं, मुत्तय्यन ही है। परन्तु इसकी पुष्टि कैसे की जाय ? इसके लिए उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। मुत्तय्यन को पकड़ने में उनके लिए एक भारी अड़चन यह थी कि उन्होंने कभी मुत्तय्यन को आमने-सामने नहीं देखा था।

सुनी-सुनाई बातों के आधारपर केवल अनुमान ही लगाया जा सकता था। निश्चित रूप से कैसे बताया जाय ?

*** *** ***

जिन दो पुलिस वालों की ड्यूटी के समय मुत्तय्यन हवालात से बच निकला था, उनको असावधान रहने के अभियोग में नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया था। पर शास्त्री जी को यह ठीक नहीं जंचा। वे ही पुलिसमैन ऐसे थे जिन्होंने मुत्तय्यन को निकट से देखा था। इस लिए मुत्तय्यन को गिरफ्तार करने में उनकी मदद को शास्त्री जी ने बहुत ही आवश्यक समझा। अतएव उनके बर्खास्त किये जाने के बाद भी वह उनसे काम लेते थे। उन्होंने उनको यहां तक आश्वासन दे रक्खा था कि यदि उनकी सहायता से मुत्तय्यन पकड़ा जाय तो उन्हें फिर से नौकरी पर लगवायेंगे।

इनमें से एक पुलिस वाले का साला मद्रास में रहता था। उसने कहीं न कहीं नौकरी दिलाने का आश्वासन दिया था, जिस पर वह पुलिसमैन मद्रास गया था। मद्रास में एक दिन उसने "संगीत सतारम्" नाटक देखा था। चोर वेषधारी अभिनेता को देखते ही उसे शक हुआ कि कहीं वह मुत्तय्यन तो नहीं है ? नाटक के अन्त तक उसका सन्देह पक्का हो गया। वह तुरन्त तिरूपरन कोविल लौटा और शास्त्री जी को सारा हाल बताया।

पहले शास्त्री जी को उसकी बातों पर ज़रा भी विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने पुलिसवाले के भोलेपन की खूब खिल्ली उड़ायी। बोले, "तुम्हारे जैसे चार पुलिसवाले होते, तो मद्रास भर में कोई सज्जन नहीं बचता!"

इस हंसी, मज़ाक के बावजूद, शास्त्री के भी मन में सन्देह का बीज पड़ गया था। उधर दो महीनों से आस-पास में कहीं भी मुत्तय्यन की कार्रवाइयां नहीं होती थीं इससे सन्देह का वह बीज धीरे धीरे अंकुरित होने लगा। पर समझ में नहीं आया कि ऐसे निराधार एवं उपहासास्पद सन्देह के आधार पर कैसे कार्रवाई की जाय ?

ठीक इसी समय मद्रास में उनकी साली के घर ब्याह होने की सूचना उन्हें मिली। उन्होंने सोचा कि इस बहाने मद्रास जाकर खुद ही क्यों न सारी बात की थाह लगा आऊं ? जब उनकी बुद्धि में और सहज ज्ञान में इस तरह संघर्ष चल रहा था, तभी संयोगवश अखबार में उस नाटक की समालोचना उन्होंने पढ़ी थी। उन्होंने कहा, जबतक इस नाटक को स्वयं एक बार न देख लूं तबतक मेरे मन को चैन नहीं मिलेगा। यही सोचकर, अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के इरादे से वह मद्रास चल पड़े थे।

मंचपर जब से चोर का प्रवेश हुआ, तब से उनकी परेशानी हर घड़ी बढ़ती

गयी। अक्सर हम निजी अनुभव में देखते हैं—कोई बात हम याद करना चाहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह याद आ ही गयी। लेकिन याद आते आते रह जाती है। ऐसा अनुभव हर एक के जीवन में कई बार हुआ करता है। सर्वोत्तम शास्त्री अब ऐसी ही परेशानी में पड़े तड़प रहे थे।

"मुत्तय्यन यही है। इसमें सन्देह नहीं। लेकिन इसकी पुष्टि कैसे की जाय? एक उपाय है, अवश्य। पर वह क्या है?" शास्त्री जी ने सर खुजलाया। होंठ चबाया। माथा दबाया। और न जाने क्या क्या किया। भाग्यवश सभी दर्शकगण नाटक देखने में तल्लीन थे, इसलिए किसी ने शास्त्री जी की तरफ नहीं देखा। अगर किसी ने उनकी हरकतें देखी होतीं, तो निश्चय ही उनको पागल समझा होता।

*** *** ***

नाटक का सबसे मनोरंजक अंश सतारम और चोर के मिलन का प्रसंग था। सतारम की भूमिका में अभिनय करने वाले कलाकार का मेक-अप और हावभाव हू-बहू स्त्री-सदृश था। यदि नाटक के विज्ञापन में अभिनेता का नाम न दिया होता तो यह विश्वास नहीं हो सकता था कि वह स्त्री नहीं, पुरुष है। उसका रूप, भाव-भंगियां, रंग-ढंग, बातचीत, सबमें स्त्रैणता टपक रही थी। उसके हाथ के एक एक इशारे में, शरीर की लचक में, भौंहों के तनाव में, चितवन की चंचलता में स्त्री-सुलभ लावण्य एवं मृदुलता मोहक रूप से भरी थी।

नकाबपोश चोर को देखते ही सतारम भय के मारे सिहर उठी। तब उसका चेहरा पीला पड़ गया, आंखें सहम गयीं, पैर लड़खड़ाने लगे, शरीर में कंपकंपी हुई। उस समय उसे देखकर हठात् उस हरिणी की याद हो आती थी जो बाघ को सामने पाकर भय-विह्वल हो उठी हो।

"हाय, हाय! कौन हो तुम?" सतारम ने कांपते स्वर में पूछा।

"मैं? मैं हूं आदमी!" कहकर चोर हंस पड़ा।

उसकी हंसी से सतारम को धीरज बंध गया और उसने पूछा, "तो तुम चोर तो नहीं हो न?"

"मैं चोर नहीं हूं, प्यारी! मैं हूँ डाकू!"

"डाकू? हाय रे! तुम्हें देखकर मुझे डर लगता है।" सतारम बिलख उठी।

तब चोर ने हलके तर्ज पर एक गीत गाना शुरू कर दिया :—

"प्यारी, डरी क्यों, डरी क्यों?"

गीत काफी लम्बा-चौड़ा था। चोर ने भी अपनी सारी चतुराई उसके ज़रिये प्रदर्शित कर दी। उसने अपने वंश की महानता का बखान किया और कहा कि उस के वंश का आदि पुरुष श्री कृष्ण नामका माखन-चोर था। "ऐसे वंश में उत्पन्न

वीर-शूर-चोर हूँ मैं । अब तुम्हारा प्रेमी बनने चला हूं !"—इस सभ्य घोषणा के साथ चोर ने अपना गाना समाप्त किया। गाना समाप्त करते ही उसने नकाब ज़रा हटाकर सतारम को अपना चेहरा दिखलाया।

तब सतारम आर्त स्वर में चिल्ला उठी और मूर्छित होकर गिर पड़ी। लेकिन दर्शक-वृन्द की तो खुशी का ठिकाना नहीं रहा। सबने तालियां बजायीं और हर्ष-ध्वनि की। बहुतसों ने पुनः पुनः की आवाजें लगाईं। लोग समझते थे कि नकाब के पीछे भयानक चेहरा होगा। इसलिए जब मुत्तय्यन का सुन्दर, सौम्य मुख नकाब के अन्दर से प्रकट हुआ, तो दर्शकों के उत्साह का पारावार न रहा।

सर्वोत्तम शास्त्री का भी मुख तब चमक उठा। पर उसका कारण कुछ और ही था। ठीक उसी समय, जब चोर ने नकाब हटाया, शास्त्री जी को भी अपने सन्देह का निवारण करने का मार्ग सूझ गया। उनके होठों से यह शब्द बार बार निकल रहा था, "अभिरामी, अभिरामी।"

३५
शारदामणि बहन

रातभर सर्वोत्तम शास्त्री को नींद नहीं आयी । किस्से-कहानियों में वर्णित प्रेमियों की तरह उन्होंने तारे गिन-गिन कर सारी रात बितायी। सुबह होते ही पत्नी को बुलाकर कहा, "रात को मैंने एक नाटक देखा था । इतना कमाल का नाटक मैंने ज़िन्दगी में पहले कभी नहीं देखा । आज रात को तुम्हें भी साथ लेकर जाने का इरादा है । चलोगी ?"

"जब तुम खुद ही मुझ अनाथ पर ऐसी कृपा दृष्टि डालने लगे हो तो फिर मुझे एतराज़ क्या हो सकता है ? नेकी और पूछ पूछ ? ख़ुशी से चलूंगी । लेकिन हां । आज उस लड़की अभिरामी को जाकर देखने का प्रोग्राम था न ?" मीनाक्षी ने कहा ।

"वह भी प्रोग्राम पूरा कर लेंगे और यदि तुम चाहो तो उसे भी नाटक देखने ले चलेंगे । क्यों ? ठीक है न ?" शास्त्री जी ने पूछा ।

"वाह ! तुमने तो मेरे मुंह से बात छीन ली । लेकिन तुम्हारी बहन शारदामणि न जाने क्या कह बैठें ? सनकी जो ठहरीं, इन्कार कर दें ।"

"तुम्हारी बात ठीक है । पर हम उनसे क्यों करें नाटक की चर्चा ? कह देंगे, एक दिन के लिए अभिरामी को घर ले जाते हैं । कल फिर लाकर छोड़ देंगे !"

"धोका देने में तो तुम उस्ताद हो । आख़िर पुलिस ही तो ठहरे !"

उस दिन शास्त्री जी दिन भर व्यस्त रहे । थियेटर में दस-पन्द्रह कतारों के पीछे तीन सीटें रिजर्व करायीं । टिकट बाबू ने कहा कि अगली पंक्तियों में कई सीटें खाली हैं । लेकिन शास्त्री जी ने पीछे की ही सीटें पसंद कीं ।

इसके बाद वह पुलिस कमिश्नर के दफ़्तर गये और बड़ी देर तक कमिश्नर से बातचीत करते रहे । और भी न जाने क्या क्या काम करके घर लौटे ।

शाम को शास्त्री जी अपनी पत्नी के साथ सरस्वती विद्यालय गये । विद्यालय की अध्यक्षा शारदामणि देवी शास्त्री जी की चचेरी बहन थीं । उनके पिता हाईकोर्ट के जज रह चुके थे । दुर्भाग्य वश शारदामणि का विवाह उतना संतोषप्रद नहीं रहा । विवाह के दो तीन वर्ष बाद उनका पति किसी स्त्री को साथ लेकर सिंगापुर भाग गया था और फिर उसने लौटने का नाम तक नहीं लिया ।

ऐसे भारी दुर्भाग्य से पीड़ित अपनी लड़की के लिए उनके पिता काफ़ी संपत्ति छोड़ गये थे। धीरे-धीरे शारदामणि भी अपना दुःख भूल गयीं और समाज सेवा के कार्यों में लग गईं। सेवा की भावना से प्रेरित होकर कुछ अन्य महिलाओं के साथ मिल कर उन्होंने इस सरस्वती विद्यालय की स्थापना की थी। धीरे-धीरे औरों की दिलचस्पी घटती गयी और वे एक एक करके उसको छोड़ कर खिसक गयीं। फलतः विद्यालय का सारा दायित्व शारदामणि के कन्धों पर आ पड़ा।

जब से ऐसा हुआ, विद्यालय के प्रति शारदामणि की दिलचस्पी भी दस-गुनी बढ़ गयी। उनका संसार ही एक तरह से उस विद्यालय के अन्दर समा गया था। अगर कहीं से सुना कि कोई गायक बहुत सुन्दर गाते हैं, तो तुरन्त प्रश्न करतीं, "अच्छा, वह हमारे विद्यालय के लिए एक बेनिफिट पर्फ़ार्मेन्स (सहायता-मुजरा) कर सकते हैं ?" अगर किसी नेता के मद्रास आने की सूचना मिल जाय तो उनको विद्यालय में बुलाने का प्रबन्ध करतीं। यदि पता चलता कि कोई वकील बहुत भारी रकम कमा रहे हैं तो फ़ौरन यही विचार करतीं कि उनसे विद्यालय के लिए चन्दा कैसे लिया जाय ! अगर किसी युवती ने प्रथम श्रेणी में बी. ए. पास किया तो उसे विद्यालय की अध्यापिका बनाने की सोचतीं।

शास्त्री जी अपनी बहन के इस स्वभाव से भली भाँति परिचित थे, इस-लिए बातचीत शुरू होते ही उन्होंने कहा, "शारदा ! जब कभी मैं तुम्हारे विद्यालय को देखता हूं, अपने निरर्थक जीवन पर मुझे गुस्सा आ जाता है। जी में आता है कि हम भी क्या जीवन बिता रहे हैं, जो ऐसी महान् संस्था के लिए कुछ भी नहीं कर पाते।"

"ऐसी बात क्यों करते हो भैया ? तुमने कुछ कम सहायता पहुँचाई है क्या ? अभिरामी को तुमने विद्यालय में भर्ती कराया, सो भी तो ख़ासी अच्छी सहायता है !" शारदामणि बोलीं।

"लेकिन ऐसी सहायता तो और भी कितने ही लोग करने के लिए तैयार होंगे। आख़िर लड़कियों को भर्ती कराना कौनसी बड़ी बात है ?" मीनाक्षी ने कहा।

"यह बात नहीं। अभिरामी जैसी समझदार लड़की को भेज कर तुम लोगों ने सचमुच ही बड़ी सहायता की है।"

"अच्छा, वह होशियार है न ?"

"बड़ी ही होशियार। विद्यालय भर में उसका पहला नंबर है। अब हम विद्यालय की लड़कियों को लेकर एक नाटक खेलने की तैयारी कर रहे हैं। उसके लिए सभी गाने उसी ने लिखे हैं। और स्वर भी उसीने बैठाया है। वाह वाह !

कमाल कर दिया है उसने ! गाने बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं ।"

"यह सुन कर बड़ी खुशी हुई । बस, हमारी कामना भी यही है कि वह किसी तरह सुखी रहे । हाँ, आज उसे हमारे साथ जाने दो न ? घर ले जाते हैं और कल फिर यहीं लाकर छोड़ देते हैं," शास्त्री जी ने कहा ।

शारदामणि ने यह सुझाव तुरन्त मान लिया और अभिरामी को बुलाने के लिए एक लड़की को अन्दर भेजा । बाद में बोलीं, "उस लड़की में एक यही कठिनाई है कि कभी कभी अचानक ही अधीर हो उठती है और बग़ीचे के किसी कोने में बैठ कर आँसू बहाने लग जाती है । ऐसे मौकों पर उसे समझाना कठिन हो जाता है । हाँ, उसके भाई का क्या हुआ ?"

"अभी वह पकड़ा नहीं गया," शास्त्री जी ने कहा ।

"तो क्या हुआ ? अब न सही, फिर सही । तुम लोग तो उसको गिरफ़्तार करोगे ही और जेल भेजोगे ही । बस, पुलिस विभाग पर चार चाँद लग जायेंगे ।..."

"न पकड़ें तो क्या करें ? अगर चोरों को पकड़ कर जेल न भेजा जाय तो समाज का काम चले कैसे ?"

"वही तो ! वही तो ! लेकिन अगर सभी चोरों को पकड़ कर जेल भेजना ही है, तो पहले इस शहर के सभी वकीलों, हाईकोर्ट के जजों, अधिकारियों और धारासभा के सदस्यों को न जेल में बन्द करना चाहिए ? यही क्यों ? मुझे और तुम्हें भी तो जेल जाना पड़ेगा ! महात्मा गाँधी क्या कहते हैं ? वह कहते हैं, अपने हाथ की मेहनत से जो कुछ कमाया जाय उसके सिवा बाकी सब सम्पत्ति चोरी का माल है । अगर इस दृष्टि से देखा जाय तो वे सब लोग चोर ही हैं न, जो अब ऊँचे ऊँचे महलों में रहते है और मोटरों में सवारी करते हैं......?"

"शारदा, तुम तो एक बहुत बड़े सिद्धान्त को छेड़ बैठीं । इस समय वह सब व्यवहार में थोड़े ही आ सकता है ! जब वह अमल में आयेगा तब देखा जायेगा । लेकिन हाँ, तुम्हारी यह बात मैं ज़रूर मान लेता हूँ कि प्रायः जेल जाने वाले चोरों से जेल के बाहर स्वच्छन्द घूमने वाले चोरों की संख्या बहुत अधिक है । एक उदाहरण सुनो । हमारे यहाँ एक महानुभाव हैं । शट्टनाथ उडैयार उनका नाम है । राय साहब उडैयार के नाम से प्रसिद्ध हैं । सब लोग जानते हैं कि वह चुंगी के चोर हैं । यानी पाण्डिचेरी से और कारैकाल से बिना चुंगी दिये माल लाना ही उनका पेशा है । बस, यही काम करके उन्होंने लाखों रुपया बटोर लिया है । फिर भी अब तक उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जा सकी है । सबसे पहले पुलिस को अपनी मुट्ठी में कर लेते हैं । अगर वह नहीं हो सका—किसी सत्यनिष्ठ पुलिस अधिकारी ने उनके विरुद्ध कार्रवाई करनी चाही—तो वह भी बेकार हो जाता है,

क्योंकि मैजिस्ट्रेट लोग भी उनकी जेब में हैं। अगर कोई मैजिस्ट्रेट भी सत्यप्रिय निकला, तो भी उनका कुछ नहीं बिगड़ता। होम मेंबर (गृहमंत्री) तक उनकी पहुँच है, इसलिए मैजिस्ट्रेट का फैसला बात की बात में खारिज कर दिया जाता है, और बुद्धू बनता है पुलिस विभाग। अभी दो मास पहले एक घटना हुई। मोटर में बिना चुंगी दिये माल लानेवाले कुछ लोग पकड़े गये। उस मामले में उडैयार साहब के शरीक होने के काफ़ी सबूत थे। फिर भी उससे कुछ नहीं बना। उडैयार साहब की शानो-शौक़त और इज्जत-आबरू ज्यों की त्यों कायम है। बल्कि यह कहना चाहिये कि और भी बढ़ गई है, क्योंकि समाचार मिला कि उनको आनरेरी मैजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किया गया है। अब तुम्हीं बताओ, क्या किया जाय ?"

"बताना क्या है ? तुम एक उडैयार की बात करते हो। हमारे तो समाज में उडैयार-सरीखे चोर सैकड़ों-हजारों की संख्या में भरे पड़े हैं। बस, इस सारी समस्या का आखिर एक ही हल है। वह यही कि हर एक व्यक्ति को अपनी ही मेहनत की कमाई खानी चाहिए। मेहनत करे कोई और मौज उड़ाये कोई, यह प्रणाली ख़तम हो जानी चाहिये। इसी उद्देश्य से हमारे विद्यालय में हर एक लड़की को कोई न कोई दस्तकारी सिखायी जाती है।...अरे ! तुम लोगों ने कभी देखा नहीं उनका काम ? चलो दिखलाती हूँ !" यह कह कर शारदामणि बहन शास्त्री जी और उनकी धर्मपत्नी को विद्यालय दिखलाने ले गयीं।

३६

गीत और आँसू

अभिरामी को आखिरी बार देखे हमें पूरा एक वर्ष हो गया है न ? हमने उसको तब देखा था, जब वह तिरूपरन कोविल से मीनाक्षी के साथ मद्रास जा रही थी। अब हम सरस्वती विद्यालय की चहार दीवारी से घिरे विशाल बग़ीचे में, फूलों से लदे प्रवालमालिलका (पारिजात) के पेड़ के नीचे उसे देखते हैं। वह एक सहेली के साथ बैठी हुई है जो उसी की उमर की लगती है। उसको पहिचानना भी क्षण भर के लिए हमें कठिन मालूम हो रहा है। इससे पहले जब हमने देखा था, वह निरी बच्ची थी। अब वह पूरी युवती बन गयी है। पहले देहाती लड़कियों की तरह लहँगा पहने, चुन्नी ओढ़े रहती थी। पर अब कालिज की छात्राओं की तरह एक शानदार साड़ी पहने हुए है। केशों को उसने एक तरफ माँग बना कर गूंथ रक्खा है। हाँ, उसके मुख पर वही चुलबुलापन अब भी पहले की ही तरह विद्यमान है। आँखों में वही कौतूहल भरी चंचलता अब भी दिखायी देती है।

जहाँ दोनों सखियाँ बैठी थीं, उसके थोड़ी दूर पर एक कुआँ था और कुएँ के आसपास कुछ सुपारी के पेड़ थे। उनमें से एक पेड़ पर बैठी, कोई कोयलिया मधुर स्वर में कूक रही थी।

"अभिरामी, बिलहरी राग में तुम एक कोयल का गीत गाया करती थीं, ज़रा गाकर सुनाओ तो !" ललिता ने कहा।

अभिरामी ने गाना शुरू किया और तन्मय होकर गाया।

अचानक हवा ज़रा तेज़ चली तो फूलों से लदे उस घने पेड़ पर से फूल बरस पड़े और अभिरामी पर तथा उसकी सहेली पर गिरे।

"देखा, अभिरामी ! तुम्हारे ऊपर पुष्पवर्षा हो रही है ! तुम्हारे गाने पर मानों देवता लोग भी मुग्ध हो गये और फूल बरसा रहे हैं !" ललिता ने कहा।

कहते-कहते ललिता ने देखा, अभिरामी की आँखें सजल हैं। यह देखकर उसका जी भर आया। बोली, "यह क्या अभिरामी ? तुम्हारी आँखों में ये आँसू क्यों ? इतने आर्त स्वर में पुकारने पर भी प्रेमी नहीं आया, इसलिए ?" ललिता के स्वर में विनोद एवं चिन्ता का मधुर मिश्रण था।

"ललिता ! यह गीत मैंने तब रचा था, जब मैं तिरूपरन कोविल में अपने

भाई के साथ सुखी जीवन बिताती था। भैया को यह गीत बहुत पसंद था। वह बार-बार इसे सुनाने के लिए कहता और सुनकर खुश होता। आखिरी दिन भी...'' आगे उससे कुछ कहते नहीं बना। सिसकियाँ बंध गयी।



''अभिरामी! ज़रा सुनो तो! कुछ आवाज़ सी आई पास में। वह क्या?'' ललिता ने चारों तरफ़ घबराहट के साथ देखा। पर उसे कुछ दिखाई नहीं दिया।

''मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि और भी कोई सिसक-सिसक कर रो रहा है। हो सकता है, मेरा भ्रम हो। या शायद पास की सड़क पर कोई रोता जा रहा

होगा," ललिता बोली।

न जाने क्यों उस दिन अभिरामी के मन में अतीत की स्मृतियाँ उभर उठीं। "ललिता ! मैं बड़ी ही निर्मम हूँ। यहाँ मैं खुशी मना रही हूँ। हँसती-गाती रहती हूँ। लेकिन न जाने भैया अब किस जंगल में पड़ा है, कैसी मुसीबतें झेल रहा है। हा भैया मेरे ! तुमने कभी किसी का बुरा नहीं किया था। तुम्हारी सारी मुसीबत की जड़ मैं हूँ। लेकिन मैं यहाँ सुखी हूँ जबकि तुम कष्ट झेल रहे हो। हा ईश्वर ! यह कैसा अन्याय है ?" अश्रुभरे स्वर में अभिरामी यों विलाप कर उठी।

"अभिरामी बहन ! तुम नाहक अपने को कोस रही हो। सब अपनी-अपनी किस्मत होती है। तुम्हारे भैया के भाग्य में शायद कष्ट झेलना ही बदा है। जब एक आदमी चोरी-डकैती में उतारू हो गया, तो फिर उसके बारे में चिन्ता करने से क्या लाभ ?" ललिता बोली।

"तुम क्या जानो ललिता ! मेरा भैया कहीं चोर हो सकता है ? कहीं वह डकैती कर सकता है ? हरगिज़ नहीं। सब झूठ है। मैं हूँ निगोड़ी, कलमुँही ! मेरा ही दुर्भाग्य भैया को परेशान कर रहा है। वरना......"

अभिरामी के वाक्य पूरा करने से पहले ही किसी के बुलाने की आवाज आयी, "अभिरामी ! अभिरामी !" कुछ ही मिनट बाद एक लड़की आयी और बोली, "अभिरामी ! यहाँ क्या कर रही हो ? सारे बगीचे में तुम्हें ढूंढती आ रही हूँ। तिरूपरन कोविल से कुछ लोग तुमसे मिलने आये हैं। बहन जी तुम्हें बुला रही हैं।"

शास्त्री-दम्पती के साथ अभिरामी की मुलाक़ात का विस्तृत वर्णन करना अनावश्यक है। काफ़ी अर्से के बाद अपने गाँव के लोगों से मिलकर अभिरामी को खुशी तो जरूर हुई। वह उनके साथ खुशी-खुशी गयी। नाटक देखने के लिए भी खुशी-खुशी तैयार हो गयी।

शास्त्री जी ने पहले ही तीन सीटें रिज़र्व करा रक्खी थीं। रात को तीनों वहाँ जाकर बैठे।

बैठते ही शास्त्री जी ने चारों तरफ़ नज़र दौड़ायी। उनके पीछे दो तीन पंक्तियों के बाद चार-पाँच व्यक्ति साथ साथ बैठे थे। इशारों से शास्त्री जी समझ गये कि वे पुलिस के आदमी हैं।

आरंभ से ही अभिरामी बड़े कौतूहल के साथ नाटक को देख रही थी। जब से मंच पर चोर का प्रवेश हुआ तब से वह मंत्र मुग्ध सी होकर एक टक देखने लगी। बीच बीच में उसके शरीर में न जाने क्यों, कंपकंपी सी होने लगती। तब वह शास्त्री जी की पत्नी को ज़ोर से पकड़ कर सहारा ले लेती थी।

३७

कमलपति

"आँखें सबको देखती हैं। कान सब की बातें सुनते हैं। चाहे कुछ मतलब हो या न हो, मुँह सबसे बातें करता है। लेकिन अमुक व्यक्ति को देख कर आँखें इतनी सुखी होती हैं जितनी कि और किसी को देखने से नहीं होतीं। उनकी बातें चाहे मामूली ही क्यों न हों, उनका स्वर विशेष मधुर न भी हो, तो भी कानों को उनकी बातों में देवामृत जैसी मिठास प्राप्त होती है। उनके साथ बातें करते समय जीभ लड़खड़ाती है, मुँह तुतलाता है। ये सब प्रेम के लक्षण हैं। पर यदि यह पूछा जाय कि यह प्रेम कैसे पैदा होता है, तो उसका उत्तर मनुष्यों की पहुँच के बाहर है, वह दैवी रहस्य है।"

"लैला-मजनूँ" कहानी के लेखक श्री व. वे. सु. अय्यर, प्रेम की व्याख्या करते हुए ये शब्द कह गए हैं। यह व्याख्या प्रेम पर ही नहीं, बल्कि कुछ हद तक स्नेह एवं मैत्री पर भी लागू होती है। कुछ व्यक्तियों के साथ जीवन भर का परिचय होने पर भी हार्दिक सौहार्द नहीं हो पाता। जबकि कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनको पहली बार देखते ही हम पसंद करने लग जाते हैं। उनमें हर तरह की खामियाँ-कमज़ोरियाँ होने पर भी हम परवाह नहीं करते। उनकी हर कमज़ोरी का कोई न कोई समाधान ढूँढने की भी कोशिश करते हैं। कोई बड़ा ही बदसूरत हो सकता है। लेकिन अगर उस पर हमारा जी आ गया तो मन में कहते हैं, "चेहरा बदसूरत हुआ तो क्या? गुण ही तो प्रधान होते हैं। अहा! कैसा शान्त स्वभाव, कैसी नम्रता!..." बस, इसी तर्क में मित्र की कुरूपता को बिसार देते हैं और खुश होते हैं। कोई निरक्षर-चूड़ामणि हो सकता है। पर यदि वह हमें पसंद आ गया, तो उसकी निरक्षरता हमारी-उसकी मित्रता में बाधक नहीं बनती। हम कहते हैं, "अरे, भाड़ में जाय पण्डिताई! पढ़ने ही से कोई समझदार थोड़े ही हो जाता है? सच पूछो तो पुस्तकीय पण्डित लोग ही अक्सर निरे मूर्ख साबित होते हैं। लेकिन इनको देखो! कैसी अद्भुत सूझ है! कैसी हाज़िर-जवाबी! कमाल है!"

ऐसी मित्रता का आखिर रहस्य ही क्या है? कुछ लोग कैसे पल भर में जीवन भर के साथी बन जाते हैं? उनसे मिलने-जुलने की, बातचीत करने की, उतनी उत्कट इच्छा क्यों होती है? मन के अन्तरंग में दबी हुई आशा-अभिलाषाओं

और विश्वासों का सारा हाल उनको बताने के लिए हम क्यों लालायित हो उठते हैं ? "पिछले जन्म का सम्बन्ध" या "जनम-जनम का साथ" कह कर ही इसका कारण बताया जा सकता है ।

मुत्तय्यन और कमलपति की मैत्री इसी श्रेणी की थी । कमलपति मदुरा ओरिजनल मीनाक्षी नाटक कम्पनी का सुप्रसिद्ध 'स्त्री पार्ट' अभिनेता था । मोटर दुर्घटना से बच कर मद्रास जाते समय रेल में पहली बार मुत्तय्यन की उसके साथ मुलाक़ात हुई थी । पहली ही मुलाक़ात में दोनों का एक दूसरे के प्रति स्नेह हो गया था । कमलपति के ही आग्रह पर मुत्तय्यन को नाटक-कंपनी में नौकरी मिली थी ।

कुछ ही दिनों के अन्दर उन दोनों की मित्रता इतनी बढ़ गयी कि एक दूसरे को मिनट भर के लिए भी छोड़ नहीं सकते थे । एक दिन मुत्तय्यन ने अपनी सारी कहानी कमलपति को सुनायी । समुद्र पार जाने का अपना इरादा और उससे पहले अभिरामी से एक बार मिलने की अपनी इच्छा उसको बतायी । कमलपति ने उसे सहायता का वचन दिया और कहा कि नाटक-कंपनी शीघ्र ही सिंगापुर जाने वाली है । तब मुत्तय्यन भी उसके साथ साथ सिंगापुर जा सकता है ।

इसके बाद कमलपति ने मद्रास के हर एक महिला-विद्यालय की सैर शुरू की । प्रत्येक विद्यालय में वह यही कहानी सुनाता था कि "मेरी एक विधवा बहन है । उसे किसी महिला-विद्यालय में भर्ती कराना चाहता हूँ ।" साथ ही वह हर महिला-विद्यालय के नाटकों-समारोहों में भी अक्सर जाया करता था । कहने की आवश्यकता नहीं कि अभिरामी का पता लगाना ही उसका उद्देश्य था । इस तरह घूमते-घूमते वह आख़िर सरस्वती विद्यालय में भी पहुँचा और बहन शारदामणि से बातें कर रहा था कि इतने में अभिरामी वहाँ आयी । उसका चेहरा देखकर कमलपति ने अनुमान लगा लिया कि वही मुत्तय्यन की बहन होगी । शारदामणि ने जब उसे अभिरामी कह कर पुकारा, उसका



रहा सहा सन्देह भी दूर हो गया । ख़ुशी ख़ुशी लौट चला और मुत्तय्यन से बोला,

"देखो ! तुम्हारी बहन का पता आखिर लगा ही लिया !" साथ ही धीमे स्वर में यह भी कहा, "अपनी प्रेमिका का भी मैंने पता लगा लिया !"

उसका पहला वाक्य सुन कर मुत्तय्यन इतना गद्‌गद हो उठा कि उसके दूसरे वाक्य को उसने सुना ही नहीं।

इसके बाद दोनों आपस में सलाह करने लगे कि मुत्तय्यन अभिरामी को कैसे देखे। अगर वह अभिरामी के सामने जाय तो वह "भैया" कह कर चिल्ला उठेगी।



उससे खतरा हो सकता है। अगर कमलपति उसे साथ लिवा लाना चाहे, तो वह भी

संभव नहीं हो सकता था। एक पराये आदमी के साथ अभिरामी को भेजने पर विद्यालय की अध्यक्षा कैसे राजी हो सकती थीं? यदि वह मान भी जायं, तो भी अभिरामी सहमत कैसे होगी?

दोनों मित्रों ने बहुत दिमाग़ लड़ाये कई-कई उपाय सोचे। परन्तु हर उपाय में कोई न कोई कमी निकल आती थ

मुत्तय्यन ने चाहा कि अभिरामी के विद्यालय के आस-पास एक बार चक्कर तो काट आऊँ। पर कमलपति ने उसे रोक दिया। फिर भी मुत्तय्यन की इच्छा दिन पर दिन बढ़ती ही गयी। आख़िर उससे रहा नहीं गया। वह कमलपति से कहे बिना ही एक दिन निकल पड़ा।

*** *** ***

उस दिन वापस आते ही मुत्तय्यन कमलपति को जल्दी जल्दी एकान्त में ले गया और बोला, "कमल! मैंने अभिरामी को देख लिया!" कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं।

"अरे रे! यह क्या किया तुमने? ऐसा नहीं करना चाहिए था," कमलपति चिन्तित स्वर में बोला।

"नहीं कमल! अच्छा हुआ मैंने आज उसे देख लिया। आगे ईश्वर जाने उसे फिर देखने का मौका मिलेगा या नहीं," मुत्तय्यन ने कहा।

इसके बाद उसने शाम की सारी घटना कमलपति को सुनाई—"अभिरामी के विद्यालय को कम से कम दूर से ही देखने की मुझे इच्छा हुई तो मैं तुम्हें बताये बिना ही चल दिया। विद्यालय की चहारदीवारी के साथ-साथ जा रहा था कि अचानक अभिरामी के गाने की आवाज आई। क्षण भर के लिए मैं अवाक् खड़ा रह गया। फिर दीवार के ऊपर से झाँक कर देखा, तो वहाँ प्रवाल मल्लिका (पारिजात) के पेड़ के नीचे अभिरामी एक सहेली के साथ बैठी दिखाई दी। बस, मैं वहाँ से आगे नहीं जा सका। उसी को देखता हुआ खड़ा रह गया। वह अपनी सहेली से कुछ कह रही थी। उसकी बातचीत के कुछ अंश मेरे कानों में पड़े—"कमल! सुन कर मैं मुग्ध हो गया। मेरे मन का सन्ताप आज ही जरा-सा शान्त हुआ। मैंने अभिरामी को देख लिया। यह भी जान लिया कि वह मुझे सदा याद कर रही है। चोर समझ कर मुझ से घृणा नहीं करती। मेरे प्रति उसके प्रेम में जरा भी अन्तर नहीं आया है। बस, अब मुझे संसार में किस बात की कमी है?......"

"कल्याणी को छोड़ कर?" कमलपति बात काट कर बोला।

मुत्तय्यन ने लंबी साँस ली। फिर कमलपति के दोनों हाथ पकड़ कर बोला, "कमल! तुम्हें एक बात का वचन देना होगा।"

"एक का क्यों ? जितने चाहो, वचन ले लो मुझ से !"

"देखो, कृपा करके इस समय मजाक न करो। कमल ! किस्से-कहानियों में हम पढ़ते हैं कि उत्पात होने से पहले बाँई आँख फड़कती है, या बाँई भुजा फड़क उठती है ! मुझे ऐसा तो कुछ नहीं हो रहा है। पर इतना मेरा मन अवश्य कह रहा है कि कोई न कोई उत्पात निश्चय ही होने वाला है। यह सुनो ! अभिरामी और उसकी सहेली जब बातें कर रही थीं, तब अचानक एक लड़की ने आकर कहा कि तिरूपरन कोविल से कुछ लोग अभिरामी को देखने आये हैं। इस पर अभिरामी वहाँ से उठ कर चली गई। जब से मैंने यह बात सुनी तब से मेरा मन घबरा रहा है। तिरूपरन कोविल के लोग इस समय वहाँ क्यों आये हैं ?"

मुत्तय्यन की घबराहट पर कमलपति हँसने लगा। बोला, "मैंने कितने ही दुर्निमित्तों, अपशकुनों आदि के बारे में सुना है। लेकिन तुम्हारी यह बात सब को मात कर देती है।"

"सो चाहे जैसा भी हो। यदि मेरा भय अकारण साबित हुआ तो अच्छा ही है। लेकिन अगर वह सच साबित हो गया, अगर मुझे पुलिस ने पकड़ लिया, या अगर मैं मारा गया तो कमल ! अभिरामी की रक्षा तुम्हीं को करनी होगी। उसका और कोई संगी-साथी नहीं है। वचन दोगे कि उसकी रक्षा करूँगा ?" मुत्तय्यन ने करुण स्वर से पूछा।

कमलपति बोला, "ईश्वर को साक्षी देकर कहता हूँ, बलराम,* मैं अभिरामी की रक्षा करूँगा। सच पूछो तो आधा व्याह हो चुका है यानी उसकी रक्षा के लिए मैं तैयार हूँ। मेरी रक्षा करने के लिए वह सहमत हो जाय, यही बाकी है।"

---

*मुत्तय्यन ने अपना नाम बदल कर बलराम रख लिया था। नाटक के विज्ञापनों में यही नाम छपता था। कमलपति को मुत्तय्यन का असली नाम बाद में मालूम हो गया था, फिर भी औरों को शक न हो इस लिए वह उसे बलराम ही कह कर पुकारता था।

३८

हाय, मेरा भैया !

रात को 'संगीत सतारम्' नाटक हमेशा की तरह चल रहा था। कमलपति 'सतारम्' की भूमिका में अभिनय कर रहा था। अचानक उसकी निगाह दर्शकमण्डली में बैठी अभिरामी पर पड़ी। मिनट भर के लिए वह सुध-बुध खोया सा खड़ा रह गया उसे यह भी याद नहीं रहा कि मैं मंच पर खड़ा हूँ और अभिनय कर रहा हूँ। इसका स्मरण जब आया, तब उसे यह भूल गया कि मुझे क्या कहना चाहिए !

उसका साथी अभिनेता बड़ा होशियार था। उसने धीरे से कमलपति का पैर अंगुली से दबाया और बोला, "मैं पूछ रहा हूँ, और तुम चुप खड़े हो ! क्या, मेरी बातें सुनाई नहीं देती—?" यह कह कर उसने अपना प्रश्न दोहराया, तभी कमलपति को नाटक का प्रसंग याद आया।

जब वह दृश्य समाप्त हुआ, कमलपति तेजी से मुत्तय्यन के पास गया और बोला, " मुत्तय्या ! एक आश्चर्य की बात हुई !" मुत्तय्यन के पूछने पर उसने अभिरामी के आने की खबर सुनाई और कहा, "अच्छा हुआ कि पहले मैंने उसे देख लिया। उसे देख कर खुद मैं पल भर के लिए हक्का-बक्का रह गया था। अगर तुम मंच पर से अचानक उसे देखते तो न जाने क्या अनर्थ हो जाता।"

मुत्तय्यन के रोम-रोम में बिजली सी दौड़ गई। हृदय की गति तीव्र हो गई। असीम उत्कण्ठा के साथ उसने मंच के पार्श्व से दर्शकों की तरफ नजर दौड़ाई। अभिरामी पर ज्यों ही उसकी निगाह पड़ी, त्यों ही उसने कमलपति को जोर से पकड़ लिया। उसका शरीर काँपने लगा। कमलपति को अलग ले जाकर बोला, "कमल ! ऐसा मालूम होता है कि शाम को मैंने जो कुछ कहा था वह ठीक साबित हो जायेगा। अभिरामी के पास जो सज्जन बैठे हैं, जानते हो वह कौन हैं ? वही हैं तिरूपरन कोविल के सब-इन्सपेक्टर। उन्हें कुछ शक हो गया होगा, तभी तो वह अभिरामी को साथ लेकर नाटक देखने आए हैं !"

यद्यपि सर्वोत्तम शास्त्री मुत्तय्यन को पहिचानते नहीं थे, फिर भी मुत्तय्यन सर्वोत्तम शास्त्री को अच्छी तरह जानता था। तिरूपरन कोविल में रहते समय उसने कई बार शास्त्री जी को देखा था। जो एक छोटे से कस्बे में सब-इन्सपेक्टर हो, उसे वहाँ के लोग कैसे न जानें ?

दोनों मित्रों ने चिन्तित भाव से विचार किया कि अब क्या किया जाय ?

दोनों ने यह निश्चय किया कि मुत्तय्यन को नाटक में अपना पार्ट इस तरह अदा करना चाहिए, जैसे कुछ भी नहीं हुआ। उसे अभिरामी की तरफ देखना ही नहीं चाहिए। कभी उस पर निगाह पड़ भी जाय तो भी यह प्रकट नहीं करना चाहिए कि वह उसे पहिचानता है।

और कोई चारा भी तो नहीं था! इस समय अगर वह मंच पर जाने से इन्कार करे, तो निश्चय ही खलबली मच जायगी न?

दोनों ने यह भी सोच लिया कि खतरे का संकेत मिलने पर क्या करना चाहिए। कमलपति ने मद्रास में एक सेकिंड-हैंड (पुरानी) मोटरगाड़ी खरीद रखी थी। अभिनेताओं के नेपथ्य में आने-जाने के लिए थियेटर के पीछे एक अलग रास्ता था। कमलपति की गाड़ी वहीं पास में खड़ी रहा करती थी। उसने मुत्तय्यन से कहा कि यदि कोई खतरे की बात हो जाय तो तुम वह गाड़ी लेकर भाग जाना। बाद में ईश्वर मालिक है।

"कमल! अपना वचन न भूल जाना!" मुत्तय्यन ने अन्तिम बार बिनती की।

नाटक बाकायदा जारी रहा। चोर और सतारम् की मुलाकात का प्रसंग आया। चोर ने एक लंबा-चौड़ा गाना गाया जिसमें उसके खानदान का वर्णन था। अन्तिम पंक्ति में उसने कहा कि मैं माखन-चोर कन्हैया जी का वंशज हूँ। यह कह कर चोर ने नकाब मुँह पर से हटाया। तुरन्त ही सतारम् मूर्छित होकर गिर पड़ी थी।

उधर मंच पर सतारम् नाटकीय ढंग से मूर्छित होकर गिर पड़ी थी कि ठीक उसी समय दर्शकों की भीड़ में से एक हृदय विदारक पुकार उठी, "हाय, मेरा भैया!" अगले ही क्षण अभिरामी सचमुच ही मूर्छित होकर गिर पड़ी। मीनाक्षी ने उसे सहारा देकर सँभाल लिया।

सबइन्सपेक्टर फौरन उछल पड़े और पीछे की तरफ देख कर कुछ इशारा किया। तत्काल ही चार व्यक्ति उठ कर तेजी से मंच की ओर लपककर दौड़ पड़े।

इतने ही में दर्शकों में से आधे से अधिक लोग अपने-अपने स्थानों से उठकर खड़े हो गए। लोग एक दूसरे से पूछने लगे, "क्या हुआ?" "क्या हुआ?" कुछ लोग बिना कुछ जाने-बूझे ही बाहर की तरफ भाग निकले। सभा में खलबली मच गई। मंच पर पर्दा गिरा दिया गया।

खुफिया पुलिस के चारों व्यक्ति बाहर गये और वहाँ तैयार खड़े चार वर्दीधारी पुलिस वालों को साथ लेकर नेपथ्य के रास्ते से मंच पर चढ़ गए। मंच और नेपथ्य का कोना-कोना छान मारा, फिर भी चोर का कहीं पता नहीं लगा।

कमलपति चिन्तित भाव से इधर-उधर टहल रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह बड़ी उत्सुकता के साथ किसी बात की प्रतीक्षा कर रहा है। कुछ मिनट बाद कहीं दूर से उसकी मोटर के 'हार्न' की आवाज आई, तो उसका चेहरा चमक उठा।

३६

तिरुपति की यात्रा

तिरुपति के मन्दिर में जो वेंकटाचलपति विराजमान हैं, उनकी एक ऐसी अभिलाषा है जो संसार में और किसी मूर्ति की नहीं होती। अपने पास आने वाले भक्तों को रुण्ड-मुण्ड देखने में न जाने उनको विशेष प्रसन्नता क्यों होती है! इतना भी काफ़ी नहीं कि कहीं बाहर सिर मुँडाकर उसके सामने जाया जाय। उनकी तो इच्छा यह होती है कि भक्त जन उनके सामने ही सिर मुँडवा लें और केश उनको समर्पित करदें। प्रायः वह बच्चों ही को उस हाल में देखना अधिक पसंद करते हैं। पर कभी कभी पके बालों वाले, दाढ़ी-मूछों वाले बूढ़े भी उनके सम्मुख जाते ही सिर मुँडवा लेते हैं। शायद यह इस खयाल से कि परमात्मा के तो सामने हम सभी बच्चे ही हैं न!

"ईश्वर क्या, ब्रह्म क्या? सब भ्रम है, बेकार की बक-बक है। अगर सच-मुच कोई ईश्वर है भी, तो क्यों न वह मुझे प्रणाम करे? मैं क्यों उसके आगे सिर नवाऊँ?"—यों तर्क-वितर्क करने वाले हेतुवादी 'आत्ममर्यादा-दल' के नास्तिक लोग भी जब तिरुपति जाते हैं तो उनका सारा हेतुवाद हवा में उड़ जाता है और वे सिर मुँडा लेते हैं। कितनी ही कोमलांगियाँ केशवर्धिनी तेल लगा कर बढ़ाई गई अपनी केश-राशि को वहाँ समर्पित करके आ जाती हैं! सब भगवान् वेंकटेश की महिमा है!

उस साल कल्याणी के पिता चिदम्बरम् पिल्लै की इच्छा हुई कि सपरिवार तिरुपति हो आयें। दूसरी पत्नी के कई बच्चे थे जिनके सिर मुँडवाने थे। भगवान् वेंकटेश से इस आशय की मिन्नतें भी माँगी गई थीं, सो उन्हें भी पूरा करना था। खर्च के लिए रुपये की कमी कैसे हो सकती थी जब कल्याणी इतनी विशाल सम्पत्ति की अधीश्वरी थी? चिदम्बरम् पिल्लै ने निश्चय किया कि तिरुपति हो आयें और लौट कर काफी धूम-धाम के साथ ग्राम-भोज की व्यवस्था की जाय। जब उन्होंने कल्याणी से यह बात छेड़ी तो उसने खुशी-खुशी मान लिया और कहा कि मैं भी साथ चलूँगी।

कल्याणी कोपूंकुलम आये तीन महीने हो चुके थे। शुरु-शुरु में मुत्तय्यन से मुलाकात के समय जो बातें हुई थीं उनसे उसके मन को बड़ी सान्त्वना प्राप्त हुई थी। पर बाद में ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, उसकी अधीरता भी बढ़ती गई।

वह बेचैन हो उठती थी। मन में हजार तरह के प्रश्न उठते—"मुत्तय्यन कहाँ गया ? इतने दिन बीतने पर भी क्यों नहीं लौटा ? कहाँ रहता होगा ? क्या करता होगा ?" आदि, आदि। मुत्तय्यन को फिर देखने की इच्छा से वह अधीर हो उठती। वियोग के ताप के मारे उसका हृदय विदीर्ण सा हुआ जा रहा था। इस सन्ताप में शीतल लेप का काम देने वाली केवल एक ही चीज थी, और वह थी नदी-तट की वनस्थली।

इन दो-तीन महीनों से कल्याणी फिर पहले की तरह नदी-तट की वन-देवी बन कर वहाँ स्वच्छन्द विचरण करने लगी थी। कोई दिन ऐसा नहीं जाता था जब वह नदी-तट की सैर न करती हो। जब जाती थी, तब लौटने के लिए जल्दी नहीं करती थी। वन-प्रदेश में घूमते-घामते उसे वर्तमान की सुध नहीं रहती थी। काल की अलंघ्य सीमा पार करके वह फिर अपने बाल्य-पन को लौट जाती। बचपन में जहाँ जहाँ घूमने की आदी थी, वहीं उसके पैर उसे बरबस ले चलते। उन्हीं पुराने बेर और जामुन के पेड़ों के पास जाती। डालें हिला-हिला कर पके हुए फल गिराती और भाग-भाग कर उन्हें चुनने के बाद एक स्थान पर बटोरती। चुनते-चुनते अचानक मुत्तय्यन की याद आ जाती। बस, जहाँ की तहाँ भूमि पर बैठ जाती और कल्पना लोक में स्वच्छन्द उड़ानें भरती। उसके हृदय में हूक उठती—काश ! पहले ही मुत्तय्यन के साथ मेरा ब्याह हुआ होता !

प्रति दिन वह जीर्ण-मन्दिर में जाकर देखती। प्रति दिन घर से चलते समय उसके मन में यही आशा फिर जागृत हो उठती कि आज वह अवश्य आया होगा। बस, इसी आशा के पीछे पीछे नदी की उमड़ती हुई धारा की तरह बहती जाती। मन्दिर के निकट पहुँचते-पहुँचते उसके हृदय की धड़कन तेज हो जाती। आशा और भय के उस संघर्ष-स्थल को दोनों हाथों से थाम लेती और दबे पाँव चल कर ध्यान से देखती। मुत्तय्यन का प्यारा चबूतरा खाली नज़र आता, तो उसे सारा संसार सूना दीखता, सारा जीवन व्यर्थ मालूम होता। कभी-कभी सन्देह होता कि मुत्तय्यन कहीं छिपा हुआ तो नहीं है ? चारों तरफ दौड़ दौड़ कर खोजती। क्या कारण है कि अभी तक वह नहीं लौटा ? उसने इतना ही तो कहा था कि अभिरामी को एक बार देख कर लौट आऊँगा ! कहीं देख नहीं सका होगा क्या ? कहीं अभिरामी ने यह तो हठ नहीं ठान लिया कि मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती ? कहीं दोनों ही समुद्र-पार तो नहीं चले गए हैं ?

यह असह्य विचार उठते ही उसे अभिरामी के प्रति असीम क्रोध आता। कलमुँही कहीं की ! उसी निगोड़ी के कारण मेरा सारा जीवन बर्बाद हो गया। ऐसी अभागिन पैदा ही क्यों हुई ? अगर उसका पैदा होना आवश्यक था, तो फिर

परमात्मा ने मुझे भी साथ क्यों पैदा किया ?

इस तरह कल्याणी का एक-एक दिन युग-सरीखा बीत रहा था। ऐसे ही समय में चिदम्बरम् पिल्ले सपरिवार तिरुपति की यात्रा पर निकले थे। उन्होंने कहा कि अगर जेठ का महीना आ गया और बुवाई शुरू हो गई तो फिर कहीं निकलना संभव नहीं होगा, इसलिए जल्दी यात्रा समाप्त कर लेनी चाहिए।

कल्याणी का मन दिन पर दिन अधिक व्याकुल हो रहा था। उसे ऐसा लगा कि अगर वे एं कुलम् में कुछ और दिन इसी तरह रही तो पागल हो जाऊँगी। यात्रा के बहाने कुछ घूमना-फिरना हो जाय तो मन को थोड़ी-बहुत शान्ति मिल ही जायगी। हो सकता है कहीं मुत्तय्यन के बारे में कोई चर्चा सुनने को मिले इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर कल्याणी यात्रा के लिए तैयार हुई थी।

नियत तारीख को चिदम्बरम् पिल्ले का परिवार यात्रा पर रवाना हुआ।

४०

रायवरम् जंक्शन

रेलवे स्टेशन पर जितनी हलचल होती है उतनी शायद ही और कहीं देखने में आती है। उस पर रायवरम् जंक्शन का तो पूछना ही क्या? वह ऐसा स्टेशन है जहाँ चार बड़े महत्वपूर्ण स्थानों को जाने वाली लाइनें आकर मिलती हैं। इसलिए दिन के चौबीसों घंटे वहाँ पर काफी चहल-पहल रहती है।

अहा! वहाँ कितनी-कितनी तरह की सुगन्धियाँ आती है। केवड़ा, गुलाब, खस आदि की सुवास। 'मसालवडा' व 'काराबूंदी' की सुगन्ध। डबल रोटी, बन व बिस्कुट की महक। तँबाकू की बू; चुरट के धुएँ की बू; सड़े-गले संतरों-केलों के छिलकों की सड़ाँध। लोगों के शरीरों पर लगे इत्र, सेंट व नीम के तेल की मिश्रित गन्ध। काशी से रामेश्वरम् तक बिना नहाये चलने वाले यात्रियों की बू। और न जाने किस-किस की खुशबू और बदबू! अगर उन सब गन्धों को अलग अलग गिना जाय तो कम से कम तीस हजार किस्म की गंध तो होगी ही!

और फिर कितने भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों को हम वहाँ देखते हैं! देहाती किसान, शहर के 'सभ्य' पुरुष। चोटी वाले लोग, क्राप वाले, टोपी पहने हुए सज्जन, टोप पहने हुए काले साहब! ऊर्ध्व पुण्ड्रधारण किये हुए वैष्णव गण, चन्दन का टीका लगाने वाला स्मार्त। मूछों पर ताव देने वाले मूछों के धनी, हिटलर जैसे अधमुछिये। लंबी-लंबी दाढ़ियों वाले और, चिकने-चिकने गालों वाले!

स्त्रियों के भी कितने कितने वर्ग! पुराने किस्म की सूती साड़ियों वाली, पाण्डिचेरी सिल्क पहने हुई। माथे पर कुंकुम का टीका लगाने वाली, सुई की नोक जितनी बिंदी लगाने वाली। लटकती हुई बेनियों वाली। बिना गूंथे ही केशों को बाँधने वाली। हीरे के कर्णभूषण! मोती के झुमके!

वहाँ सुनाई देने वाली आवाजों को भी क्या कहें? रेल की सीटी की आवाज, इंजन के धुआँ छोड़ने की आवाज। घंटी की टन्-टन्, "मसालवड़े-काजू!" का कर्कश स्वर। बाहर आने-जाने वाली मोटर गाड़ियों की घरघराहट, मोटर-हार्नों का भैरव स्वर। इन सबके ऊपर लोगों का गुलगपाड़ा और हाय-हाय।

रेलवे प्लेटफार्म पर जैसी बातें सुनने में आती हैं। वैसी मजेदार बातें शायद ही और कहीं सुनने को मिलती हैं।

"बिलकुल बे अक्ल लोग राज चलाने लग जायँ तो उसका नतीजा और क्या होगा ?"—एक राजनीतिज्ञ ।

"अरे तुम ने स्टालिन को क्या समझ रक्खा है ? सौ सौ मुसोलिनियों को वह हजम कर जाय और डकार भी न ले !"—एक साम्यवादी ।

"मम्मी ! मुझे एक लैल (रेल) ले दो !"—एक बच्चे की दीन याचना ।

"क्या हुआ इन अखबार वालों को ? आज तो कोई खबर नहीं नजर आती !"—एक अखबार-प्रेमी ।

"हाँ जी ! वी. जे. 'बडेल' बड़े हैं या 'वल्लभाई बडेल' बड़े हैं ?"—एक सज्जन जो सिर्फ तमिल के ही अखबार पढ़ने के आदी हैं ।

"अरे रामू ! सुना है परीक्षा में फेल हो गये तुम ! जरा हाथ मिलाओ तो !"—एक युवक दूसरे युवक से ।

रायवरम् जंक्शन में इस तरह काफ़ी चहल-पहल हो रही थी । मद्रास जाने वाली रामेश्वरम् ऐक्सप्रेस के आने का समय निकट आ गया था, इसलिए लोग माल-असबाब लेकर झुंड के झुंड प्लेटफ़ार्म पर आकर भरते जा रहे थे इस भीड़ के बीच में चिदम्बरम् पिल्लै और उनका विशाल परिवार भी था ।

पुल की सीढ़ियों के पास कल्याणी छाया में बैठी हुई थी । उसकी फूफी उसके पास ही खड़ी थी । चिदम्बरम् पिल्लै और उनकी धर्मपत्नी बच्चों को इधर-उधर भागने से रोकने के महान् प्रयत्न में लगे हुए थे । पूंकुलम से आये हुए दो बैलगाड़ीवाले, कांख में बेंत दबाये, बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ खड़े थे ।

प्लेटफ़ार्म पर जितनी स्त्रियाँ थीं, उन सब में कल्याणी ही सब से अधिक सुन्दर और आकर्षक थी । आने-जाने वाली स्त्रियाँ उसकी तरफ़ ईर्ष्या भरी दृष्टि से देखती गयीं । पुरुष लोग कहीं और देखने के बहाने उसी को देखते गये । एक युवक जो रेशमी अंगोछा पहने, सुगन्धित तिलक लगाये था, उसके आसपास पाँच-छः चक्कर काट चुका था ।

कल्याणी कुछ देर तक प्लेटफ़ार्म पर चारों तरफ़ आश्चर्यमयी दृष्टि से देखती रही । बाद में उसके मुख का भाव अचानक बदला । ऐसा लगता था कि वह ध्यान से कुछ सुन रही है । पाँच ही मिनट के अन्दर उसके चेहरे के भाव में हज़ार प्रकार के परिवर्तन हो गये । आश्चर्य, क्रोध, उत्सुकता, क्षोभ, सन्देह, घबराहट सभी भाव पल पल में अपनी झलक दिखा गये ।

कल्याणी के थोड़ी दूर पर कुछ लोग पास पास खड़े बातें कर रहे थे और वही कल्याणी के इस भाव-परिवर्तन का कारण था ।

भीड़ के एक सज्जन ने कहा, "अजी क्या पूछते हो ? सारे मद्रास शहर में

एकदम सनसनी फैल गयी है। आहा हा! कमाल की हिम्मत है उस चोर की। लोग उसकी चतुराई की वह तारीफ़ करते हैं, वह तारीफ़ करते हैं कि बस......!"

एक और सज्जन ने पूछा, "क्यों जनाब! इतनी भारी भीड़ थी, इतने पुलिसवाले तैयार खड़े थे, सबको चकमा देकर वह कैसे बच निकला? यक़ीन नहीं होता, जनाब! सचमुच बड़े अचम्भे की बात है।"

पहले सज्जन बोले, "यही तो मैं भी कहता हूं! कहते हैं, उसने मंच पर से एक दम ही छलाँग लगायी और दर्शकों के सिरों पर ही चल कर थियेटर के बाहर निकल गया! और भी मज़े की बात सुनिये! उसे गिरफ़्तार करने के लिए जो पुलिस-कमिश्नर आये थे, उनकी मोटर गाड़ी थियेटर के बाहर ही खड़ी थी। मुत्तय्यन उसी गाड़ी को लेकर नौ-दो-ग्यारह हो गया और कमिश्नर साहब मुँह ताकते रह गये!"

एक सज्जन ने पूछा, "कुछ पता चला, कि कहाँ गया होगा?"

"अजी यह भी पूछने की बात है? वहीं कोल्लिडम नदी-तट पर पहुँच गया होगा! एक बार वह काँस की झाड़ी में घुस जाय तो फिर कौन उसे पकड़ सकता है? हज़ार पुलिसमैन एक साथ तलाश करें, तो भी उसका थोड़े ही पता लगा सकते हैं?

"सो तो ठीक है। लेकिन खाने-पीने के लिए करेगा क्या?"

"अरे! यह नहीं जानते आप? सुनते हैं, कोल्लिडम-नदी तट पर के एक गाँव में उसने (धीमे स्वर में) एक औरत से साँठ-गाँठ कर रक्खी है!"

"अजी, इस बात के लिए यह कानाफूसी क्यों? लोगों का तो कहना यह है कि हर गाँव में मुत्तय्यन की कोई न कोई रखैल ज़रूर है।"

"छिः छिः! आप भी कैसी अंटशंट की बात करते हैं! एक को दस और दस को सौ बताना, हम लोगों की तो आदत ही बन गया है!"

"बड़े आ गये आप सच-झूठ बताने वाले! आप जानते ही क्या हैं? लोग कहते हैं, मद्रास में सभी औरतें उस पर जान देती थीं। कहते हैं, उसमें कोई मोहिनी शक्ति—कोई जादू—है। स्टेज पर जब वह नक़ाब हटा कर मुख दिखलाता था, तो बहुत-सी औरतें बेहोश हो जाती थीं। आख़िरी दिन में भी एक लड़की इसी तरह मूर्च्छित हो गयी बतलाते हैं।"

"यह सब मैं नहीं जानता जनाब! बस, इस इलाके में इस मामले में वह कभी बदनाम नहीं हुआ। हमने तो सुना है कि अब तक उसने किसी स्त्री के साथ बुरा सलूक नहीं किया।"

"चलो इस बात पर हम क्यों झगड़ें आपस में? आख़िर एक दिन वह पकड़ा ज़रूर जायेगा। तब इसका सच-झूठ सब अपने आप रोशनी में आ जावेगा!"

कल्याणी के कानों में सिर्फ यही बातें पड़ीं। तुरन्त उसने कुछ निश्चय कर लिया। पिताजी को बुला कर कहा, "पिताजी! मेरी तबियत कुछ घबरा रही है। मैं तिरुपति नहीं जा सकती। आप लोग हो आइएगा। मैं और फूफी वापस पुंकुलम चली जावेंगी।

चिदम्बरम् पिल्लै यह सुन कर चौंक पड़े। बोले, "क्यों बेटा! यह कैसी बातें कर रही हो? टिकट भी कट चुके हैं। अब तुम कहती हो, नहीं जाऊँगी! यह भी कोई बात है?"

पर उनकी बातों का कोई असर नहीं हुआ। कल्याणी अपनी हठ पर दृढ़ रही।



इतने में गाड़ी आ गयी। चिदम्बरम् पिल्लै लाचार हो गये। बोले, "अच्छा बेटी! सावधानी से वापस जाना। घर में खूब संभल कर रहियो!"

गाड़ी स्टेशन से छूटी, तो कल्याणी और उसकी फूफी बैलगाड़ी में बैठ कर पुंकुलम की ओर चल पड़ीं।

४१

छिपा भँवर

जेठ का महीना था। पश्चिमी हवा साँय साँय करके चल रही थी। हवा ने पेड़ों की डालों का वह बुरा हाल कर रक्खा था कि वर्णन के बाहर! चारों तरफ़ से "हो हो" का शोर सा मचा हुआ था।

जेठ के महीने में पूंकुलम का दृश्य अनूठा हुआ करता था। ऐसा प्रतीत होता था कि सारा गाँव पानी में तैर रहा है। नदी-नालों में नयी बाढ़ आयी हुई थी, और पानी लबालब भरा, फेन व भंवरों के साथ बहता चला जा रहा था। खेतों में भी पानी भरा हुआ था और उस पर हिलोरें उठ रही थीं। कुछ खेतों में धान के नन्हें नन्हें रोप लहलहा रहे थे। जब तेज़ हवा उन पर चलती थी, तो वहाँ तरह तरह के चित्र बन बन कर मिट जाते थे और भंवर से उठते थे।

ताल-तलैयों में पानी लबालब भरा लहरें मार रहा था। कमल और कुमुद की लतायें तरो-ताज़ा होकर हरी-भरी हो उठी थीं। ताजे ताजे पत्ते और छोटी छोटी कलियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। एक दो फूल इधर-उधर खिले हुए थे। उनके साथ पश्चिमी पवन अठखेलियाँ कर रही थी।

ऐसा लगता था कि नयी बाढ़ ने जानवरों और पंछियों में भी नया जोश भर दिया है। भैंसें-भैंसें, जो ढीली चाल से आ रही थीं, जल भरे तालाब को देखते ही उछलती-कूदती दौड़ी गयीं और पानी में उतर पड़ीं।

बगुलों के झुण्ड के झुण्ड कतार बाँध कर उड़ आये और तालाब के तट पर नयी उगी हुई दाभ के बीच में बैठ कर मौन के आनन्द में विभोर हो गये। हरी हरी दाभ के बीच में सफेद बगुले! और नीचे पानी में उनकी प्रतिच्छाया! आहा! जी में आता था कि इस दैवी दृश्य को निहारते निहारते सारा जीवन यहीं व्यतीत कर दें।

****　　　****　　　****

गाँव लौट कर घर में कदम रखते ही कल्याणी ने गागर उठा लिया और फूफी से बोली, "फूफी! मैं नदी में जाकर स्नान कर आती हूँ।"

"यह कैसा पागलपन है, बेटा! आज क्या जल्दी है? कल नदी नहा लेना। पश्चिमी हवा आँधी की तरह चल रही है, ऐसी हवा में निकलोगी, तो तबियत का क्या होगा? इधर मैं अकेली हूँ। कहीं बुख़ार-वख़ार हो गया, तो देख-भाल कौन

करेगा ? मुझ से नहीं हो सकता यह सब !" फूफी खीझ कर बोली ।

"बलिहारी है फूफी, बलिहारी है ! उधर नदी में नयी बाढ़ आयी है और तुम कहती हो मैं घर में अपाहिज की तरह गरम पानी से नहा कर सो रहूँ ! वाह ! यह भी कोई बात है ?" कहती कहती कल्याणी तेज़ी से निकल चली ।

कहने की ज़रूरत नहीं कि वह जीर्ण मन्दिर की तरफ़ गयी । इस बार उसे निराश नहीं होना पड़ा । जामुन के पेड़ के नीचे, चबूतरे पर मुत्तय्यन बैठा हुआ था । उसके सिर पर पगड़ी थी और मुख पर हर्ष की लहरें । कल्याणी को देखते ही वह बनावटी अदब के साथ बोला, "श्रीमती कल्याणी देवी ! स्वागत हो आपका ! सेवक आप ही की बाट जोहता हुआ आज सवेरे छः बजे से यहाँ बैठा है !"

कल्याणी की खुशी का ठिकाना न रहा । उसे ऐसा लगा मानों अचानक उसके पर उग आये हैं और आकाश में उड़ सकती है—उड़ रही है । पिछले चार वर्षों में कभी भी मुत्तय्यन ने इतने हर्ष के साथ उसका स्वागत नहीं किया था । जब से कल्याणी के व्याह की चर्चा चली थी, तब से उन दोनों में मन-मुटाव और रूठना-खीझना ही अधिक हुआ करता था न ?

"सौभाग्य है मेरा, कि मैं आज तुम्हें देख रही हूँ । वरना इस समय मैं तिरूपति के पास पहुँच गयी होती !" कल्याणी ने कहा ।

"अरे रे ! सो कैसे ? इस उच्चासन पर विराज कर सारी बात विस्तृत रूप से समझाइए तो !" कहते-कहते मुत्तय्यन ने उसकी गागर लेकर ज़मीन पर धर दी । और उसे चबूतरे पर बिठाया ।

कल्याणी ने स्टेशन पर सुनी बातों का वर्णन किया, तो मुत्तय्यन का विनोद हवा में उड़ गया । उसने गद् गद् स्वर में कहा, "कल्याणी ! मैं समझ नहीं पाता कि तुम्हारे इस प्रेम का पात्र बनने की मुझ में योग्यता ही क्या है ! आश्चर्य इस बात का है कि तुम्हारे ऐसे पवित्र प्रेम पर भी मैंने कभी सन्देह किया था ।"

यह सुनते ही कल्याणी को कुछ और बातें याद आईं जो स्टेशन पर उसके कानों में पड़ी थीं । क्षण भर के लिए उसके मुख पर व्यथा की छाया दौड़ गई । उसने पूछा, "सो तो ठीक है, लेकिन··· ।" आगे उससे कुछ कहा नहीं गया । बातें मुँह से निकलती नहीं थीं ।

"क्या है ? क्या कह रही थीं ?" मुत्तय्यन ने पूछा ।

कल्याणी ने बात बदलकर कहा, "मैं यह कह रही कि स्टेशन तक साथ चलने के बाद मैंने अचानक जो इन्कार कर दिया था, पता नहीं पिता जी और मौसी उसपर क्या समझती होंगी ? निश्चित रूप से दोनों मुझे पगली समझते होंगे । स्टेशन पर जो लोग थे, वे भी मुझ पर हँसे होंगे ।"

"बस, यही बात थी ? दीवाने तो हम दोनों हैं ही । और सदा दीवाने ही बने रहेंगे । हँसने वाले हँसते रहें । हमारा क्या बिगड़ता है ? और कितने दिन हँसेंगे ? जब हम दोनों जहाज़ पर चढ़ समुद्र-यात्रा करेंगे, तब उनकी हँसी थोड़े ही हमारा पीछा करेगी ? और जब हम समुद्र पार जाकर सुख का जीवन बितायँगे, तब उनकी हँसी हमारे कानों में थोड़े ही पड़ेगी ?...कल्याणी ! मेरा सारा काम पूरा हो चुका है । मैंने अभिरामी को देख लिया है । वह सुखी है । उसकी देख-भाल करने के लिए एक आदमी भी मिल गया है । अब मैं स्वतन्त्र हूँ, निश्चिन्त । हम दोनों जहाँ जी चाहे, जा सकते हैं । और कुछ दिन तक यहाँ पुलिस की दौड़-धूप काफ़ी रहेगी । जब तक वह ठंडी न पड़ जाय, मुझे ज़रा सतर्क रहना होगा । बाद में जब हम जहाज़ पर चढ़कर दूर देश के लिए रवाना हो जायँगे, तब कोई कुछ भी करे, हमारा क्या बनता बिगड़ता है ? जिन्हें स्वर्ग प्राप्त हो चुका हो, उन्हें इस पृथ्वी की क्या परवाह ?"

इसके बाद कुछ दिन तक मुत्तय्यन और कल्याणी स्वर्गिक सुख भोगते रहे । मानों वह आमोद-प्रमोद के प्रवाह में बह रहे थे । उन बेचारों को क्या पता था कि उस प्रवाह की तह में एक भारी भँवर उठ रहा था ?

४२

ढिंढोरा

रायवरम के पुलिस थाने में भागमपुर्सी-सी हो रही थी। मद्रास से डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल साहब खुद पधारे थे। उनके अलावा ज़िला सुपरिंटेंडेंट छः सात सर्किल इन्सपेक्टर, सब-इन्सपेक्टर और तीस-चालीस पुलिस कान्स्टेबिल विद्यमान थे।

ज़िला सुपरिंटेंडेंट साहब ने मेज़ पर ज़ोर से मुक्का मारा और बोले, "हमारे जिले में पुलिस दल के लिए इससे ज़्यादा अपमान की बात और कोई नहीं हो सकती। अब इज्जत क्या रह गई हमारी? मद्रास से डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल साहब ने खुद ही तशरीफ़ लाने की तकलीफ़ की है। देखते हैं न, आप लोग? आज जुलाई की बीस तारीख़ है। इस मास की ३१ तारीख़ तक हमें चोर को पकड़ कर ही रहना होगा। समझ गए न?"

डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल बोले, "जिस मोटर गाड़ी में चोर बच निकला था वह कोल्लिडम के पुल के नीचे पड़ी मिल गई है। इसका मतलब यह है कि चोर नदी के किनारे पर ही कहीं छिपा हुआ है। इस लिए कोल्लिडम नदी के दोनों तरफ़ के जंगलों-झाड़ियों को खूब छान डालिए। कोई न कोई उसका मददगार ज़रूर होगा। जिस किसी पर भी शक हो, फ़ौरन उसे गिरफ़्तार कर लीजिए। ज़रा भी हिचकने की ज़रूरत नहीं। समझ गए न?"

इसके बाद इन्सपेक्टर जनरल ज़िला सुपरिंटेंडेंट से बोले, "देखिए! किसी भेदिए के सहारे के बिना इस चोर का पकड़ना मुश्किल होगा। डौंडी पिटवाइए कि जो चोर का भेद बतायगा उसे एक हज़ार रुपया इनाम मिलेगा।"

***   ***   ***

मुत्तय्यन को कोल्लिडम के तट पर लौटे दस दिन से ऊपर हो गए थे। ३० जुलाई का दिन था। कल्याणी घर में रसोई के काम में लगी हुई थी। उसके चेहरे पर आनन्द की लहरें खेल रही थीं। रह-रह कर वह मुस्कुरा देती थी। कभी वह गुनगुनाती और कभी मुक्त कण्ठ से गाती थी। वह मुत्तय्यन के लिए खाना तैयार कर रही थी, बस यही उसके हर्ष और उत्साह का कारण था।

खाना तैयार करने के बाद कल्याणी उसे केले के पत्ते में रखकर लपेट देती, गागर के अन्दर रख लेती और नहाने के बहाने नदी की तरफ गागर लिए चल

देती। फूफी को कम सूझता था, जो अब कल्याणी के लिए अनुकूल रहा।

कभी-कभी पास-पड़ोस की लड़कियाँ कहती, हम भी तुम्हारे साथ नदी पर नहाने चलती हैं। "ऐसे मौकों पर कल्याणी नादी असमंजस में पड़ जाती। झट कह देती कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है और घर लौट जाती। बाद में काफ़ी धूप चढ़ने के बाद, जब और स्त्रियाँ घरों में आराम से पड़ी सोती रहती, वह नदी के लिए निकलती। जब कभी ऐसी रुकावट होती थी, उसे केवल यही चिन्ता होती कि मुत्तय्यन भूखा पड़ा मेरी राह देख होगा।



उस दिन वह खाने की पोटली लेकर गागर के अन्दर रख रही थी कि इतने में डौंडी की आवाज़ आई। गाँव का अहलकार ढिंढोरा पीटता हुआ घोषणा करने लगा:—"डाकू मुत्तय्यन पिल्लै का भेद बताने वालों को सरकार एक हज़ार रुपया इनाम देगी। मुत्तय्यन पिल्लै को खाना खिलाना, घर में ठहराना, उसके साथ बोलना-चालना सब भारी जुर्म होंगे। जो लोग ऐसा करेंगे उनको सख़्त सज़ा दी जायगी। होशियार, होशियार, होशियार।"

हमेशा को तरह उस दिन भी कल्याणी गागर लिये कोल्लिडम नहाने चली। रास्ते में उसके मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे। पश्चिमी हवा उसकी साड़ी का आँचल जिस तेज़ी से हिला रही थी, उससे भी अधिक तीव्रता के साथ विचार तरंगें उसके मन में आन्दोलित हो रही थीं। मुत्तय्यन की ख़ातिर में इतनी भारी जोखिम उठा रही हूँ, यह सोच कर वह फूली नहीं समायी। साथ ही जब यह प्रश्न उठा कि इस सारी कठिनाई को पार कर मैं और मुत्तय्यन सुरक्षित रूप से समुद्र पार जा सकेंगे भी, तो उसके मन की वह दशा हो गयी, जो आँधी में नाव की होती है।

पर इससे भी अधिक व्यथा उसे और एक कारण से हो रही थी। कभी कभी उसके मन में प्रश्न उठता था कि मुत्तय्यन मेरे इस सारे प्रेम के योग्य भी है? जब यह शंका उठती तो उसकी ग्लानि अवर्णनीय हो जाती। उस दिन रेल्वे स्टेशन पर स्त्रियों के साथ मुत्तय्यन की साँठ-गाँठ के बारे में जो बातें सुनने में आयीं थीं, उन्होंने उसके पवित्र मन में विष के बीज बो दिये थे। हज़ार प्रयत्न करती कि उन बातों पर विश्वास न करूँ। सोचती, मुत्तय्यन—मेरा मुत्तय्यन—कभी ऐसी बात कर सकता है? पर अगले ही क्षण यह सन्देह उठता कि हो सकता है मुत्तय्यन मुझे धोखा दे रहा हो। मैं नादान स्त्री हूं। पुरुषों का छल-कपट क्या जानूँ? हो सकता है, सभी पुरुष एक जैसे हों।

पिछले दस दिन से वह रोज़ निश्चय करती कि आज मुत्तय्यन से इसकी चर्चा छेड़ूँगी और उससे सच्ची बात जानने का प्रयत्न करूँगी। पर मुत्तय्यन के सामने जाते ही उसका सारा संकल्प काफ़ूर हो जाता। हिम्मत नहीं होती थी कि यह बात छेड़े।

आज उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि ज़रूर यह बात छेड़ूँगी और मुत्तय्यन को अपनी क़सम खिलाकर उससे सच्ची बात जान कर रहूंगी।

किन्तु शोक! इस निश्चय को कार्यान्वित करने का अवसर ही उसे नहीं मिला।

जीर्ण मन्दिर के पास पहुँचने पर कल्याणी मन्दिर के अन्दर से दो व्यक्तियों के बातचीत करने की आवाज़ सुनकर चौंक पड़ी। इस आफ़त की घड़ी में और कौन मुत्तय्यन के साथ बातें कर सकता है? वह जहाँ की तहाँ खड़ी हो गई और पेड़ों के बीच में से झाँककर देखा।

वहाँ जो कुछ देखा उससे वह चकित रह गई। उसके रोम-रोम में अंगारे से धधकने लगे।

वहां, मुत्तय्यन के पास, एक युवती खड़ी थी। उसकी वह चटक-मटक और

वह नाजो-नखरे ! कल्याणी के लिए असह्य हो उठा । छिः छिः ! मुत्तय्यन की पीठ पर वह थपकियाँ दे रही है ! हरे राम ! यह कैसा कुत्सित व्यवहार ! मुत्तय्यन ने उसे छाती से लगा लिया ।

कल्याणी को ऐसा लगा मानों वह पागल हो जायगी । उसे मति-भ्रम-सा हो गया । कुछ क्षण वहीं खड़ी उस दृश्य को एकटक देखती रही । बाद में उसके लिए वहाँ खड़ा रहना असंभव हो गया और वह गागर उठाये वापस लौट गई ।

४३

कहाँ देखा था ?

एक कहावत है कि "आंखों देखी बात भी झूठ, कानों सुनी बात भी। जाँची हुई बात ही सच होती है।" लोग इस कहावत के सत्य को समझ नहीं पाते, इससे संसार में कई भूलें हो जाया करती हैं। नादान कल्याणी ने अब ऐसी ही मूर्खता कर डाली। आँखों-देखी बात पर वह विश्वास कर बैठी। अगर विश्वास कर भी लिया तो भी इस कदर एकदम पागल बन जाने की आवश्यकता ही क्या थी? अरी अभागिन ! कैसी भूल की तुमने? कैसे भारी अनर्थ की जड़ बन गईं तुम? पर तुम्हारा क्या दोष? विधि की प्रवंचना के आगे तुम्हारी क्या चल सकती थी?

कल्याणी की भूल कितनी भारी थी, यह जानने के लिए हमें जरा अतीत की तरफ लौटना आवश्यक हो जाता है। आइए, जरा हम मद्रास तक चलें और वहाँ की घटनाओं से परिचित हो लें।

***　　***　　***

"संगीत सतारम्" नाटक में गड़बड़ हो जाने के बाद तीन-चार दिन तक नाटक-कम्पनी के सभी लोगों को पुलिस की निगरानी में रखा गया था और उनसे लगातार पूछ-ताछ की जा रही थी। पर हजार पूछ-ताछ करने पर भी उनसे कोई बात मालूम नहीं की जा सकी। कंपनी के अधिकारियों ने कहा कि जब वे रेल में मद्रास आ रहे थे तब मुत्तय्यन उनसे आ मिला था और अपना नाम वल्लराम बताया था। उसमें अभिनय-कुशलता काफ़ी थी, इसलिए उसे कंपनी में नौकर रख लिया गया था। इससे अधिक उनको उसके बारे में कुछ भी मालूम नहीं। कंपनी के और सब कर्मचारियों ने भी कुछ इसी तरह का बयान दिया। वास्तव में उनमें से एक को छोड़कर बाकी सब लोग जानते भी इतना ही थे न?

सिर्फ कमलपति को झूठ बोलना पड़ा था। वह पुलिस के हर प्रश्न का बेधड़क जवाब देता गया। साथ-साथ अपनी मोटरगाड़ी के खो जाने पर चार आँसू भी बहाये। उस पर विशेष रूप से सन्देह करने का कोई कारण नहीं था, इसलिए पुलिस ने उसके जवाबों पर शक नहीं किया।

तीन-चार दिन बाद पुलिस ने नाटक-कंपनी की निगरानी छोड़ दी। उसको यह विश्वास हो गया कि कंपनी की निगरानी करने से कुछ पल्ले नहीं पड़ने का।

अभिरामी से पूछ-ताछ करने के बाद भी पुलिस ने यही समझा कि उससे

कोई खास बात मालूम होना संभव नहीं। इसलिए अभिरामी पर से भी उन्होंने निगरानी हटा ली।

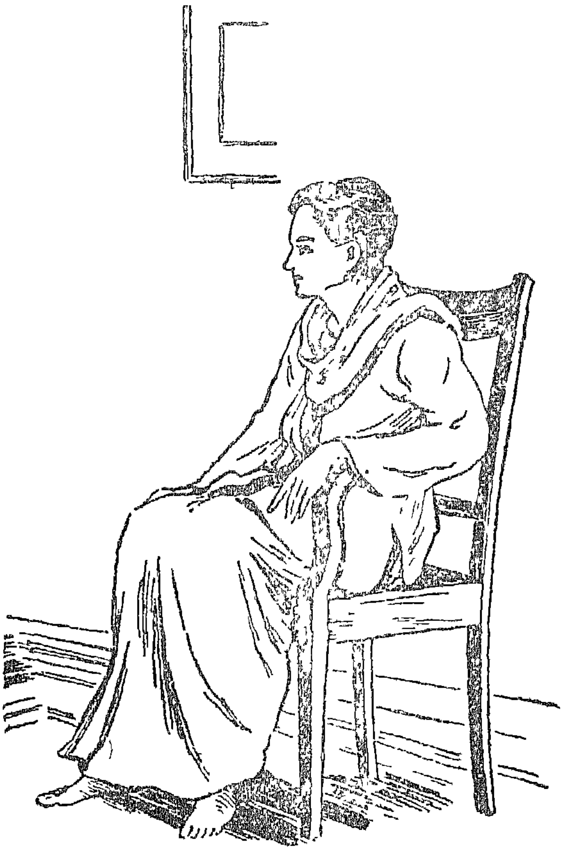
अनाथिनी अभिरामी के प्रति बहन आनंदराधा का वात्सल्य और सहानुभूति इस घटना के बाद दसगुनी बढ़ गई। वह उसे बार-बार सान्त्वना देती और ढाढस बँधाती। फिर भी अभिरामी के हृदय में जो अशान्ति मची हुई थी, वह उससे कम नहीं हो पाती थी। पल भर भी उसे चैन नहीं पड़ती थी।



वह अपने भैया की बहादुरी और चतुराई की याद करके विस्मित हो जाती और तब अभिमान से उसका हृदय फूल उठता। वास्तविक जीवन में चोर की उपाधि प्राप्त करने के बाद, नाटक में भी चोर का पार्ट अदा करने की उसकी हिम्मत पर वह मुग्ध हो उठती। मंच पर उसके अभिनय और हाव-भाव की याद करके कभी उसे हँसी आ जाती। परन्तु साथ ही यह भी याद आता कि मद्रास में रहते हुए भैया ने मुझे एक बार भी आकर नहीं देखा। तब वह खिन्न हो उठती। जब सोचती कि मेरे मूर्छित होने ही के कारण पुलिस को उसका सच्चा परिचय मिला और उसी के फल स्वरूप भैया को भागना पड़ा, तो ग्लानि और शोक के मारे उसका हृदय विदीर्ण सा हो जाता। सोचती, हाय, मुझ अभागिन के कारण भैया को सदा मुसीबत ही मुसीबत पहुँचती है। जीवन उसके लिए भार सा मालूम

पड़ता। इन्हीं विचारों के बीच, अचानक वह उस दृश्य की कल्पना करती जब भैया इतने भारी पुलिसदल को चकमा देकर साफ़ बच निकला था, तो उसका मन फिर उत्साह से भर जाता।

इस तरह विचारों के झंझावात में जब वह अनजान लड़की पेंग खा रही थी, तब एक दिन किसी छात्रा ने आकर उसे खबर दी कि उसे देखने के लिए कोई आया है, अध्यक्षा उसे बुला रही हैं। अभिरामी ने सोचा, पुलिस का ही कोई आदमी आया होगा। इस ख्याल से उसने बहन शारदामणि के कमरे में प्रवेश किया तो देखा, वहाँ कोई युवक बैठा है।



"अभिरामी ! यह लड़का कहता है कि वह तुम्हारे भैया का मित्र है। चेहरे से ऐसा नहीं प्रतीत होता कि वह झूठ बोल सकता है। कहता है, तुम्हारे भैया ने तुम्हारे लिए कोई सन्देश भेजा है। यहाँ पास के कमरे में बैठकर दोनों बात-चीत कर लो। मैंने तुम को ठीक पंद्रह मिनट का समय दिया है"—शारदामणि बहन ने कहा।

शारदामणि की बातें सुनते-सुनते अभिरामी ने उत्सुकता भरी आँखों से कमलपति को देखा। पास के कमरे में प्रवेश करते ही उसने पूछा—"क्या, बहनजी की बातें सही हैं? आप सचमुच मेरे भैया के मित्र हैं? मुझे भी ऐसा लगता है कि मैंने आपको कहीं देखा है?"

"आप ठीक कहती हैं। अभी दस दिन पहले मैं अपनी विधवा बहन को

विद्यालय में भर्ती कराने के बारे में पूछ-ताछ करने आया था । आपकी अध्यक्षा उस बात को भूल गई हैं । जान पड़ता है आपको वह बात खूब याद है," कमलपति ने कहा ।

"हाय, हाय ! आपकी ऐसी कोई बहन भी है क्या ? उसे विद्यालय में भर्ती करा दिया या नहीं ?"

"नहीं जी ! भर्ती होने से पहले ही वह बिचारी मर गई । मैंने खुद ही उसे मार डाला !" कहकर कमलपति हँस पड़ा ।

यह सुनकर अभिरामी को शक हो गया कि कहीं यह आदमी पागल तो नहीं है ! उसने सहमी आँखों से कमलपति को देखा ।

कमलपति ने उसके मन की बात ताड़ ली । बोला, "नहीं देवी जी ! आप का विचार ठीक नहीं है । मैं पागल नहीं हूं । बात वास्तव में यह है कि दस दिन पहले मैंने खुद ही अपनी बहन का सृजन किया था । तुरन्त उसको विधवा भी बना डाला था । जिस काम के लिए उसका सृजन हुआ था, वह पूरा होते ही मैंने उसका काम तमाम ही कर दिया । मैंने अपनी बहन का सृजन किया ही था अपने एक अनन्य मित्र की बहन को खोजने के लिए । जब मैंने तुम्हें यहाँ देख लिया......"

"क्या सच कहते हैं आप ? सचमुच भैया ने मेरी तलाश करने के लिए आप को भेजा था ? उसे मेरी याद भी थी क्या ?" अभिरामी ने बात काटकर पूछा ।

"सच पूछो, तो तुम्हारे सिवा और किसी-की याद ही उसे नहीं रही । तुम्हारी ही तलाश में वह मद्रास आया था । कुछ बहाना ढूँढ़ने ही के लिए नाटक कंपनी में नौकरी कर ली थी ।......"

कमलपति आगे कुछ कहता गया, पर अभिरामी का ध्यान उसकी बातों में नहीं था । वह न जाने किस विचार में मग्न हो गई ।

"क्या सोच रही हो ?" कमलपति ने पूछा ।

"जब से आपको देखा, कोई धुँधली-सी स्मृति मन में जाग रही है । लेकिन निश्चय नहीं हो पाता कि वह क्या है । उस दिन इस विद्यालय में आपको देखने का स्मरण ही मुझे नहीं है । और कहीं मैंने आपको नहीं देखा होगा क्या ? बहुत दिन पहले भी ?......"

"हाँ हाँ ! एक और स्थान में भी तुमने मुझे देखा है । वह भी अभी हाल में । मैं ही हूं सतारम् !" कमलपति ने कहा ।

"ओ हो ! अब याद आया !" अभिरामी यह कह कर खिल-खिलाकर हँस पड़ी । कमलपति के स्त्री वेश की याद करने पर उसे जोर की हँसी आई । अध्यक्षा नाराज़ न हो जायँ, इस डर से उसने बड़ी कठिनाई के साथ हँसी को रोक लिया ।

बाद में अभिरामी ने प्रश्नों की झड़ी लगाकर धीरे-धीरे यह जान लिया कि कमलपति और मुत्तय्यन में कैसे दोस्ती हुई । जब कमलपति ने बताया कि किस तरह मुत्तय्यन ने चहारदीवारी के पास खड़े-खड़े अभिरामी को देखा था और उसका गाना सुना था, तो अभिरामी की आँखें डबडबा आईं । यह जानकर कि मुत्तय्यन ने नाटक-कंपनी के साथ मलाया चलने का इरादा कर रखा था, वह विकल हो उठी ।

"हाय ! मुझ कलमुँही के ही कारण सारा किया-कराया काम मिट्टी में मिल गया । मेरा जन्म ही भैया को मुसीबत पहुँचाने के लिए हुआ है !" यह कहकर वह अभागिन बिलख-बिलख कर रोने लगी ।

कमलपति ने उसे सान्त्वना दी और ढाढस बँधाया । बोला, "अब भी कुछ बिगड़ नहीं गया, अभिरामी। तुम्हारे भैया को मुक्ति दिलाने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर है । मैं जानता हूं कि इस समय वह कहाँ है । दो-एक दिन में मैं वहीं जा रहा हूँ । सब तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं । विश्वास रखो, अगले मास तुम्हारा भाई इस देश में नहीं रहेगा । बिलकुल सुरक्षित स्थान पर पहुंच जायेगा । यह काम मेरे जिम्मे रहा । तुम चिन्ता न करना !"

४४

बुर्केवाली

मदुरा ओरिजिनल मीनाक्षी सुन्दरेश्वर नाटक-कंपनी के एक तबलची थे मुहम्मद शरीफ़। साजिंदा मंच के एक कोने में पर्दे के पीछे ही बैठा करते थे, इसलिए बहुत कम लोगों ने उनको देखा होगा।

एक दिन रात को जनाब मुहम्मद शरीफ़ साहब एक बुर्केवाली औरत को लेकर मद्रास के (एगमोर) एलुंबूर स्टेशन पर पहुंचे। औरत को जनाना डिब्बे में बिठाया और खुद मर्दाना डिब्बे में जा बैठे।

अगले दिन बड़े सवेरे जनाब शरीफ़ साहब और बेगम साहबा कोल्लिडम के पास पुरसूर नामक स्टेशन पर उतरे और एक बैलगाड़ी लेकर पश्चिम की तरफ़ रवाना हुए। जिस सड़क से उनकी गाड़ी गई, वह कुछ दूर आगे जाकर कोल्लिडम के किनारे वाली बड़ी सड़क से मिली। उस सड़क पर सात-आठ मील चलने के बाद एक गाँव आया जिसकी ज्यादातर आबादी मुसलमानों की थी। मुहम्मद शरीफ़ ने गाड़ी को वहीं रुकवा दिया और गाड़ीवाले को वहीं इन्तज़ार करने के लिए कहकर बुर्के-वाली के साथ कोल्लिडम की घाटी में उतर चले।

*** *** ***

मुत्तय्यन जीर्ण मन्दिर के पास जामुन के पेड़ के नीचे लेटा हुआ मन के पर्दे पर यह चित्र अंकित करने का प्रयत्न कर रहा था कि क्रोध में आने पर कल्याणी की भौंहें किस लुनाई के साथ टेढ़ी हो जाती हैं। हज़ार प्रयत्न करने पर भी जब यह न हो सका, तो उसने कल्याणी की मधुर हँसी और सुन्दर दन्त-पंक्ति का चित्र अंकित करने का प्रयत्न किया। बीच में यह भी विचार उसके मन में उठा कि आज कल्याणी के आने में और कितनी देर बाकी है? यह जानने के लिए वह आकाश में सूरज की तरफ़ देखने लगा।

मुत्तय्यन के मन में दिन पर दिन बेचैनी बढ़ती जा रही थी। एक ही जगह अजगर की तरह पड़ा रहना उसकी प्रवृत्ति के ही विरुद्ध था न? जब कभी दूर सड़क पर बैलगाड़ी के चलने की आवाज़ आती, वह लालायित हो उठता कि जाकर गाड़ी-वाले को उतार दूँ और खुद बैलों को हाँकूँ। राजन-नहर में नयी बाढ़ के पानी में कूदकर तैरने और खेलने की बलवती इच्छा मन में उठती, तो पड़े-पड़े छटपटा उठता। दूर पर कोई गाय "म्हा!" करती तो उसे इच्छा होती कि उसको तालाब में

नहलाऊँ। यह भी चाह होती कि पूंकुलम गाँव के अन्दर जाऊँ और अपने घर को एक बार देख आऊँ। प्रातःकाल के समय, गाँव के मन्दिर के प्रांगण में प्रवाल-मल्लिका के पेड़ के नीचे फूलों की जो सेज बिछी होती थी, उसे जाकर देखने के लिए वह तरस उठता।

यदि इन सब इच्छाओं पर वह काबू पा सका तो उसका एक-मात्र कारण कल्याणी थी। वह रोज़ एक बार उसके पास न आती तो मुत्तय्यन के लिए उस एकान्त स्थान में इतने दिन काटना असंभव होता। कल्याणी की बाट जोहते-जोहते सवेरे का सारा समय कट जाता। दोनों साथ-साथ मलाया जायेंगे, वहाँ सुख का जीवन बितायेंगे। फिर चिन्ता काहे की?—बस, इसी तरह कल्पना की उड़ान में शाम का अधिकांश समय गुज़र जाता।

घने पेड़ की शाखाओं के बीच में से मुत्तय्यन ने सूरज को देखा और अनुमान लगाया कि कल्याणी के आने में अभी एक घंटा बाकी होगा। उसे शरारत सूझी कि कल्याणी के आते समय में कहीं छिप जाऊँ! सोचा, मुझे यहाँ न पाकर कल्याणी भयभीत होगी और घबराहट के साथ चारों तरफ देखेगी। उस समय उसकी भौंहों का वह टेढ़ापन, उसकी आँखों की वह चंचलता क्या ही मनोहर होगी!

मुत्तय्यन यह सोच ही रहा था कि इतने में पौधों के हिलने की सरसराहट हुई। वह चौंककर उठा और उस तरफ देखा। उसके आश्चर्य व घबराहट की सीमा न रही जब उसने सामने एक बुर्केवाली को आते देखा! झट उसने रिवाल्वर उठा लिया और कड़ककर पूछा, "कौन हो तुम?"

बुर्के के अन्दर से मधुर खिलखिलाहट की आवाज़ आई। अगले ही क्षण बुर्का उतारकर फेंक दिया गया और उसके अन्दर से एक अनुपम रूपवती युवती का मोहक रूप प्रकट हुआ।

"अरे कमलपति! तुम हो? पल भर में तुमने मुझे घबराहट में डाल दिया था। सचमुच ही मैं डर गया था।" मुत्तय्यन ने कहा।

हाँ! बुर्केवाली स्त्री के रूप में कमलपति ही आया हुआ था। उसे मालूम था कि कोल्लिडम के किनारे, मुत्तय्यन को पकड़ने के लिए पुलिस काफी दौड़-धूप कर रही है। इसी कारण उसने छद्मवेश में मुत्तय्यन के पास जाना उचित समझा था। उस दिन अभिरामी को अपना परिचय देते हुए जब उसने कहा, "मैं ही हूँ सतारम्!" तभी उसे यह तरकीब सूझी थी।

परन्तु हाय, दुर्भाग्य! स्त्रीका वेश उस कमबख्त को इतना सज गया था कि कल्याणी ने धोखा खा लिया! कोई आश्चर्य नहीं कि उसने उसे एक युवती ही समझ लिया। आह! इस गलत फहमी का कितना भयानक परिणाम निकला।

४५

शास्त्री जी की हँसी

नाटक में खलबली मचने के बाद सर्वोत्तम शास्त्री की पत्नी उनपर इतनी क्रुद्ध हुई कि रात भर उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। यहाँ तक कि जब वे गाँव लौटने लगे तो रास्ते भर में वह शास्त्री जी को उलाहना देती रही। "बलिहारी इस नौकरी को! धन्य है यह पेट-पूजा! भोली-भाली लड़कियों को मुसीबत में फँसाना ही तुम्हारा पेशा है क्या? बड़े आये चोर पकड़ने वाले! यह भी खूब रही!..."

मीनाक्षी ने केवल वाक्‌बाणों का ही प्रयोग नहीं किया, बल्कि आँसू भी बहाने लगी। यह सोचकर उसका कलेजा जलने लगा कि शास्त्री जी अपना उल्लू सीधा करने के लिए उसे और अभिरामी को नाटक का झाँसा दिखला कर लुभा ले गए। शास्त्री जी की यह चाल उसके लिए असह्य हो रही थी।

लेकिन शास्त्री जी की मनोदशा श्रीमती जी से एकदम भिन्न थी। चोर पकड़ा तो नहीं गया, फिर भी उसका पता तो लग ही गया न! इससे उनके प्रति पुलिस विभाग का शक भी दूर हो गया था। शास्त्री जी का मन इस कारण बाँसों उछल रहा था। पर वह अपनी खुशी पत्नी के सामने प्रकट नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने क्षमा-याचना का बहाना किया। और पश्चात्ताप का स्वाँग रचकर किसी तरह पत्नी को समझाया। श्रीमती जी को गाँव पहुँचाने के बाद उन्होंने सोचा कि मुत्तय्यन का मामला जब तक नहीं निबटेगा, तब तक घर पर मेरे मन को चैन नहीं पड़ेगी। अतः उसे जेल पहुँचाने के बाद ही अब घर के अन्दर क़दम रखूँगा। इस संकल्प के साथ वह घर से निकल पड़े।

कोल्लिडम के तट पर पुलिस की कार्रवाइयाँ ज़ोरों से जारी थीं। पश्चिम में बाँध से लेकर पूर्व में सारा नदी-प्रदेश कई हिस्सों में बाँट दिया गया और प्रत्येक हिस्से में एक-एक पुलिस-दल चप्पे-चप्पे की ख़ाक छान रहा था। सब-इन्सपेक्टर सर्वोत्तम शास्त्री के हिस्से में पुरशूर स्टेशन से पूंकुलम तक का हिस्सा आया था। इस इलाके का जंगल और स्थानों से अधिक घना था। यहीं पर लोगों की बस्तियाँ भी थोड़े-थोड़े फ़ासले पर बड़ी संख्या में बसी हुई थीं। पहले यह सोचा गया था कि पुंकुलम मुत्तय्यन का अपना ही गाँव है, इसलिए उस गाँव के नज़दीक मुत्तय्यन नहीं आया होगा। इस कारण शुरू में उस प्रदेश को पुलिस ने छोड़ दिया था। परन्तु बाद में शास्त्री जी ने निश्चय किया कि कोई भी स्थान बिना तलाश किए न छोड़ा जाय।

उनके ऐसा निश्चय करने का एक ख़ास कारण भी था।

शास्त्री जी ने अपने दल-बल सहित पुरशूर में डेरा डाल रखा था। वहाँ से रोज पुलिस के दो-तीन दल अलग अलग स्थानों में तलाश करने निकलते और शास्त्री जी साइकिल पर सवार होकर नदी-तट के साथ वाली सड़क से निकला करते थे।

एक दिन जब वह इस तरह जा रहे थे, तब पुंकुलम के पास एक सुन्दर युवती को गागर लिए अकेले जाते देखा। दिन के करीब बारह बजे थे। शास्त्री जी ने देखा, युवती कोल्लिडम नदी में नहा-धोकर भीगे कपड़े पहने जा रही है। पहले उनका ध्यान उस युवती की सुन्दरता की तरफ़ गया। अचानक उन्हें याद आया कि अभिरामी भी पूंकुलम की ही है। सोचा, हो सकता है यह लड़की अभिरामी की रिश्तेदार हो। फिर विचारों का रुख बदला। उन्होंने सोचा, जब गाँव के पास राजन नहर में पानी इतना भरा जा रहा है, तो यह लड़की इस धूप में इतनी दूर नदी में जाकर क्यों नहाने आ रही है? उन्हें इससे बड़ा आश्चर्य हुआ।

शास्त्री जी इसी तरह सोचते जा रहे थे कि इतने में सामने पूंकुलम के धर्मकर्त्ता पिल्लै को आते देखा। पिल्लै खेत की जुताई की देख-भाल करके लौट रहे थे। शास्त्री जी उन्हें जानते थे, इसलिए साइकिल से उतर कर उनसे बातें करने लगे। पिल्लै की बातों से शास्त्री जी जान गए कि उस सुन्दरी युवती का नाम कल्याणी है। एक समय था जब उसका ब्याह मुत्तय्यन के साथ किए जाने की चर्चा थी,—उसी मुत्तय्यन के साथ जो अब मशहूर डाकू बन गया है शास्त्री जी ने यह भी जान लिया कि इस समय कल्याणी विशाल सम्पत्ति की अधीश्वरी है।

ये सब बातें जानने के बाद शास्त्री जी के मन में न जानें क्यों कुछ खलबली-सी मच गई। उनकी अन्तरात्मा ने कहा कि मुत्तय्यन की खोज में और इस युवती में कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है। पर प्रश्न उठा कि उसका पता कैसे लगाया जाय? यदि खुली जाँच करते हैं और वह निरर्थक साबित हो जाती है, तो बुद्धू न बनना पड़ेगा।

उस दिन रात के ग्यारह बजे तक शास्त्री जी कैंप नहीं लौटे। उसके बाद वह बिस्तरे पर लेट तो गए, लेकिन उन्हें नींद नहीं आ रही थी। पूंकुलम, कल्याणी, मुत्तय्यन और अभिरामी; बस उनके विचार इन्हीं बातों में उलझ रहे थे। वह बेचैन हो उठे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अगले दिन पूंकुलम के आसपास के जंगलों को छान डाला जाय।

अगले दिन सवेरे जब वह पुलिस के आदमियों को उस दिन की कार्रवाइयों के सम्बन्ध में आदेश दे रहे थे, तब रेल्वे स्टेशन से एक बिना वर्दी के पुलिस वाले ने आकर ख़बर दी कि सवेरे की गाड़ी में मद्रास से एक मुसलमान एक बुर्केवाली के

साथ आया और पच्चापुरम (बादशाहपुर) नामक गाँव के लिए बैल-गाड़ी में रवाना हुआ।

यह सुनकर शास्त्री जी हँसने लगे, और बोले, "वाह वाह! यानी तुम्हारा मतलब यह है कि चोर वापस मद्रास गया और वहाँ से बुर्केवाली बन, एक मुसलमान को साथ लेकर हमारे जाल में फँसने के लिए यहीं वापस आया है! क्यों? यही है न तुम्हारा मतलब ?"

वास्तव में बात यह थी कि इन दिनों शास्त्री जी को किसी भी खुफ़िया पुलिस की बात पर विश्वास नहीं होता था। उनके मन में यह धारणा जमकर बैठ गई थी कि मुत्तय्यन का पता और कोई नहीं लगा सकता, केवल मैं ही लगा सकता हूँ।

फिर भी पुलिस वाले की बात की एकदम उपेक्षा करने के लिए भी वह तैयार नहीं थे। मुँह से व्यंग-बाण छोड़ते-छोड़ते वह मन ही मन यह सोच रहे थे कि आखिर पच्चापुरम पूंकुलम के पास ही तो है! वहाँ जाकर इस बुर्केवाली के भी भेद का पता लगा लिया जाय, तो क्या हर्ज है?

४६

गागर लुढ़क गई

पाच्चापुरम के बाज़ार में सचमुच ही एक बैल-गाड़ी खड़ी थी। शास्त्री जी ने सड़क पर से ही उसे देख लिया और बिना वर्दी के पुलिस वाले को यह पता लगाने के लिए भेजा कि गाड़ी में कौन आया है? गाड़ीवान एक मिठाई की दूकान में बैठा 'इडली' खा रहा था। पूछने पर उसने बताया कि एक मुसलमान अपनी बीबी के साथ आए हैं और तीसरे पहर तक स्टेशन लौटने के लिए कह गए हैं! पुलिसवाले ने गाँव के अन्दर जाकर एक दो मुसलमानों से पूछ-ताछ की कि एक बुर्केवाली औरत और एक मुसलमान यहाँ आए थे क्या? तो वह लोग झगड़ा करने पर आमादा हो गए और कहने लगे, "वह आए होंगे, नहीं आए होंगे। तुम्हें उससे मतलब?"

पुलिसवाले ने लौटकर शास्त्री जी को सारी बात सुनाई। शास्त्री जी ने मन में कहा, मेरा पहला अनुमान सही निकला। फिर भी उन्होंने पुलिस वाले को आज्ञा दी कि वहीं रहकर गाड़ी पर निगरानी रखे। यह आज्ञा देकर वह आगे निकल गए।

शास्त्री जी का सारा ध्यान पूंकुलम पर और ख़ासकर कल्याणी पर केन्द्रित था। जो लोग भेद का पता लगाने में लगे रहते हैं, उनमें एक विशेष प्रकार की शक्ति विकसित हो जाती है, जैसे शिकारी कुत्तों की सूँघने की शक्ति प्रबल होती है। रेलों में ही देखिए! पचास आदमी बैठे होते हैं, लेकिन टिकट एक्ज़ामिनर एक ख़ास व्यक्ति के पास जाकर टिकट माँगता है। सारे डिब्बे में उसी एक आदमी के पास टिकट नहीं होता।

इसी अज्ञात शक्ति के बल पर शास्त्री जी को यह शक हो गया कि हो-न-हो मुत्तय्यन का भेद इस कल्याणी के ही ज़रिये खुलेगा। इसलिए उन्होंने पूंकुलम की तरफ तेज़ी से साइकिल दौड़ाई।

जब वह पूंकुलम के पास पहुँच गए तो देखा, कल्याणी गागर लिए आ रही है। उसके केश अस्त-व्यस्त थे। साफ़ मालूम हो रहा था कि उसने स्नान नहीं किया है। उसका वह रूप देखकर शास्त्री जी घबरा गए। सोचा, कहीं यह लड़की पागल तो नहीं हो गई है?

उस स्थान पर सड़क के साथ-साथ नहर बह रही थी। नहर पार करने के लिए सड़क से ज़रा नीचे उतरकर बाँस का पुल पार करना होता था। आगे पूंकुलम गाँव तक पगडंडी चली थी।

कल्याणी सड़क के छोर तक पहुँच गई थी ! उसके मुँह से कुछ शब्द निकल रहे थे । शास्त्री जी उसकी बातें सुन तो नहीं सके, लेकिन इतना समझ गए कि वह गुस्से में है । शास्त्री जी काफ़ी नज़दीक आ गए थे, फिर भी कल्याणी ने उन्हें नहीं देखा । बल्कि ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सामने की कोई भी चीज़ उसे नज़र नहीं आ रही है । उसके पैर लड़खड़ा रहे थे । सड़क के छोर तक पहुँचने पर जहाँ ढलान में उतरना था, कल्याणी ने बिना देखे भाले ही क़दम बढ़ा दिए । उसका पैर चूक गया और धड़ाम से नीचे गिर पड़ी । कमर पर की गागर भी ज़मीन पर गिर पड़ी और खन-खनाता हुआ लुढक कर प्रवाह के पास जाकर पड़ा रहा । उसके अन्दर से खाने की पोटली बाहर निकल आई और पानी में गिर पड़ी । गिरते ही वह खुल भी गई और फ़ौरन मछ-लियों ने उस पर धावा बोल दिया । बिचारे सुब्रह्मण्यन का मध्यान्ह-भोजन मछलियों के पेट में जाने लगा ।



ये सब बातें आनन-फानन हो गईं । कल्याणी संभलकर उठ बैठी और चारों तरफ देखा । इतने में शास्त्री जी ने दौड़कर गागर को पानी में बहने से बचाया और साथही खाने की पोटली को प्रवाह के बीच में बहा दिया ।

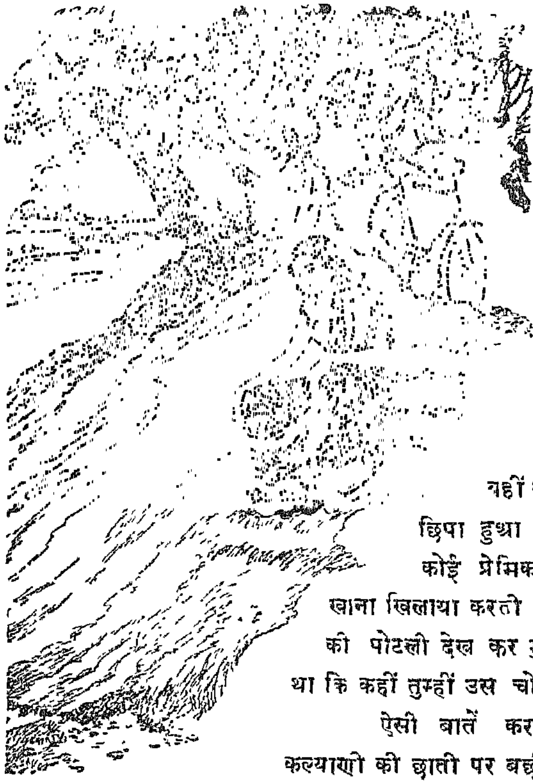
गागर लाकर कल्याणी के पास रखते हुए शास्त्री जी ने पूछा, "क्या हुआ बेटी ? कैसे गिर पड़ी ?"

कल्याणी ने कुछ जवाब नहीं दिया और उद्भ्रान्त नेत्रों से शास्त्री जी को

देखती रह गई।

"खाने की पोटली पानी में बह गई है। क्या किया जाय? हाँ, यह खाना किसके लिए लाई थी, बेटी?" शास्त्री जी ने पूछा।

यह सुनकर कल्याणी खिलखिलाकर हँस पड़ी। उतनी भयानक, उतनी हृदयविदारक हँसी शास्त्री जी ने पहले कभी सुनी नहीं थी। उनके रोंगटे खड़े हो गए।



"खाना! किस के लिए लाई खाना?" कल्याणी भिनभिनाई। सुनकर शास्त्री जी का शरीर सिहर उठा।

फिर भी जी कड़ा करके बोले, "तुम्हारी उमर की लड़कियों के लिए इस दुपहरी में यहाँ अकेले आना-जाना ठीक नहीं है, बेटा। नहीं जानती, यहीं नदी तट पर डाकू मुत्तय्यन छिपा हुआ है? सुनता हूँ कहीं उसकी कोई प्रेमिका है। वही उसको रोज़ खाना खिलाया करती है। तुम्हारी गागर में खाने की पोटली देख कर मुझे यहाँ तक शक हो गया था कि कहीं तुम्हीं उस चोर की प्रेयसी तो नहीं?..."

ऐसी बातें करने के बजाय शास्त्री जी कल्याणी की छाती पर बर्छी चला देते, तो भी बेहतर होता। लेकिन आजकल की दुनियाँ में दया और मानवता का विचार करने से काम कैसे चले? नौकरी में तरक्की भी मिले कैसे?

शास्त्री जी का तीर ठीक निशाने पर लग गया। कल्याणी उठ खड़ी हुई। उस में मानों जोश सवार हो गया। बोली, "कहा! चोर की प्रेयसी? कौन, मैं? नहीं नहीं हज़ार बार नहीं। उसकी प्रेयसी तो और ही कोई है। वह जो जंगल है, उसके बीच में एक टूटा-फूटा मन्दिर है। वहाँ जाकर देखिए न? आपको पता चल

जायगा कि चोर की प्रेयसी वास्तव में कौन है। प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे से गले लग रहे हैं वहाँ।"

जोश में आकर इतना कहने के बाद न जाने कल्याणी को क्या सूझा। शायद वह पछताने लगी कि मैंने यह क्या कर डाला? मिनट भर चुप रहने के बाद उसने सहम कर पूछा, "अजी, आप कौन हैं?"

शास्त्री जी के चेहरे पर ज़रा भी परिवर्तन नहीं हुआ। बोले, "क्यों बेटा, मुझे पहिचाना नहीं तुमने? मैं यहाँ का मिस्त्री हूँ, नहर की देख-रेख करने वाला। मेरा क्या वास्ता है इन सब पचड़ों से? अपने काम से काम। मैं तो तुम्हें गिरते देखकर रुक गया था। तुम बाँस का पुल सावधानी से पार करके घर लौट जाना बेटा। बस, जब तुम पुल लाँघ जाओगी, मैं भी अपना रास्ता नापूँगा।"

"सच-सच बताइए। आप पुलिस के तो नहीं हैं?" कल्याणी ने फिर पूछा।

"क्या, मैं पुलिस का आदमी नज़र आ रहा हूँ?" कहकर शास्त्री जी हँसने लगे।

कल्याणी ने गागर उठा लिया और पुल पार करके घर की तरफ गई। शास्त्री जी भी दिखावे के लिए कुछ दूर तक सड़क के साथ-साथ गए।

शास्त्री जी को यह तो मालूम हो गया कि गुप्तस्थल कहाँ है। पर कल्याणी का रहस्य ठीक-ठीक मालूम नहीं हो रहा था। लेकिन उन्होंने सोचा वह सब बाद में मालूम कर लिया जाएगा। अब यह लड़की यहाँ रहेगी तो काम में खलल पहुँचेगा। यही सोचकर उन्होंने कल्याणी को घर भेज दिया था।

कल्याणी पुल पार करके गाँव की तरफ मुड़ी ही थी कि इतने में कुछ पुलिस वाले सड़क पर आ निकले। शास्त्री जी ने झट एक रुक्का लिखकर एक पुलिसवाले के हाथ में दिया और कहा, "मेरी साइकिल लेकर तेज़ी से जाओ और यह रुक्का पाच्चापुरम में पहरा देने वाले अपने आदमी को देकर कहो कि वह फौरन रायवरम के थाने में इसे पहुँचा आय। उससे कहना, बुर्केवाली की खोज ज़रूरी नहीं है। वह और उसको बुर्केवाली! चलो जल्दी करो।"

उसके जाने के बाद शास्त्री जी ने दूसरे पुलिस वालों से कहा, "देख लो बन्दूकें ठीक से भरी हुई हैं या नहीं। होशियार हो जाओ। शिकार पास पहुँच गया है।"

४७

धरती लाल हुई

"मुत्तय्या ! तुमने भी छिपने की जगह खूब ढूंढ रखी है। यद्यपि तुमने विस्तृत रूप से समझाया था, फिर भी ठीक जगह को ढूंढते-ढूंढते मैं परेशान हो गया। ग़ज़ब का घना है यह जंगल। इसके अन्दर सही रास्ते का पता लगाने की कोशिश करते नाकों-दम हो गया।" कमलपति ने मुत्तय्यन से यह कहा और फिर बोला, "यार ! ऐसी स्थिति का वर्णन करने वाला एक गीत है न ? क्या है वह ?... हाँ ! अब याद आया। भारती का गीत !"

यह कहकर कमलपति गाने लगा:—

"निविड़ घन में खोजकर तुमको थकी मैं !!
स्निग्ध छाया-सुखद तरुवर
विविध रसमय मधुर मधुफल।
हर दिशा में व्याप्त गिरिवर
गुनगुनाती नदी बहती; चरण-चिन्ह न पा सकी मैं ॥"

"पर्वतों को छोड़कर बाकी सब वर्णन वर्तमान स्थिति के लिए खूब फबता है न ?" गाना समाप्त करने के बाद कमलपति ने पूछा।

मुत्तय्यन बोला, "इन सबसे अधिक फबने वाली पँक्तियों को तो तुमने छोड़ ही दिया।" सुनो:—

"रूप तेरा देख सुध-बुध खो गया मैं कामिनी !
मिलन की है कामना बस ना न करना भामिनी ॥"

गाते-गाते मुत्तय्यन कमलपति के चारों तरफ घूम-घूम कर उसी तरह नाचने लगा, जैसे रंगमंच पर चोर के वेश में नाचा करता था।

"अरे ! तुम लोग कहीं पागल तो नहीं हो गए हो ?" अचानक यह आवाज़ सुनकर दोनों मित्र चौंक पड़े। मुहम्मद शरीफ आँखें तरेर कर उनको देख रहे थे।

"अरे ! ऐसा लगता है कि तुम्हें जान बचाने का ख्याल ही नहीं। फाँसी पर झूलना ही चाहते हो क्या ? उधर सड़क पर पूरब से पच्छिम की तरफ एक सौ लाल पगड़ी वाले गये हैं और पच्छिम से पूरब की तरफ भी एक सौ ! और इधर तुम लोग दीवानों की तरह नाच-गा रहे हो !" मुहम्मद शरीफ ने उलाहना दिया।

कमलपति उनके पास आया और बोला, "भाई साहब, हम से ग़लती हो

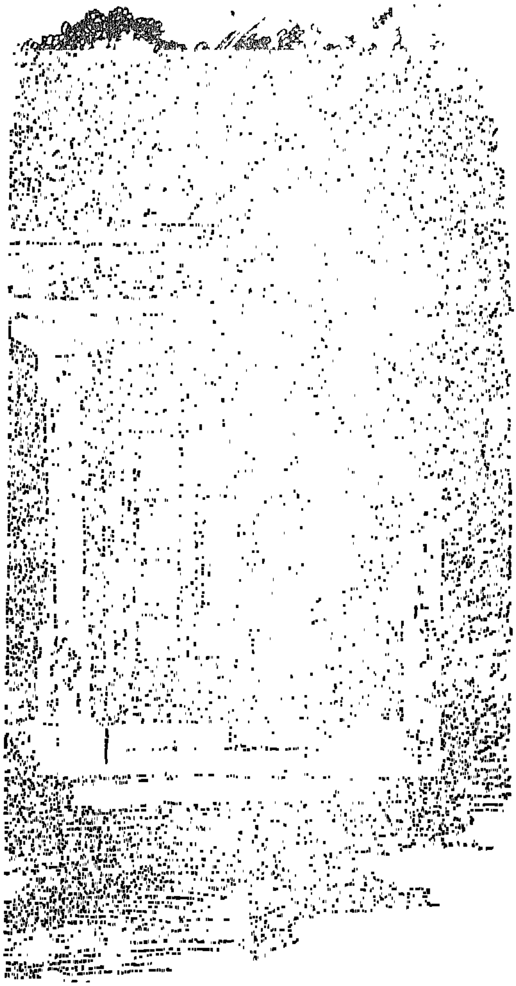
गई, माफ़ कर दीजियेगा । गुस्सा न कीजिये । अभी आप आगे चलिये । मैं पीछे-पीछे आता हूं ।"



"हाँ हां ! मै तो जा ही रहा हू । तुम्हें मरने को सूझी है, पर मुझे तो जान

प्यारी है। मैं क्यों इस झमेले में फँसूं ? देखो, अभी मैं जाता हूं। पाँच मिनट के अन्दर तुम मेरे पास पहुंच गईं तो ठीक है। वरना तुम्हें तलाक देकर चलता बनूंगा। समझीं ?" मुहम्मद शरीफ ने हँसकर कहा।

इसके बाद उन्होंने मुत्तय्यन के कंधे पर हाथ रखकर सहानुभूति के स्वर में कहा, "देखो लड़के ! होशियार रहना। ऐं ?" अगले मिनट वह जंगल में घुसकर आँखों से ओझल हो गये।



कमलपति बोला, "मुत्तय्या ! मुझे भी जाना ही होगा। जी चाहता है कि न जाऊँ। यहीं तुम्हारे साथ इस जंगल में सारी ज़िन्दगी बिताने की इच्छा होती है। लेकिन हमारे इच्छा करने से क्या फायदा ? जो बात संभव नहीं उसके बारे में सोचना ही बेकार है। खैर ! मैं जाता हूँ। लेकिन मैंने जो कुछ कहा, ठीक-ठीक याद रखना।"

"कमल ! अगर हमारी योजना कहीं असफल हो जाय और मुझे कुछ खतरा हो जाय तो अभिरामी की रक्षा का भार तुम्हारे ही कंधों पर होगा," मुत्तय्यन ने रुद्ध कंठ से कहा।

"यह कैसी बात कर रहे हो, मुत्तय्यन ! हमारी योजना असफल कैसे हो सकती है ? सब ठीक होगा। देखते रहना। अभी दस ही दिन में तुम शरीफ

साहब के साथ कारैकाल जाकर जहाज़ पर चढ़ जाओगे। मद्रास में हम लोग तुमसे मिलेंगे। अभिरामी भी साथ होगी। लेकिन हाँ! अभिरामी को देखकर कहीं रोने-कलपने न लग जाना! अच्छा भाई। अब तो मुझे जाना ही होगा।"

यह कहकर कमलपति चलने लगा। मुत्तय्यन का जी भर आया। उससे रहा नहीं गया। उसने कमलपति को पकड़कर अपनी तरफ खींचा और असीम स्नेह के साथ छाती से लगा लिया।

"कमल! तुम हज़ार कहो, फिर भी मुझे विश्वास नहीं होता। हो सकता है, यही तुम्हारी मेरी आखिरी मुलाकात हो। कौन जाने?" कहते-कहते मुत्तय्यन की आँखें भर आईं।

कमलपति का भी कंठ रुँध गया था। फिर भी वह प्रयास करके मुस्कुराकर बोला, "जाने दो इन मनहूस बातों को! यह बताओ कि अगर इस समय श्रीमती कल्याणी देवी हमें देख लें तो क्या समझेंगी?"

सुनकर मुत्तय्यन खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला, "समझेंगी क्या? आफ़त ही समझ लो। खैर! अब देर हो गई। तुम जाओ।"

"ओ हो! कल्याणी के आने की देर हो गई, यही है न तुम्हारा मतलब? ज़रा मैं भी तो उसे देख लूँ! एक बार सौत के साथ झगड़ा करके ही क्यों न जाऊँ?" कमलपति ने कहा।

कमलपति ने बुर्का समेटकर हाथ में उठा लिया और हँसते-हँसते वहाँ से चल दिया।

❀❀❀ ❀❀❀ ❀❀❀

कमलपति को गये करीब तीस-चालीस मिनट हुए होंगे। मुत्तय्यन हमेशा की तरह पेड़ के तने का सहारा लेकर आराम से बैठा यह सोच रहा था कि कल्याणी अब तक क्यों नहीं आई? उसे ख्याल आया कि यदि कमलपति की बात सच निकली, यदि स्त्री वेष-धारी कमलपति के साथ उसे बातचीत करते हुए कल्याणी ने देख लिया होता तो क्या सोचती? क्या वह उस पर शक करती? नाराज़ होती, या आँसू बहाती? मामूली सी बातों पर भी जब कल्याणी को गुस्सा आ जाता है तो प्रलय मचा देती है। और फिर ऐसी गंभीर बात हो जाय तो पूछना ही क्या? ज़मीन-आसमान एक कर देती। हाँ, बाद में जब सचाई उसे मालूम हो जाती, तब क्या करती? गुस्सा सारा काफ़ूर हो जाता और वह हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाती। अच्छा-ख़ासा मज़ाक हुआ होता।

वह कुछ ऐसे ही विचारों में डूबा हुआ था कि अचानक सामने झाड़ियों के बीच में कोई लाल चीज नजर आई। देख कर वह चौंक पड़ा। अरे, यह क्या लाल

लाल ! वह, पेड़ों के पीछे भी ! वहाँ ! उधर ! अरे, चारों तरफ लाल पगड़ी वाले ! कहीं सपना तो नहीं ?

मुत्तय्यन का दिल नगाड़े की तरह बजने लगा। उसने आँखें मलीं और फिर देखा। नहीं सपना नहीं, न भ्रम। सचमुच ही पुलिस वाले उसे चारों तरफ़ से घेरे हुए हैं। बस, आख़िरी घड़ी अब आ गई।

ज्यों ही यह सत्य मुत्तय्यन पर प्रकट हुआ, उसका पशोपेश भी तत्काल दूर हो गया। उसके मन में अब जरा भी घबराहट नहीं रही। आख़िर इधर तीन वर्षों से वह इसी बात की तो हर रोज प्रतीक्षा करता था न ? उसके सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। उसने झट रिवाल्वर उठा लिया और उछल कर खड़ा हो गया। अगले क्षण उसके रिवाल्वर से गोलियाँ साँय-साँय करती निकलीं और सारा वन-प्रदेश गोलियों की आवाज से गूँज उठा।

ठीक इसी समय पुलिस ने भी गोली चलाई। घुटने के नीचे ही गोली चलाने का पुलिस को हुक्म था। पुलिस की कई गोलियाँ इधर-उधर बिखर गईं। आख़िर एक गोली उसके पैर में लगी और वह धड़ाम से नीचे गिरा। उसके गिरते समय और तीन-चार गोलियाँ उसके शरीर पर लगीं। एक कंधे पर, एक पसली पर, एक जाँघ पर। मुत्तय्यन के शरीर से खून के फौव्वारे निकल पड़े। जहाँ वह गिरा उसके आस-पास की जमीन खून से लाल हो उठी।

४८

हृदय विदीर्ण हुआ

राजन् नहर के बाँस के पुल को पार करने के बाद कल्याणी की चाल धीमी पड़ी। न जाने क्यों उसे घर जाने की इच्छा ही नहीं हुई। उसके पैर पूंकुलम की तरफ जा रहे थे, पर उसका मन जीर्ण मन्दिर के ही आस-पास मंडरा रहा था।

जामुन के पेड़ के नीचे जो दृश्य उसने देखा था, उसकी याद करके उसका खून खौलने लगा। हृदय असह्य वेदना के मारे छटपटा उठा, मानो टुकड़ों में बंट गया हो। उसने हाथ से दिल थाम लिया।

हठात् उसे एक घटना याद आई जो कई साल पहले उसी जामुन के पेड़ के नीचे घटी थी। उन दिनों मुत्तय्यन हाई स्कूल में पढ़ रहा था और छुट्टियों में गाँव लौटा था। उसके आने की ख़बर पाकर कल्याणी खुशी के मारे फूली नहीं समाई और उससे मिलने के लिए जीर्ण मन्दिर गई थी। उससे पहले ही मुत्तय्यन वहाँ पहुँच कर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जहाँ आज बैठा था, वहीं उस दिन भी बैठा हुआ था। कल्याणी जब उसके पास गई, तो उसने उठ कर उसे छाती से लगा लिया, ठीक उसी तरह, जैसे आज उस 'बाजारू औरत' को छाती से लगाया था!

उस दिन की बातचीत भी सारी की सारी कल्याणी को याद आई। जीर्ण मन्दिर के अन्दर मूर्ति नहीं थी न? इसलिए दोनों ने निश्चय किया था कि बड़े होने पर मन्दिर का जीर्णोद्धार करेंगे और उसके अन्दर मूर्ति की प्रतिष्ठा करेंगे। तब प्रश्न उठा कि किस मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाय? मुत्तय्यन ने श्रीकृष्ण का नाम लिया, तो कल्याणी ने उग्र रूप से उसका विरोध किया। "श्रीकृष्ण ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा?" मुत्तय्यन ने कहा। पर कल्याणी अपनी बात पर अड़ी रही। मुत्तय्यन ने भगवान् कार्त्तिकेय का नाम लिया तो कल्याणी को वह भी ठीक नहीं जँचा। इस तरह एक एक करके सबके नाम कट हो गए, तो मुत्तय्यन बोला, "देखो, अब केवल श्रीराम बाकी बचे हैं। अगर तुमने उनको भी नापसंद कर दिया, तो तुम्हें ही देवी बन कर मंदिर में बैठना पड़ेगा।"

"मैंने कब कहा कि श्रीराम मुझे नापसंद हैं? राम की ही मूर्ति की प्रतिष्ठा करेंगे," कल्याणी ने कहा।

मुत्तय्यन ने आश्चर्य के साथ पूछा कि और सबको छोड़कर तुमने श्रीराम को क्यों पसंद किया? पहले कल्याणी ने इसका ठीक जवाब नहीं दिया। मुत्तय्यन के

आग्रह करने पर वह बोली, "और सब देवताओं की दो-दो या उससे भी अधिक पत्नियाँ हैं। केवल श्रीराम ही ऐसे हैं जिनकी एक ही पत्नी है। इसीलिए मैं उनको अधिक पसंद करती हूँ।"

मुत्तय्यन ने तुरन्त कल्याणी को उठा कर अपनी गोद में बिठा लिया और बोला, "कल्याणी! मैं भी भगवान् रामचन्द्र जी की तरह रहूँगा। तुम्हारे सिवा और किसी स्त्री की तरफ आँख उठाकर नहीं देखूँगा।"

आज इस घटना की याद करके कल्याणी व्यथित हो उठी। वही मुत्तय्यन आज कैसे बदल गया! अरे धूर्त! लम्पट कहीं के! रेलवे स्टेशन पर लोग तुम्हारे बारे में जो बातें कर रहे थे, आखिर वे सब सच ही थीं क्या? हाय! मैं भी किस बुरी तरह से धोखा खा बैठी! सोचा था कि जिस तरह मेरे मन में तुम्हारे सिवा और किसी के लिए स्थान नहीं है, मेरे प्रति तुम्हारे मन में भी वैसी ही भावना होगी। यही समझ कर तुम्हारी खातिर यह सारी धन-दौलत, घर-बार सब छोड़कर आने को तैयार हो गई थी। हाय! कैसी मूर्ख हूँ मैं! तुमने भी मुझे खूब बुद्धू बनाया। हे ईश्वर! यह कैसा संसार है! छल-कपट, झूठ और फ़रेब ही यहाँ का कानून है क्या? ऐसे संसार में वह—दिवंगत पुण्यपुरुष—सचमुच ही महात्मा थे। वह पुण्यात्मा थे, इसलिए इस पापी के साथ अधिक दिन बिताना पाप समझकर चल बसे!

कल्याणी इस प्रकार सोचती जा रही थी कि अचानक उसका अँगूठा एक पत्थर से टकरा गया। अँगूठे से खून टपकने लगा। उसका सिर चकरा गया और वह पगडंडी के एक तरफ़ बैठ गई। पास ही एक छोटा-सा पौधा फूलों से लदा हुआ लहलहा रहा था। कल्याणी ने उसका एक फूल तोड़ा।

'मेरा भी प्रेम इस फूल की ही भाँति विशुद्ध और निर्मल था। पापी ने उसे मरोड़ दिया!" यही सोच उसने फूल को मसल कर फेंक दिया।

अचानक उसके मन के किसी कोने में से यह विचार उठा कि कहीं मैं मुत्तय्यन के प्रति अन्याय तो नहीं कर रही हूँ? जो कुछ मैंने देखा था, कहीं वह भ्रम तो नहीं था?

यह सन्देह पल-पल दृढ होता गया। "वह स्त्री कौन थी? कैसे वहाँ आई होगी? हाय, मैंने कैसी भारी भूल कर दी। चाहिए तो यह था कि झट नज़दीक जाती और सचाई का पता करती। मैं निरी मूर्ख थी जो दूर से ही देखकर भाग आई।" कल्याणी का मन यह सोचकर पश्चात्ताप के मारे तड़प उठा।

लोग कहते हैं कि नदी-तट पर एक मोहिनी पिशाचिनी घूमा करती है। शायद यह वही तो नहीं थी? हो सकता है, पिशाचिनी मेरा रूप धारण कर मुत्तय्यन के

सामने गई हो। संभव है, मुत्तय्यन ने उससे धोखा खाया हो वरना उतनी चटक-मटक वाली एक औरत उस निर्जन वन में कैसे आ सकती थी?···यदि यह सन्देह सही है तो मुत्तय्यन के बारे में मैंने जो कुछ सोचा था, वह सब अन्याय ही था न! केवल अन्याय ही नहीं, बल्कि···? वह आदमी। कौन था वह? न जाने कौन था, क्या था? पुलिस का आदमी मालूम होता था। कहीं पुलिस वाला ही तो नहीं था? हाय! मैंने क्या कर दिया। उसके सामने अंट-शंट बक गई। मुत्तय्यन का पता उसे बता बैठी। हे ईश्वर! इसका आखिर क्या नतीजा होगा? कहीं मुत्तय्यन को कुछ···?"

अब कल्याणी से न रहा गया। वापस मुत्तय्यन के पास जाने की उसे बलवती इच्छा हुई। सोचा—चाहे उसने मेरे साथ विश्वासघात किया हो या न किया हो, उसे सचेत करना मेरा कर्त्तव्य है। यही सोचकर वह नदी-तट की ओर लौटने लगी। वह पाँच-छः कदम भी आगे नहीं बढ़ी थी कि इतने में कहीं दूरसे गोली चलने की आवाज़ आई। एक-एक करके क़रीब तीन मिनट तक बराबर गोलियाँ चलती रहीं। वह आवाज़ चारों दिशाओं में भयानक रूप से गूंज उठी।

जब तक गोली चलती रही, तब तक कल्याणी अवाक् खड़ी रही। काटो तो बदन में खून नहीं। गोलियों की आवाज़ बन्द होते ही उसका हृदय तीव्र गति से धड़कने लगा। उसे ऐसी घबराहट हुई जैसी जीवन में पहले कभी नहीं हुई थी। काँपते हुए शरीर और काँपती हुई आत्मा के साथ वह बड़ी सड़क की तरफ दौड़ी गई।

गोलियों की आवाज़ ने केवल कल्याणी को ही नहीं, बल्कि आस-पास के खेतों-बगीचों में काम करने वाले किसानों को भी चौंका दिया था। सब के सब काम-काज छोड़ कर बड़ी सड़क की तरफ दौड़े। इसलिए जब तक कल्याणी बाँस के पुल के पास पहुँची, तब तक वहाँ खासी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। जितने मुँह उतनी बातें भी हो रही थीं।

सब लोग देख ही रहे थे कि इतने में पूर्व की ओर सौ गज़ की दूरी पर पुलिस के दस-बारह जवान जंगल से निकल कर सड़क पर चलने लगे। देखते ही सब लोग उत्सुकता के साथ उस ओर दौड़ पड़े। पर दो पुलिस वाले सड़क के बीच में बन्दूकें तान कर खड़े हो गए और धमकी दी कि अगर कोई आगे बढ़ा तो उसपर गोली चलाई जायगी। इस पर लोग डरकर बीच ही में रुक गए।

अधिकांश पुलिस वाले पूर्व की ही ओर गए। उनके बीच में चार पुलिस के सिपाही एक घायल आदमी को कंधों पर उठाए लिए जा रहे थे।

कल्याणी यह सब देख रही थी। भीड़ में कुछ ने कहा, "मर गया!" कुछ

और ने कहा, "नहीं जी, मरा नहीं, घायल हुआ है। बहुत सख़्त।" कल्याणी के कानों में ये सब बातें पड़ीं।

इतने में कुछ किसान स्त्रियों ने आकर कल्याणी को घेर लिया और बोलीं, "बहूरानी! तुम रोज़ नदी-तट पर बेधड़क घूमा करती थीं, और चोर यहीं पर इतने दिन से छिपा रहा है। बड़ों का पुण्य है, बहूरानी, जो तुमपर कोई अनहोनी नहीं बीती। ईश्वर ने बचा लिया तुम्हें।"

कल्याणी ने उनकी बातों का कोई जवाब नहीं दिया। वह सिर झुकाए, चुपचाप घर की ओर चलने लगी। अगर उस समय और लोग उसका चेहरा देखते, तो कितने घबरा गए होते।

४६

नगर-परिक्रमा

सारे रायवरम में धूम मच गई थी। सबने एक ज़बान से यही राय प्रकट की कि रायवरम के इतिहास में पहले कभी ऐसे दृश्य नहीं देखे गए।

शहर के रहनेवाले स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सबके सब उस दिन दुपहर से लेकर सड़कों पर ही खड़े रहे। जहाँ देखो एक ही बात की चर्चा थी। "सुना, मुत्तय्यन पकड़ा गया।" "यहाँ ला रहे हैं उसे।" "कहते हैं, शरीर पर बत्तीस गोलियाँ लगी हैं।" साठ पुलिस वालों ने एकसाथ मिलकर उसे पकड़ा था। फिर भी उसने सबसे छूटकर निकलने की कोशिश की। बहादुर हो, तो ऐसा हो।..."

इसमें आश्चर्य की बात यह थी कि सब के सब मुत्तय्यन के प्रति सहानुभूति ही प्रकट कर रहे थे। उससे लोगों को जो भी गुस्सा और भय था, सब पता नहीं कैसे काफूर हो गया! उसकी हिम्मत और वीरता पर विस्मय और उसकी दयनीय दशा पर सहानुभूति ही बाकी रह गई थी। संसार में किसी की बदकिस्मती से बढ़कर सौभाग्य की बात और कोई नहीं। तभी तो उसके संगी-साथियों की उदारता ठीक-ठीक प्रकट हो पाती हैं। तभी तो वह औरों के स्नेह एवं सहानुभूति का पात्र बनता है। तभी तो लोग उसकी सब कमियों को भूलकर उसके गुणों की ही प्रशंसा करते हैं। इससे बढ़कर सौभाग्य की बात किसी व्यक्ति के लिए और क्या हो सकती है?

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, लोगों की बेचैनी भी बढ़ती गई। उनकी सहिष्णुता जाती रही। छोटे बच्चे सड़क पर किलकारियां मारने लगे। गोद के बच्चों को लेकर जो मातायें आई थीं, उन्होंने अकारण ही बच्चों को पीटा, काम-काज छोड़कर जो लोग आये थे, उनको भी बहुत गुस्सा आया। सारा गुस्सा वे पुलिस पर उतारने लगे।

उस दिन रायवरम के सभी पुलिसवाले छाती तानकर चल रहे थे। सबके माथे पर इस बात का गर्व झलक रहा था कि हमने उस चोर को पकड़ लिया है जिसने पिछले दो वर्षों से तीन तहसीलों के लोगों में आतंक फैला रखा था। पुलिस वालों की चाल में उस दिन कुछ अनूठी ही शान, कुछ विलक्षण अकड़ साफ़ दिखाई पड़ रही थी।

शहर के लोगों के लिए पुलिस की यह अकड़ नागवार गुज़री। एक शौकीन

व्यक्ति ने एक पुलिस वाले के पास जाकर कहा, "जनाब ! बीड़ी सुलगानी है, आप के पास दियासलाई की एक तीली होगी ?" *पुलिसवाले ने इस पर उस व्यक्ति की तरफ़ आँखें तरेर कर देखा। यह देखकर भीड़ में से किसी ने कहा, "अरे, पुलिस का शेर लाल-लाल आँखें कर रहा है भई !" और कोई बोल उठा, "शेर हो तो ऐसा हो। एक चोर को पकड़ने के लिए चालीस शेरों की ज़रूरत पड़ गई ! वाह रे शेरो !"

"ज़रा गौर से देखो तो भैया, कि यह शेर है या बिलाव ?" किसी मसख़रे ने कहा। और कोई बोला, "उड़ा दो भई लाल पगड़ी को।" और किसी की आवाज़ आई, ईंट-पत्थर लेकर मारो भई उसके सिर पर !" उसके साथ ही साथ दो-तीन पत्थर न जाने कहाँ से आ गिरे।

जब इसकी ख़बर थाने पर पहुँची, वहाँ से पुलिस के दल कतार बाँधकर निकले और शहर की मुख्य-मुख्य गलियों में गश्त लगाने लगे। पुलिस-दल के नज़दीक आते ही लोग गली-कूचों में छिप जाते थे और उसके निकल जाने पर फिर सड़कों पर आकर इकट्ठे हो जाते।

इस कोलाहल के बीच में मुत्तय्यन का जलूस भी रायवरम पहुँच गया। पूंकुलम से जो पुलिसवाले उसे उठा ले आए, वे जब रायवरम के नज़दीक पहुँचे, तब रायवरम से रिज़र्व पुलिस का एक दल उनसे जा मिला। इस तरह चालीस-पचास पुलिस वालों के पहरे में मुत्तय्यन ने—जो अब तक बेहोश पड़ा था—रायवरम शहर में प्रवेश किया। यह जलूस ज्यों-ज्यों 'सब-जेल' के निकट पहुचा, त्यों-त्यों लोगों की भीड़ बढ़ती गई। इतने में आस-पास के गाँवों से आनेवालों की भी भीड़ शहर की भीड़ के साथ आ मिली। फलतः लोगों की संख्या बीस-तीस हज़ार तक हो गई। प्रख्यात डाकू मुत्तय्यन को देखने के लिए भीड़ का हर एक व्यक्ति लालायित था। इस धक्कम-धक्के में पुलिस के लिए आगे बढ़ना कठिन हो गया।

पुलिस ने शुरू में डाँट-डपट से काम लेकर भीड़ को हटाया। इतने में कहीं से सात-आठ पत्थर आकर गिरे। नतीजा यह हुआ कि पुलिस के लिए आकाश की तरफ़ गोली चलाना आवश्यक हो गया।

बस, गोली की आवाज़ आई नहीं कि लोग तितर-बितर होकर चारों तरफ़ भागे। बच्चे रो पड़े। स्त्रियाँ चीख़ उठीं। लेकिन दस ही मिनट के अन्दर सारी भीड़ न जाने कहाँ ओझल हो गई।

---

* मद्रास में पुलिस वालों को "दियासलाई" कहकर चिढ़ाया जाता है। यह इसलिए कि मद्रास के पुलिसवालों की पगड़ी दियासलाई के मसाले वाले अग्रभाग से शक्ल में मिलती-जुलती है।

गोली की आवाज़ से मुत्तय्यन को ज़रा होश आया। झट उसने आदत के अनुसार रिवाल्वर उठाने की इच्छा से हाथ बढ़ाया। पर हाथ भारी मालूम हुआ। पैर भी हिल नहीं पाते थे। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई ऊपर बैठा, उसके शरीर को कसकर दबाये हुए है। मुत्तय्यन ने ज़रा आँखें खोलीं। देखता क्या है कि उसके हाथ-पैर रस्सी से बाँधे हुए हैं। यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उसके बारे में सोचना ही चाहता था कि इतने में वह फिर बेहोश गया।

५०

आधी रात

रायवरम की सब-जेल के बाहर, अक्सर दो ही संतरी पहरा दिया करते थे। तालुका कचहरी के खज़ाने की भी रखवाली वहीं किया करते थे। लेकिन आज तीस जवान जेल के बाहर पहरा दे रहे थे।

कचहरी के पास पूर्व की तरफ़ एक विशाल आँगन था। उसके दक्षिण और पूर्व की ओर बरामदा था। बरामदे के साथ-साथ दक्षिण में और पूर्व में तीन-तीन कमरे थे। वहाँ से एक विलक्षण प्रकार की बू आ रही थी, जो सरकारी भवनों का एक विशेष अंग हुआ करती है। अलकतरे और फ़िनाइल की बू तो उसमें मिश्रित थी ही, साथ ही और भी कई तरह की बू घुलमिल कर निकल रही थी।

सब-जेल के पूर्वी पार्श्व के एक कमरे में मुत्तय्यन क़ैद किया गया था। उसके वहाँ पहुँचते ही सरकारी अस्पताल के बड़े डाक्टर कम्पउण्डर के साथ आए और उसके घावों को खूब धो-धुलाकर नश्तर-वश्तर लगाकर पट्टी बाँध गए।

पुलिस के उच्च अधिकारियों की तीव्र इच्छा थी कि किसी तरह मुत्तय्यन जीवित उठ जाय और उसपर मुक़द्दमा चलाकर उसे दण्ड दिया जाय। पर डाक्टर ने इस संबन्ध में उन्हें अधिक आशा नहीं दिलाई। उन्होंने कह दिया, मैं भरसक प्रयत्न तो अवश्य करूँगा। अगर वह बच गया, तो उसे पुलिस-विभाग की खुशकिस्मती ही कहना चाहिए।

"हाँ हाँ! होश तो आजायगा। संभव है आज रात से पहले ही वह होश में आजाय। पर उस समय उसके साथ ज्यादा बातें नहीं की जानी चाहिएँ" डाक्टर ने कहा।

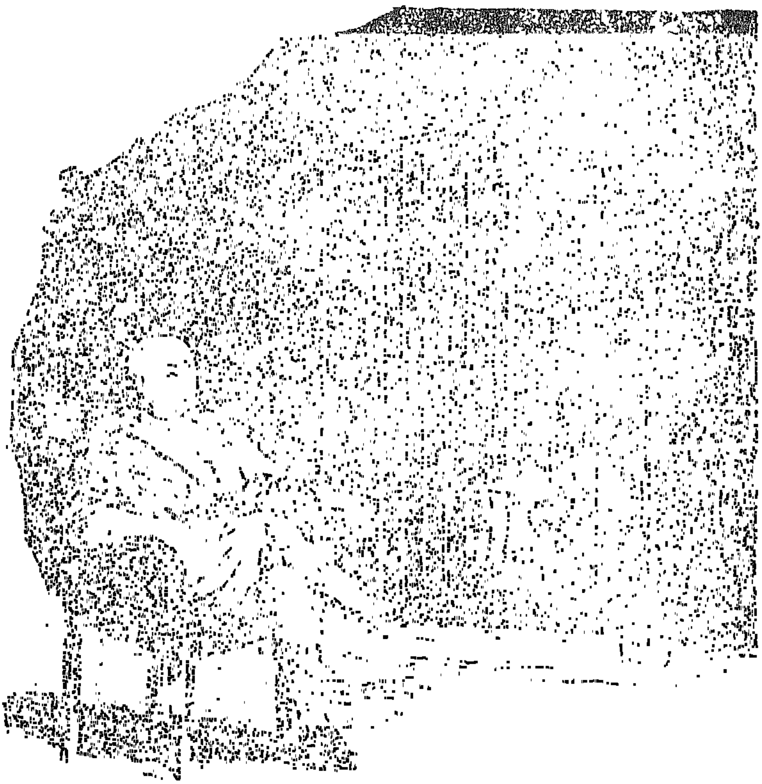
**** **** ****

सब-जेल के दक्षिणी पार्श्व के एक कमरे में कुरयन शोक्कन बन्द था। सर्वोत्तम शास्त्री उसके साथ बातें कर रहे थे।

शास्त्री जी सारी रात नहीं सोये। इस केस में शुरू से ही वह सम्बन्धित थे और अन्त में मुत्तय्यन को पकड़वाया भी उन्हीं ने था। इस कारण क़ैदी के पास रहने और उसके होश में आने पर उससे आवश्यक पूछताछ करने का काम शास्त्री जी को ही सौंपा गया था। पर मुत्तय्यन के होश में आने से पहले ही उन्होंने कुरयन शोक्कन से कुछ आवश्यक बातों का पता लगाना चाहा।

कुरबन शोक्कन बहुत दिन पहले ही पकड़ा तो जा चुका था फिर भी हजार पीटने-सताने पर भी उसने मुत्तय्यन के बारे में एक शब्द भी बताने से साफ़ इनकार कर दिया था। उसकी इस दृढ़ता और वफ़ादारी को देखकर स्वयं शास्त्री जी उसकी इज्जत करने लगे थे। शास्त्री जी ने सोचा, अब चूँकि मुत्तय्यन पकड़ा जा चुका है और मरणासन्न अवस्था में है, इसलिए शोक्कन उसके बारे में अपनी जानकारी की बातें अवश्य बतायगा। इसी आशा से वह शोक्कन के पास गए।

उनका अनुमान सही निकला। शास्त्री जी ने बताया कि मुत्तय्यन सख्त घायल हो गया है, और अब उसका बचना कठिन है, तो शोक्कन बच्चे की तरह फूट-फूटकर रोने लगा? उसकी आँखों से आँसू की धारा बह निकली।

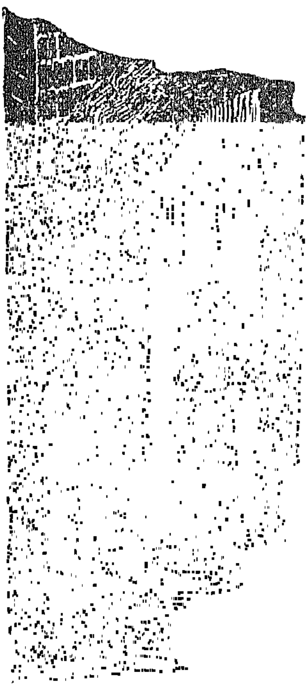


इसके बाद उसने शास्त्री जी के प्रश्नों का ठीक-ठीक जवाब दिया। तिरूपल कोविल के हवालात में पहली रात को जो कुछ घटा था, वह शोक्कन के सिवा और किसी को मालूम नहीं था? अब सब बातें उसने शास्त्री जी को बताई।

शास्त्री जी को अब पहली बार मालूम हुआ कि कुरयन शोक्कन ने हवालात से बच निकलने की सलाह जब पहली बार दी तब मुत्तय्यन ने इनकार कर दिया था। बाद में उसने जब अभिरामी को देख आने की अनुमति माँगी और जब पुलिस-वालों ने उसके साथ अनुचित बातें कीं, तभी मुत्तय्यन ने लाचार होकर शोक्कन की सलाह मानी थी। शोक्कन से ये सब बातें जानकर शास्त्री का मन द्रवित हो गया।

"हाय ! कितना भला लड़का है। शुरू से ही दूसरों के अपराधों और भूलों के कारण ही इस बेचारे की दुर्गति हुई है। संसार को आख़िर ये सब बातें कैसे मालूम हो सकेंगी ? यदि मालूम हो जायँ तो भी उससे क्या लाभ हो सकता है ? प्राण-हीन, हृदय-हीन कानून इस बेचारे को क्षमा-दान देगा भी ?"

सोचते-सोचते शास्त्री जी ने लम्बी साँस ली।



*** ***

आधी रात। पहरेदार ने जेल की घंटी में बारह बजाये ! घंटी का बजना बंद होते ही चारों तरफ़ निस्तब्धता छा गई।

मुत्तय्यन को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह कहीं किसी अन्ध-गर्त में धीरे-धीरे ऊपर उठता आ रहा है।"'सो गया था क्या ? यह घंटी की आवाज़ कैसी ? मन्दिर में मध्यान्ह की पूजा हो रही होगी। हाँ, वही ठीक है ! लेकिन इस मन्दिर में पूजा ? नहीं, यह मन्दिर की घंटी नहीं। और फिर कल्याणी अब तक आई क्यों नहीं ?'''"

मुत्तय्यन की आँखें खुल गईं। उसने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। धीरे-धीरे उसपर यह सत्य प्रकट हुआ कि वह कोल्लिडम के तट पर नहीं है। मन्दिर भी आस-पास कहीं नहीं। पिछले दिन की घटनायें उसे धीरे-धीरे याद आईं। अच्छा ! यह जेल है ! वह जेल में है। एक ऐसी खटिया पर पड़ा है जैसी उसने अस्पतालों में देखी थी। उसके हाथ पाँव अब रस्सी से तो बँधे नहीं थे, फिर भी हिलना-डुलना तक उसके लिए असंभव मालूम पड़ता था। धीरे-धीरे सारे शरीर में असह्य पीड़ा का अनुभव हुआ।

थोड़ी देर बाद किसी की आहट सुनाई दी। मुत्तय्यन ने देखा कौन आ रहा

है। इतने में सब-इन्सपेक्टर शास्त्री जी किवाड़ खोल कर अन्दर आये। मुत्तय्यन ने उठने की कोशिश की। पर उससे उठा नहीं गया। अंग-अंग में मर्मान्तक पीड़ा हुई और उस पीड़ा की छाया उसके चेहरे पर साफ़ दिखाई दी।

शास्त्री जी धीरे से उसके पास गए और करुण स्वर में बोले, "मुत्तय्यन! बचने की आशा अब छोड़ दो। तुम्हारी अन्तिम घड़ी अब निकट आ गई है। अगर किसी को कुछ सन्देश भेजना हो, तो बता दो भिजवा दूँगा। या अगर किसी से मिलने की तुम्हारी इच्छा हो तो उसे यहाँ बुलाने का भरसक प्रयत्न करूँगा। बताओ किससे मिलना चाहते हो?"

मुत्तय्यन कुछ देर तक विचार-मग्न रहा। हो सकता है, शास्त्री जी की बातें सही हों। शायद इसी कारण शरीर भर में मानों हज़ारों बिच्छू डस रहे हैं। शायद इसी कारण इतनी कमज़ोरी महसूस हो रही है।

"कल्याणी से मिलना चाहता हूँ," उसने धीमे स्वर में कहा।

"किससे?" शास्त्री जी ने आश्चर्य के पूछा।

"पूंकुलम की कल्याणी देवी से। चिदम्बरम पिल्लै की बेटी कल्याणी से," मुत्तय्यन ने कहा।

शास्त्री जी कुछ देर चुप रहे और बाद में ज़रा झिझक के साथ बोले, "मैंने सोचा था कि तुम शायद अभिरामी से मिलना चाहोगे!"

यह सुनते ही मुत्तय्यन की आँखों में और सारे चेहरे पर उत्सुकता और स्नेह की चमक-सी दौड़ गई।

"आप ने अभिरामी का नाम लिया था क्या?"

"हाँ भाई! अभिरामी का।"

"क्या आप अभिरामी को जानते हैं? कैसे?"

"तिरूपरन कोविल में मेरे ही घर पर वह कुछ दिन रही थी। मेरी पत्नी हीं ने उसे मद्रास के सरस्वती विद्यालय में भर्ती कराया था।"

मुत्तय्यन की आँखों में यह ज्योति कैसी? यह असीम हर्ष कैसा?

"इन्सपेक्टर साहब! मुझे आप ही ने गिरफ़्तार किया था न?" उसने पूछा।

"हाँ भाई! मैंने ही तुम्हें पकड़ा था। लेकिन क्या किया जाय? आख़िर कानून को मानना पड़ता है न?" शास्त्री जी बोले।

"मेरी यही प्रार्थना थी—यही कामना थी—कि अगर किसी दिन पकड़ा जाऊँ तो आप के ही हाथों पकड़ा जाऊँ। मुझे गिरफ़्तार करने का श्रेय आपही को मिले। आखिर मेरा वह मनोरथ पूर्ण हो गया। ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुन ली। और किस तरह मैं आप का ऋण चुका सकता था?" मुत्तय्यन ने गदगद स्वर में कहा।

यह सुनकर शास्त्री जी की भी आँखें भर आईं। बोले, "भैया, तुम्हें ज्यादा बोलना नहीं चाहिए। चाहो तो अभिरामी को तार देता हूँ। यदि उसके आने तक तुम जीते रहो तो उसका सौभाग्य समझना चाहिए।"

"अच्छा, ऐसा ही कीजिएगा। लेकिन मैंने तो कल्याणी से मिलने की ही प्रार्थना की थी। हाय, होश में रहते हुए मैं उसे देख भी पाऊँगा?" सुत्तय्यन ने रुँधे हुए स्वर में कहा।

"अच्छा उसको भी बुला भेजता हूँ। चिन्ता न करो। चैन से सो जाओ!" यह कह कर शास्त्री जी बाहर चले गए। पहरेदार ने किवाड़ बन्द करके ताला लगा दिया।

*** *** ***

सुत्तय्यन ने आँखें मूँद लीं। उसका सिर चकराने लगा। होश जवाब देने लगे। उसी बेहोशी की अवस्था में यह बातचीत उसके कानों में पड़ी:—

"' अरे तुम नहीं जानते सारी दास्तान? सुना है, पूंकुलम में इसकी कोई प्रेमिका थी उसीने इसका पूरा पता पुलिस को दिया। शास्त्री जी उसे छिपा रहे हैं और यह शोर मचा रहे हैं जैसे उन्होंने खुद चोर का पता लगा लिया हो। अगर वह औरत विश्वासघात न करती, तो इसे पकड़ना किसके बस का काम था?"

"ठीक है भैया! दुनिया में ज्यादातर लोग औरतों की वजह से ही तो गिरते हैं। बड़ों ने जो कहा है, वह गलत थोड़े ही हो सकता है? इन्द्र गिरा औरत से और चन्द्र भी गिरा तो औरत से!"

पहरेदारों की इन बातों को सुनकर सुत्तय्यन का दिल धड़कने लगा। अगले क्षण वह बेहोश हो गया।

५१

कुत्ता रो पड़ा

जिस दिन मुत्तय्यन पकड़ा गया, बहुत से लोगों ने उस रात को शिवरात्रि सी मनाई थी। यह कहने की आवश्यकता भी है, कि कल्याणी भी ऐसे ही लोगों में से थी ?

इस मिथ्या संसार में कल्याणी ने जिस एक वस्तु को अटल, अजर, अमर, और सत्य समझा था, उसने देखा, वह भी आज झूठी साबित हो गई है। इस कष्टमय जीवन को जिस एक सुख की आशा से वह सह सकी थी, उसने अब जाना कि वह कोरा स्वप्न था। मुत्तय्यन का प्रेम झूठा साबित हो गया। उसके साथ सुखी जीवन बिताने के बारे में उसने जो हवाई किले बाँध रखे थे, वे सब हवा में ही उड़ गए। आह ! इतने दिन केवल एक मृग-मरीचिका के पीछे-पीछे व्यर्थ ही जा रही थी ! कैसी मूर्खता है।

उस दिन शाम को गाँव वालों ने जो बातें की थीं, वे सब उसे याद आईं। चोर के पकड़े जाने के बारे में तरह-तरह की अफ़वाहें फैली हुई थीं।

"कहते हैं, यहाँ किसी औरत से उसकी दोस्ती थी। उसी ने इनाम पाने के लालच में आकर उसे पकड़वा दिया !" —एक अफ़वाह।

"यह सब गप है। दर-असल पुलिस ने खुद ही एक सुन्दर वेश्या को उसके पास भेजा था और जब वह उसके मोह-जाल में फँसा हुआ था, उसे पकड़ लिया।" —यह दूसरी अफ़वाह थी।

इन सब अफ़वाहों का स्रोत एक गड़रिए के लड़के का यह बयान था कि एक सुन्दर औरत को जंगल में से होकर जाते देखा।

यह बात गाँव भर में फैल गई थी कि कल्याणी दोपहर को नदी पार नहाने गई और बिना नहाए वापस आ गई थी। इसलिए उससे चोर के पकड़े जाने के बारे में बात करने के लिए बहुत सी स्त्रियाँ आईं। बरसों पहले मुत्तय्यन से कल्याणी का विवाह होने की चर्चा भी थी, इस कारण इस बारे में उससे बात करने में लोगों को खास मज़ा आता था। पर कल्याणी उनकी बातें चुपके से सुनती गई, खुद एक शब्द भी नहीं बोली।

रात को बिस्तरे पर करवट बदलते कल्याणी को सारी बातें याद आईं ! अफ़वाहों और सचाई में कितना गहरा सम्बन्ध होता है, यह सोचकर वह घबरा

उठी कि कहीं अदालती जाँच के समय उसका रहस्य प्रकट तो नहीं हो जायगा ? वह आदमी—पुलिस वाला—शायद इनाम के लालच से रहस्य को प्रकट न करे। लेकिन अगर उसने भेद खोल दिया तो ?—मुत्तय्यन भी तो उसे जान लेगा ?...

साथ ही यह भी विचार उठा, मुत्तय्यन जान लेगा, तो क्या बुरा होगा ? सच पूछो तो उसीको यह बात खास तौर से मालूम होनी चाहिए। उस पापी ने मेरे साथ जो दगा की, उसका बदला मैं क्यों न लूँ ? हाँ ! जब जाँच होगी, तब अदालत में जाकर क्यों न कह दूँ कि मैंने ही मुत्तय्यन का पता पुलिस को दिया, मुझे दीजिए इनाम। मुत्तय्यन अपराधी के कटघरे में जब खड़ा हो, तब उसके सामने ही यह बात कहनी चाहिए। तब देखना चाहिए कि उसके चेहरे का रंग कैसा होता है।

लेकिन—लेकिन वह तब तक जीवित रहेगा भी ? अब भी वह जीवित है या नहीं...? हाय ! मैंने यह क्या कर दिया ? उसके हजार दगा करने भी मुझे उसका काल नहीं बनना चाहिए था। हे ईश्वर यह कैसी प्रवंचना है कि मेरी ही बातों से मुत्तय्यन की यह दुर्गति हुई। मुत्तय्यन बचेगा भी ? जीवित रहेगा भी ? प्रभु ! बचा दो। उसे जीवित रहने दो। हाँ ! उसे मरना नहीं चाहिए। उसकी जाँच हो और सज़ा हो। वह कारावास में पड़ा रहे और मैं उसके पास जाकर कहूँ कि "मुत्तय्या ! तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया। और मैंने उसका बदला लिया। फिर भी; फिर भी मेरे इस निगोड़े मन से तुम्हारी याद नहीं जाती।..."

विचारों की इस उलझन के बीच में अचानक कल्याणी को न जाने क्यों, हँसी आई ! वह ज़ोर से हँस पड़ी। अपनी ही हँसी की आवाज़ उसे भयानक प्रतीत हुई। छि:, छि:। कैसे मूर्खतापूर्ण विचार हैं मेरे ! मुत्तय्यन बरसों जेल में पड़ा रहे और मैं उतने दिन ज़िन्दा रहूँ और उसे जेल में जाकर देखूँ—यह कहीं हो सकता है ? अब उसका मेरा नाता ही क्या ? अब इस जीवन से ही मेरा क्या वास्ता ? मुत्तय्यन का प्रेम जब झूठा हो गया, तब मैं जीकर क्या करूँ ? जी भी कैसे सकती हूँ ? अब ये रातें बिना नींद के ही गुज़रेंगी। बिना सोए और मुत्तय्यन की याद करते-करते संभव है, मैं पागल हो जाऊँ। अभी से मन की स्थिरता जाती रही। आगे क्या हाल होगा ? जाने कब क्या हो ? हो सकता है एकदम बावली हो जाऊँ और जग हँसाई हो। इस प्रकार की ज़िन्दगी ही क्या भाग्य में बदी है ?

यह कल्पना मन में आते ही कल्याणी भय-विह्वल हो उठी। अगले ही क्षण

उसने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि इसी रात को आत्म-हत्या कर लूँ। और कोई चारा है ही नहीं।

घड़ी में तीन बजे। कल्याणी चुपके से उठी। देखा, फूफी गहरी नींद में मग्न है। उसने धीरे से बाहर का दरवाजा खोला और बाहर निकली! गली के बीच में एक कुत्ता पड़ा हुआ था। कल्याणी डरी कि वह कहीं भूँककर सारे गाँव को न जगा दे। भाग्यवश वह नहीं भूँका। पर जब कल्याणी कुछ दूर निकल चुकी थी, कुत्ता आसमान की तरफ देखकर बड़े ही दीन स्वर में रो पड़ा। कल्याणी ने सुन रखा था कि कुत्ते का रोना यमराज के आगमन का संकेत होता है। इसलिए उसका शरीर सिहर उठा।

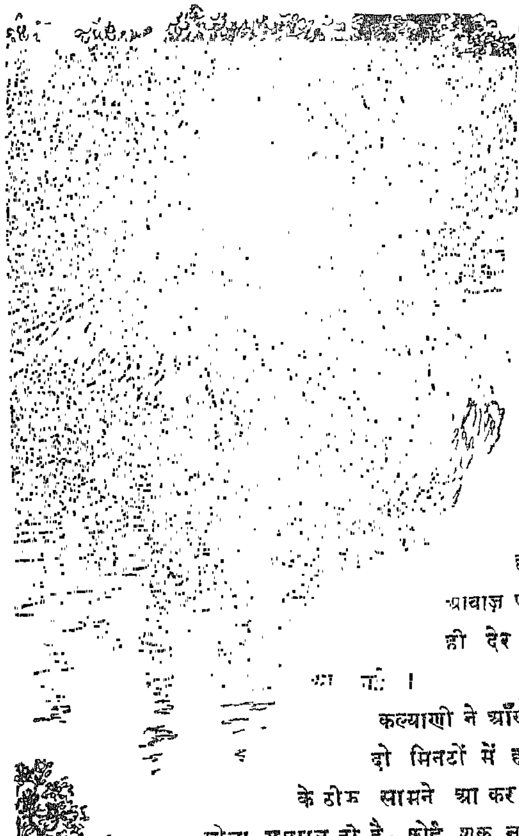


कृष्ण-पक्ष का प्रातःकाल। चाँद से धीमा-धीमा प्रकाश आ रहा था। कल्याणी हृदय थाम कर कोल्लिडम नदी के तट की ओर चली। नदी में गिर कर प्राण त्याग देने के इरादे से ही वह घर से निकली थी। पर करीब-करीब राजन नहर के पास पहुँचने पर उसे याद आया कि मैं तैरना जानती हूँ। अगर नदी में गिर भी पड़ी तो तैर कर कहीं किनारे पर आ गई तब? जान जायगी कैसे? गले में पत्थर बाँधकर पानी में गिर जाने की बात लोग करते तो है लेकिन सचमुच ऐसा किया जा सकता है क्या? कोल्लिडम

के तट पर पत्थर मिलेगा कहाँ ? और फिर रस्सी कहाँ से लाई जाय ? आँचल में पत्थर बाँधकर नदी में गिरूँ और पत्थर आँचल से खिसक जाय, तो ? हे राम ! मरने की बात करना तो आसान होता है, लेकिन वास्तव में मरना कितना कठिन प्रतीत होता है ?

राजन नहर के पुल पर पहुँचने के बाद कल्याणी आगे नहीं बढ़ी। वहीं विचार-मग्न खड़ी रही। ठंडी ठंडी हवा चल रही थी। गाँव में कहीं कोई मुर्गा बोला। ऊपर पेड़ पर कोई कौआ उनींदी आवाज़ में काँव-काँव करने लगा।

कल्याणी ने सोचा, अगर आज मुझे मरना है, तो काल किसी तरह आकर मुझे ले ही जायगा न ? देखें, क्या होता है।



अचानक उसने ज़ोर से पुकार कर कहा, "हे, यमराज। आओ ! आकर मेरे प्राण ले जाओ !" उसका इतना कहना था कि दूर पर से "हाय हाय" "हाय हाय" की आवाज़ आई। कल्याणी के रोंगटे खड़े हो गए। सारा शरीर काँपने लगा। शायद मेरी प्रार्थना सुनकर यमराज ही तो नहीं आ रहा है ? हाय हाय, हाय हाय यह आवाज़ पल पल बढ़ती गई ? थोड़ी ही देर में आहट बहुत निकट आ गई।

कल्याणी ने आँखें मींच लीं।

दो मिनटों में हाय की आवाज़ कल्याणी के ठीक सामने आ कर रुक गई। कल्याणी ने सोचा, यमराज तो है, कोई शक नहीं।

आवाज़ को रुके एक मिनट हुआ, दो मिनट, तीन,

चार, पाँच मिनट हुए कल्याणी के लिए ये पाँचों मिनट पाँच युगों के समान बीते। उसकी घबराहट भी बढ़ गई। फिर एक बार उसने ज़ोर से कहा, "हे यमराज! आओ! जल्दी आ कर मुझे ले जाओ!

अगले क्षण कल्याणी के होश उड़ गये। पानी में "छप-छप" की आवाज़ आई।

५२

सवेरा हुआ

मुत्तय्यन ने कल्याणी को देखने की इच्छा प्रकट की तो सर्वोत्तम शास्त्री ने स्वयं ही जाकर उसे ले आने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि और कोई जाय तो शायद व्यर्थ की घबराहट पैदा कर देगा। यह भी हो सकता है कि कल्याणी आने से इन्कार कर दे। साथ ही उन्हें यह जानने की भी जिज्ञासा हुई कि कल्याणी ने मुत्तय्यन के छिपने के स्थान का जो पता दिया था, उसके पीछे क्या रहस्य है? सुनी सुनाई बातों के आधार पर उन्होंने कल्याणी और मुत्तय्यन के आपस के सम्बन्ध का कुछ कुछ अनुमान तो लगा ही लिया था। इस में शक नहीं कि वे दोनों प्रेमी-प्रेमिका हैं। यह भी निश्चित है कि कल्याणी ने ही मुत्तय्यन को इतने दिन से खिलाया-पिलाया होगा। पर उस दिन वह इतनी बावली क्यों हो उठी थी? मुत्तय्यन की 'सच्ची प्रेमिका' के बारे में उसने जो कुछ कहा था, आखिर उसका अर्थ क्या हो सकता है? क्या उस की बात में सचाई हो सकती है? मुत्तय्यन ऐसा शख्स तो नहीं मालूम होता! पुलिस ने जब उसे घेरा था, तब वहाँ कोई स्त्री तो नहीं थी। तो फिर क्या कारण है कि कल्याणी को ऐसा भयानक सन्देह हुआ?

शास्त्री जी ने सोचा कि कल्याणी को देख कर उससे बातें करने पर ही इस रहस्य का भेद खुल सकता है। यही सोच कर वह रातों रात घोड़े पर सवार हो कर रायवरम से पूंकुलम के लिए रवाना हुए थे। जब तक चोर पकड़ा नहीं जा चुका था, वह घोड़े पर इस लिए नहीं जाते थे कि टापों की आवाज़ सुन कर चोर पहले ही से सचेत न हो जाय! अब वह डर नहीं था। और फिर रात भी काफ़ी अंधेरी थी। इसी कारण वह घोड़े पर सवार हो कर निकले थे।

जब वह पूंकुलम के बाँस के पुल के निकट पहुँचे, तब सुबह के चार-साढे चार बज चुके थे। पूर्व गगन पर-रजत-प्रकाश की धीमी धीमी झलक दिखाई पड़ने लगी थी।

सूरज उगने के बाद ही गाँव के अन्दर जाना उचित समझ कर शास्त्री जी ने नहर के पास ही घोड़ा रोक लिया। संयोगवश उनकी नज़र नहर की दूसरी तरफ़ गई तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई औरत बिखरे बालों के साथ नहर के किनारे पर बैठी हुई है। उस उषा की वेला में, धूमिल प्रकाश में वह दृश्य देख कर उस साहसी वीर का भी हृदय काँप उठा। अचानक आवाज आई "हे यमराज! आओ!

जल्दी आकर-मुझे ले जाओ !" यह रक्त शोषक पुकार सुन कर वह और भी भय-भीत हो गये। पर अगले क्षण उन्हों ने देखा, स्त्री का वह रूप पानी में औंधे मुँह गिर पड़ा है। पानी में से 'छप-छप' की जो आवाज़ आई, उस को सुन कर वह संभल गए। उन का डर जाता रहा। झट वह घोड़े पर से उतर पड़े और दूसरी तरफ पहुँचे। कल्याणी का शरीर किनारे के साथ साथ पानी में तैरता हुआ जा रहा था। शास्त्री जी ने किनारे के साथ साथ दौड़ कर उसके शरीर को पकड़ लिया और सावधानी से उठा कर किनारे पर पहुंचा दिया।

पूर्व गगन का रजत प्रकाश धीरे धीरे पीला पड़ता गया और देखते ही देखते स्वर्णिम आभा से जगमगा उठा। तारे एक एक करके छिप गए। आकाश का काला रंग नीलिमा में परिणत हुआ। तरह तरह के पंछियों का मधुर कलरवमय संगीत दिशाओं को गुंजरित करने लगा।

ऐसी सुषमा-मय वेला में कल्याणी ने आँखें खोलीं। पहले उसे शास्त्री जी का ही चेहरा दिखाई दिया। यह क्या? यह आदमी यहां कैसे आया? उसे अनुभव हुआ कि सारा शरीर ठंडा पड़ गया है। साड़ी भीगी हुई है, केश भी भीगे हुए हैं। अच्छा! इस आदमी ने पानी से मुझे उठा कर किनारे पर लिटाया है। उसे यह भी याद आया कि मैं मुंह अंधेरे निकल कर मरने की इच्छा से नहर के पास पहुँची थी। उसने नहर के दूसरे तट पर एक घोड़े को देखा। अच्छा! घोड़े पर यह आदमी आया होगा। घोड़े की टापों की आवाज़ सुन कर मुझे यमराज के आने का भ्रम हो गया है।

कल्याणी उठ बैठी और शास्त्री जी से बोली, "अजी, मैंने आप को प्राण हरने वाला कालदेव समझा था। लेकिन आपने तो वास्तव में मेरे प्राण बचाये हैं।"

यह सुन कर शास्त्री जी के होठों पर मुस्कुराहट की रेखा दौड़ गई। पर कल्याणी ने आगे जो कहा उस में वह मुस्कुराहट भस्म हो गई।

"......पर आपने मुझे क्यों बचाया? हाय! क्या ही अच्छा होता अगर मैं मर जाती!"

"ठीक कहती हो बेटी! मरने वालों को बचाना भारी भूल होती है। पर मैं क्या करता? मुत्तय्यन को वचन दे चुका था कि तुम्हें उस के पास ले जाऊंगा। वचन की रक्षा करने के लिए तुम्हारी रक्षा करनी पड़ी," शास्त्री जी बोले।

कल्याणी ने असीम उत्सुकता के साथ पूछा, "क्या? मुत्तय्यन के पास? क्यों? मुत्तय्यन ने मुझे देखना चाहा था क्या? सचमुच? सचमुच मुत्तय्यन ने मेरा नाम ले कर कहा था क्या, कि मैं उसको देखना चाहता हूँ?"

"चिदम्बरम पिल्लै की लड़की कल्याणी कौन है? तुम्हीं हो न?"

"जी हाँ। मैं ही हूँ वह पापिन!"

"तुम पापिन हो या पुण्यवती, इस से मुझे लेना-देना कुछ नहीं है। मैं इतना ही जानता हूं कि मुत्सद्दन तुम्हीं को देखने के लिए तरस रहा है। यदि तुम आना चाहती हो, तो मैं ले जाऊं।"

"यह भी पूछने की ज़रूरत है? मुत्सद्दन बुलाए और मैं न जाऊं, यह कभी हो सकता है? मैं तो अभी जाने को तैयार हूं। चलिए। ले चलिए मुझे।"

"यह ठीक नहीं होगा, बेटी। घर जा कर कपड़े बदल लेना। कोई पूछे तो बता देना नहर में नहाने गई थी। बाद में मैं आकर कहूंगा कि मुत्सद्दन के सामने में गवाही देने के लिए तुम्हारी ज़रूरत है। तब तुम चली आना।"

"महाशय! सच सच बताइए। आप कौन हैं?"

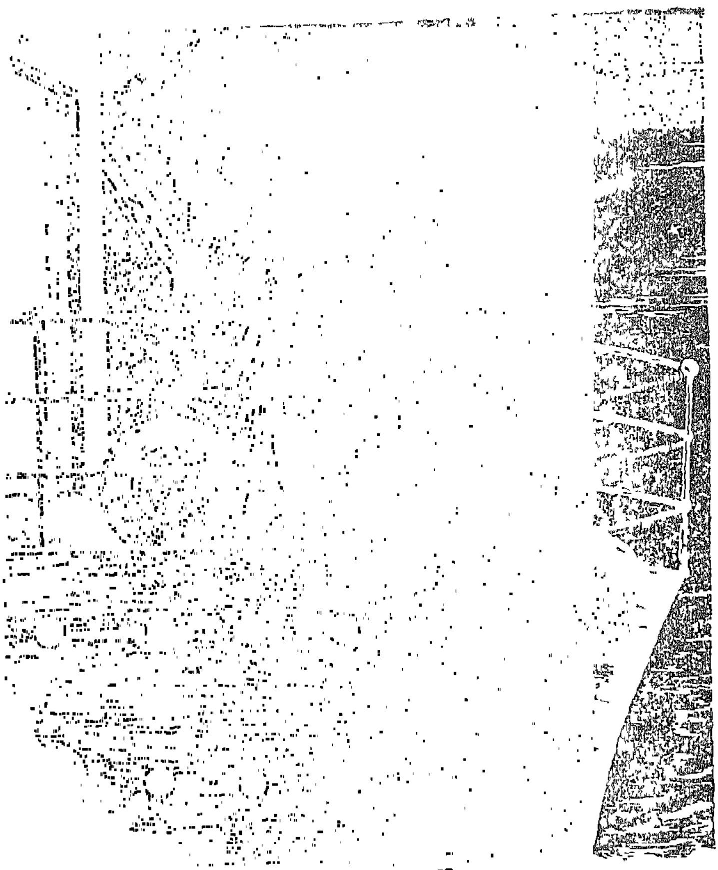
"नाराज़ न होओ कल्याणी! मैं पुलिस इन्सपेक्टर हूँ। कल मैंने तुम्हें धोखा दे दिया था। इसी का प्रायश्चित्त करने आज आया हूँ। मुझ पर विश्वास करो और मेरे साथ चलो।"

कल्याणी ने उनके मुख की तरफ़ ध्यान से देखा और निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो जाय, इन के साथ जाऊंगी।

५३

कल्याणी का विवाह

आकाश में पूनम का चाँद शोभायमान हो रहा था। नीचे समुद्र में लहरें नहीं उठ रही थीं। उस शान्त सागर को चीरता हुआ जहाज़ बड़ी तेज़ी से जा रहा



था। जहाज़ की छत के छोर पर कल्याणी और मुत्तय्यन खड़े थे। मुत्तय्यन की दृष्टि कल्याणी के मुख-मंडल पर एकटक गड़ी हुई थी।

"लोग सौन्दर्यशालिनी स्त्री के मुख की उपमा चन्द्र से जो देते हैं, वह भी कैसी मूर्खता है ! दोनों गोलाकार हैं, बस, इसके सिवा चाँद में और इस मुख में और समानता ही क्या है ? चाँद पर कहीं दो काली काली आँखें भी होती हैं क्या ? उन की एक-एक चितवन दर्शक पर सांघातिक वार भी करती है ? क्षण भर की मादक मुस्कान से दर्शक को पागल बना डालने की शक्ति बिचारे चन्द्र में है कहीं ?" मुत्तय्यन के मन में यही विचार उठ रहे थे ।

अचानक उसकी कल्पना ने एक विलक्षण रुख अख्तियार किया । सोचा, "कल्याणी की आँखों से इस समय आँसू निकल आयें तो वह दृश्य कैसा मनोहर होगा ! चाँदनी का रजत प्रकाश जब उन अश्रु-कणों पर छिटकेगा, तब ऐसा प्रतीत होगा कि, मानोंमोती झड़ रहे हों ? "



उसका यों सोचना था कि अरे ! यह क्या ? उन काली-काली आँखों से सचमुच ही अश्रु-कण नहीं, अश्रु-धारा बह निकली !

मुत्तय्यन घबरा गया । "कल्याणी ! कल्याणी ! यह क्या ? तुम्हारी आँखों में ये आँसू क्यों ?" यह कहते हुए उसने उसके आँसू पोंछने के लिए हाथ बढ़ाया ।

परन्तु कल्याणी झट एक कदम पीछे हट गई और भर्राई हुई आवाज़ में बोली, "मैं......मैं...खुद ही नहीं समझ पाती कि ये आँसू अब क्यों निकल रहे हैं । आनन्दाश्रु कहते हैं न लोग ? शायद ये आँसू भी आनन्द ही कण हों । इस समय मैं अवर्णनीय आनन्द में मग्न हूँ, अवश हूँ । किन्तु...किन्तु...।" आगे उससे कुछ कहते नहीं बना ।

"किन्तु क्या ? कहीं इस बात का पश्चाताप तो नहीं हो रहा है कि इतनी सारी सम्पत्ति छोड़ कर इस डाकू के भरोसे क्यों चली आई ?"

"तुम जानते हो मुत्तय्या, कि मेरे मन में ऐसा विचार कभी नहीं उठ सकता ।

धन दौलत को ले कर मुझे करना ही क्या था ? अगर तुम चोर हो, तो फिर संसार में सच्चा ही कौन है ? लेकिन, लेकिन...मैंने एक बात सुनी थी। वही मेरे मन में खटक रही है। लोगों ने कहा कि और किसी स्त्री से तुम्हारा प्रेम है। मैंने उस बात पर विश्वास नहीं किया। फिर भी तुम्हारे ही मुँह से सचाई जानलूँ, तो मन को चैन मिलेगी।"

मुत्तय्यन को शरारत सूझी। हंसता हुआ बोला, "हां कल्याणी ! मेरी एक और प्रेयसी है। उसका नाम है......।

मुतय्यन कहना चाहता था कि उस का नाम है 'सतारम'। लेकिन वह वाक्य पूरा नहीं कर पाया था कि इतने ही में कल्याणी उस के सामने से ओझल हो गई। नीचे समुद्र में से "छपाक" की धीमी आवाज़ आई। पल भर मुत्तय्यन हतप्रभ सा हो कर अवाक् खड़ा रहा। अगले ही क्षण वह भी समुद्र में कूद पड़ा और डुबकी लगादी।

पानी में डूबने पर भी मुत्तय्यन के होशहवास दुरुस्त थे। पानी के अन्दर चारों तरफ़ हाथों से टटोल टटोल कर देखा कि कल्याणी कहीं हाथ लगती भी है या नहीं। उस का दम घुटा जा रहा था। हाथ-पाँव थक गए थे। जब पानी के अन्दर रहना उसके लिए असंभव सा हो चुका था, तब अचानक कल्याणी उस के हाथ लगी। झट उस ने उसे अपने गाढ़ालिंगन में ले लिया और ऊपर निकाला। पर पैरों से लात मार-मार कर ऊपर निकलने की वह जितनी कोशिश करता जा रहा था। सतह उतनी ही और ऊपर चली जाती सी प्रतीत होती थी। दम घुट गया। आखिर उसने अपनी सारी शक्ति लगा कर एक बार ज़ोर की लात मारी। हे राम ! तुम ने बचा लिया ! मुत्तय्यन सतह के ऊपर आ गया, उस ने एक लंबी साँस ली और धीरे से आँखें खोलीं।

*** *** ***

ठीक इसी समय मुत्तय्यन होश में आ गया। उस की आँखें खुलीं। कैसा आश्चर्य! क्या, यह सच हो सकता है ? उस ने फिर आँखें मूँद लीं और दुबारा खोल कर देखा। हाँ, सचमुच कल्याणी ही है वह ! कल्याणी ही उस के पास खाट पर बैठी हुई है। उसी के कोमल शरीर का स्पर्श उस के पीड़ित अंगों को प्राप्त हो रहा है। उसी की विशाल आँखों से अश्रुधारा बह रही है।

मुत्तय्यन ने उस के आँसू पोंछने के लिए हाथ उठाने की कोशिश की। पर हाथ उठाया नहीं गया। उस ने लंबी साँस ली।

यह देख कर कल्याणी की आँखों से और अधिक अश्रुप्रवाह उमड़ पड़ा। सबइन्सपेक्टर के दिए वचन का भी उसे ख़्याल न रहा। वह सिसकियां भरने लगी।

"ना कल्याणी ! रोओ नहीं !" मुत्तथ्यन ने क्षीण स्वर में कहा। फिर बोला, "अगले जन्म में हम ऐसी भूल नहीं करेंगे । पहले ही विवाह कर लेंगे।" यह कह कर वह मुस्कराया।

इस पर कल्याणी को दुःख के स्थान पर असीम क्रोध आया। उस की सजल आँखें पल भर में ही सूख गईं। बोली, "अगले जन्म में भी मैं पापिन तुम्हारा पीछा क्यों करूँ ? नहीं, हज़ार बार नहीं। कम से कम अगले जन्म में तुम अपनी पसंद की स्त्री से विवाह कर के सुखी रहना।"

मुत्तथ्यन शारीरिक पीड़ा को एक दम भूल कर हर्ष के साथ हंस पड़ा।

"कल्याणी ! जब तुम क्रोध करती हो, तब तुम्हारे मुख की शोभा अवर्णनीय होती है। विधाता ने तुम्हारे मुख की बनावट ही कुछ ऐसी बना डाली है कि क्रोध में उस का सौन्दर्य और निखर उठता है। शायद यही कारण है कि शुरू से ही तुम्हें चिढ़ाने में मुझे बड़ा मज़ा आता था," मुत्तथ्यन ने कहा।

कल्याणी अब आग बबूला हो उठी। बोली, "मुत्तय्या। इस सब बहाने बाज़ी से अब तो बाज़ आओ ! मेरे मुख पर सौन्दर्य भी है कहीं ? उस दिन जिस औरत को तुम छाती से लगाए हुए थे, मैं उस से ज्यादा खूबसूरत हूँ क्या ? शायद तुम कहोगे, वह भी तुम्हें नाराज़ करने के लिए ही किया था।"

मुत्तथ्यन ने मुस्कुराहट के साथ कहा, "हाँ कल्याणी ! तुम्हें चिढ़ाने के लिए ही किया था। वरना तुम पुलिस इन्सपेक्टर को मेरा भेद कैसे बताती ?...।"

यह सुन कर कल्याणी का गुस्सा काफूर हो गया। दुःख के मारे उस का गला रूंध गया। बोली, "हाय, मुत्तय्या ! यह झूठ है। मैंने जान-बूझ कर तुम्हारे साथ विश्वासघात नहीं किया। दूसरी औरत के साथ तुम्हें देख कर मैं बावली हो उठी थी। तब उस आदमी ने आकर कुछ पूछा। मैंने जवाब में कुछ बक दिया। तुम मेरे साथ हज़ार विश्वासघात करो, फिर भी मैं तुम से दग़ा कैसे कर सकती थी ? उस से पहले अपने ही पापी प्राणों का अन्त कर लेती !"

"मैं जानता हूँ, कल्याणी ! जानता हूँ ! मेरा भेद तुमने थोड़े ही बताया था ? विधि का खेल था। इस में तुम्हारा क्या दोष ?" मुत्तथ्यन ने कहा।

"उस औरत की शक्ल में भी होनहार ही आई थी क्या ? मुत्तय्या ! मुझे इस बात का इतना खेद नहीं कि तुमने मुझ से प्रेम नहीं किया। आखिर किसी को इस बात के लिए मजबूर थोड़े ही किया जा सकता है कि अमुक से प्रेम करो ? परन्तु तुमने मेरे साथ धोखा क्यों किया ? सच्ची बात क्यों छिपाई ? झूठा विश्वास दिलाकर पीछे से विश्वासघात क्यों किया ? तभी तो मैं इतनी बौखला उठी थी ?"

"कल्याणी ! तुम्हारे साथ धोखा मैंने नहीं किया, बल्कि विधि ने ही किया।

जिसे तुमने देखा था, वह स्त्री नहीं थी, कल्याणी ! वह था मेरा मित्र कमलापति, जो मेरे साथ नाटक में स्तारस का पार्ट खेला करता था। हम दोनों की जहाज़-यात्रा का प्रबन्ध उसी ने किया था और उसकी खबर मुझे देने के लिए आया था। पुलिस की गड़बड़ी के मारे स्त्री का वेश धर कर आया था।"

अब कल्याणी के मन में जो उथल-पुथल मची, उसका कैसे वर्णन किया जाय ? उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके हृदय पर से मानो कोई भारी पहाड़ उतर गया हो। पर्वत की चोटी से फिसलकर गिरने वाले को जैसे अचानक कोई सहारा मिल गया हो। मुत्तय्यन का प्रेम झूठा नहीं। उसने मेरे साथ धोखा नहीं किया। इसके बाद चाहे दुनिया इधर की उधर हो जाय, तो भी क्या परवाह ?

यह विचार केवल मिनट भर रहा। बाद में उसे याद आया कि मैंने कैसी भयानक भूल कर दी।

"हाय ! मैं भी कैसी पापिन हूँ। नाहक शक करके तुम्हारी यह गत बना दी मैंने। स्त्रियाँ विवेक-शून्य होती हैं, यह कहावत मुझ पर चरितार्थ हो गई। मैंने यह क्या कर दिया ?" कल्याणी विलाप कर उठी। उसकी सूखी आँखों से फिर एक बार आँसुओं की धारा बह निकली।

मुत्तय्यन का जीवन-दीप टिमटिमा रहा था। हर घड़ी उसकी ज्योति क्षीण होती जा रही थी। कल्याणी के मुख को प्यास-भरी आँखों से देखता हुआ वह क्षीण स्वर में बोला, "मुझे इससे दुःख नहीं हुआ। बल्कि मुझे तो हर्ष हो रहा है। आखिर तुमने ऐसा क्यों किया था ? इसीलिए न, कि तुम मुझसे प्रेम करती थी ? उस अथाह प्रेम ही ने तो तुम्हें ऐसा करने के लिए उकसाया था ?—कल्याणी ! शुरू से ही मेरे मन में यह शंका हो गई थी कि सिंगापुर जाना, वहाँ सुखी जीवन व्यतीत करना आदि सब असंभव बातें हैं। यह शंका अब सच साबित हो गई। इस संसार में जो-जो मेरे लिए अत्यधिक प्यारे हैं, उन्हीं के कारण मेरी जीवन-लीला का अन्त हो गया है। पहले अभिरामी, बाद में कमलापति और फिर तुम। तुम्हीं तीनों के प्रेम के कारण मैं पकड़ा गया। यह मेरे लिए कहीं हानिकर हो सकता है ? हरगिज़ नहीं। यही मेरे लिए उचित अन्त है ''

मुत्तय्यन का स्वर और क्षीण होता गया। उसकी आँखों की ज्योति पलकों में लुप्त हो गई। पर होठों पर मुस्कराहट ज्यों की त्यों बनी रही।

"कल्याणी ! तुम कहाँ हो ? ज़रा पास तो आओ ! एक खास बात कहना चाहता हूँ !" मुत्तय्यन ने कहा।

कल्याणी, जो बीच में ज़रा हट गई थी, फिर उससे सटकर बैठ गई और उसके मुख के पास अपना मुख ले जाकर बोली, "मैं यह आ गई हूँ, मुत्तय्या।"

"देखो कल्याणी ! अभिरामी के देखभाल के लिए मैंने प्रबन्ध कर दिया है। कमलपति उसके साथ विवाह करने वाला है। अब हमारे विवाह में कोई बाधा नहीं। तुम राजी हो न ?" गुत्तयन ने फुसफुसाया।

"राजी हूँ ! राजी हूँ !" कल्याणी बोली।

"तो फिर शहनाई वालों से कहो कि ज़रा ज़ोर से बजायें ! यह लो अभी मंगल-मय सूत्र पहना देता हूँ !" यह कहकर गुत्तयन ने अपनी दोनों रक्त-हीन बाँहों को उठाकर कल्याणी को गले [illegible] लगा लिया।

उस समय पास के मंदिर में मध्याह्न की पूजा हो रही थी।

मन्दिर का नगाड़ा धम-धम करके बज उठा।

मन्दिर की घण्टी में ओम्-ओम् का प्रणव-स्वर निकला।

५४

ईश्वर की प्रेयसी

अपने चिर-परिचित मित्रों से विदा लेने का अब समय आ गया है।

मुत्तय्यन इस संसार से विदा लेकर चल बसा। पर उसकी स्मृति कइयों के मन में स्थायी रूप से अंकित हो गई और उनके जीवन-क्रम को ही परिवर्तित कर दिया।

ऐसे लोगों में प्रथम उल्लेख सर्वोत्तम शास्त्री का होना चाहिए। हमने शुरू में ही देखा था कि साधारणतः पुलिस-कर्मचारियों में जैसे गुणों की हमें आशा होती है वैसे गुण शास्त्री जी में नहीं थे। यदि वह असाधारण पुलिस अधिकारी न होते तो हमारी यह कहानी इतनी लम्बी नहीं हो सकती थी।

मुत्तय्यन के अन्त से शास्त्री जी की चिन्तन-शक्ति को नई प्रेरणा मिली और फलतः वह सांसारिक जीवन के गूढ़ तत्वों के विचार में प्रवृत्त हो गए।

"प्रेम धर्म का ही मूल है, ऐसा ज्ञानी कहते हैं। पर अधर्म का भी वही आधार है।"

तमिल वेद (तिरूकुरल) की इस सूक्ति का वास्तविक अर्थ अब शास्त्री जी की समझ में आया। प्रायः इस सूक्ति का यह अर्थ बताया जाता था कि "जो लोग यह समझते हैं कि प्रेम से केवल सत्कार्यों की ही प्रेरणा प्राप्त होती है, वे ज्ञानी हैं। बुराइयों का निवारण भी प्रेम से ही होता है।" पर एक आधुनिक महा पुरुष ने इस व्याख्या की असंबद्धता को सिद्ध किया था और उक्त सूक्ति की दूसरी पंक्ति का यह तात्पर्य बताया था कि "बुरे कार्यों की भी प्रेरणा प्रेम से ही मिलती है।" शास्त्री जी ने यह व्याख्या सुनी थी। मुत्तय्यन के जीवन से उन को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो गया कि यह व्याख्या कितनी सही है।

अभिरामी के प्रति प्रेम के कारण ही तो मुत्तय्यन डाकू बनने के लिए विवश हुआ था, बाद में उसने जितने कुकर्म किए, उन सब का भी आधार वही प्रेम था न ?

और फिर शास्त्री जी ने यह भी प्रत्यक्ष अनुभव से जान लिया कि प्रेम जीवन का ही नहीं, अपितु मरण का भी हेतु बनता है। मुत्तय्यन के प्रति अभिरामी, कमल-पति और कल्याणी का प्रेम ही तो अन्त में उस की मृत्यु का कारण बना ? पर उस मृत्यु को बुरा कैसे कहा जाय ? ऐसे विशुद्ध प्रेम के फलस्वरूप कहीं बुराई हो सकती है ?

इन सब की मुसीबतों का मूल कारण—मुख़तार शंकु पिल्लै—अब भी जीवित था और अपने पाप-कृत्यों को बराबर जारी रखे हुए था; जब कि मुत्तय्यन जो परिस्थितियों की प्रवंचना के कारण डाकू बना था, शुरू जवानी में गोली खा कर मर गया। इस परिणाम-वैपरीत्य को देखते हुए यह कैसे कहा जाय कि जीवन अच्छा है और मरण बुरा ?

संसार में प्रत्येक कार्य किसी के अनुसार ही, कारण-कार्य सम्बन्ध के आधार पर चल रहा है। इस में भी संदेह नहीं कि भलाई का नतीजा भला और बुराई का नतीजा बुरा हुआ करता है। परन्तु इस बात का निर्धारण करना सहज नहीं कि भलाई क्या है और बुराई क्या, सुख क्या है और दुःख क्या। "भलाई-बुराई, सुख-दुःख आदि का द्वन्द्व-भावना के ऊपर जो उठ सकता है, वही ज्ञानी होता है, वही सिद्ध पुरुष है।"—बड़ों के इस कथन का तत्त्वार्थ भी शास्त्री जी को कुछ कुछ ज्ञात होने लगा।

इस प्रकार के आत्म-चिन्तन और तत्त्व-विचार में लीन होने के बाद, इस में आश्चर्य नहीं कि शास्त्री जी का मन पुलिस-विभाग की नौकरी में नहीं लगा। नियत समय से पहले ही उन्होंने नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया और परमार्थिक साधनाओं में तथा सार्वजनिक सेवा में निरत हो गया। कुछ लोग उन को "पुलिस संन्यासी" कहते थे और कुछ लोग "पोंगा साधु" कह कर उन की खिल्ली उड़ाते थे! पर शास्त्री जी ने इन बातों की परवाह नहीं की। प्रशंसा और निन्दा को समान मानने की मनः स्थिति को वह प्राप्त हो चुके थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उन के इन सत्कार्यों में उन की धर्मपत्नी पूर्णतः हाथ बंटाती थी।

मुत्तय्यन की मृत्यु के बाद शास्त्री जी के प्रयत्न से कुरबन शोक्कन रिहा कर दिया गया था। लेकिन उस कम्बख़्त से चुप नहीं रहा गया। कोल्लिडम नदी तट पर कई दिन तक खोज-खोज कर उसने मुत्तय्यन द्वारा छिपाए गए कुछ गहनों का पता लगा लिया। उन में से कुछ को बेचने का प्रयत्न करते समय उसे पुलिस ने फिर गिरफ़्तार कर लिया। किसी और चोरी का अपराध उस पर लादा गया और वह तीन साल की कड़ी कैद की सज़ा पा कर जेल चला गया। परन्तु इस के लिए हमें शोक्कन के प्रति समवेदना प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं। वह तो जन्मजात दार्शनिक था। जेल के बाहर के जीवन में और अन्दर के जीवन में वह भेद थोड़े ही मानता था? सुख और दुःख को वह पृथक थोड़े ही समझता था? वास्तव में द्वन्द्वातीत योगी कहलाने की योग्यता उसी में तो थी?

नियत समय पर कमलपति और अभिरामी का ब्याह सम्पन्न हुआ। मुत्तय्यन के विछोह से उन दोनों को जो असीम व्यथा पहुंची थी, वही उन दोनों को प्रेम के अविच्छेद्य सूत्र में बाँधने वाली कड़ी बन गई थी। मुत्तय्यन की याद में उन्हों ने जो

आँसू बहाए, वही उन की प्रेम-बेल को सींचने वाले वर्षा के जल-कण बन गए। धीरे धीरे मुत्तय्यन के वियोग का यह दुख दूर हो गया और उन का प्रणय-सुख ही बचा रहा। कभी-कभी वे यह सोच कर लज्जित होते कि मुत्तय्यन के बिछोह के बाद भी हम इतना सुखी जीवन बिता रहे हैं। परन्तु बाद में यह सोच कर मन को सान्त्वना दे लेते कि हमारा सुखी रहना ही मुत्तय्यन की आत्मा को सुख प्रदान करेगा।

कल्याणी जीवित रही!

यह आशा की जा सकती थी कि मुत्तय्यन के देहान्त के बाद कल्याणी ने प्राण त्याग दिए होंगे। पर वास्तव में ऐसा नहीं हुआ।

जिस कल्याणी ने मुत्तय्यन के पकड़े जाने के उसी दिन आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया था, उसी ने उसके देहावसान के बाद प्राण-त्याग का विचार ही छोड़ दिया यह आश्चर्य की बात है न?

है तो आश्चर्य की बात। पर उसका एक विशेष कारण था।

जिस दिन कल्याणी ने आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया था, उस दिन उसका मन निराशा से भरा था। वह समझने लगी थी कि इस संसार में कोई सत्य वस्तु नहीं है, सब मिथ्या है। पर अगले दिन मुत्तय्यन से मिलने के बाद उसका यह मनोभाव एकदम बदल गया। "संसार में एक ऐसी वस्तु भी है जो अक्षय, अचल सत्यमय है और वह है प्रेम"—यह स्थिर विचार उसके मन में जम गया।

श्रीकृष्ण जब गोकुल छोड़कर मथुरा में राज्य करने चले गए, तो उनके सभी संगी-साथी और सखी-सहेलियाँ शोक-विह्वला हो गईं, परन्तु राधा दुखी नहीं हुई अपनी सखी से उसने कहा:—

"सखी! हम दुःखी क्यों हों? इस संसार में शाश्वत कौन है? सभी अनित्य ही हैं न? मनुष्य अनित्य है; जीवन अनित्य, सुख-दुःख सब अनित्य। यह सब जानते हुए भी, कृष्ण के बिछोह का दुःख हम क्यों करें?"

"सखी! इस नश्वर जगत में एक ही नित्य वस्तु है, वह है प्रेम।

"प्रेम का पात्र भी अनित्य हो होता है, वह चला जाता है। पर प्रेम कभी क्षीण नहीं होता। वह अजर-अमर है।"

"सखी! हमारा हरि है तो बड़ा चोर। पर एक वस्तु है जिसे वह कभी हरण नहीं कर सकता। वह है हमारे हृदय में स्थित प्रेम। उसका अपहरण वह भी नहीं कर सका न?"

"तो फिर हम दुःखी क्यों हों?"

राधा की इसी मनः स्थिति को कल्याणी पहुँची हुई थी। हम नहीं कह सकते कि मुत्तय्यन के वियोग का दुःख उसे नहीं हुआ। कौन कह सकता है कि

कल्याणी को दुःख नहीं है ? यदि दुःखी न होती, तो यों चित्रवत् निस्तब्ध कैसे खड़ी हैं वह ? दुःखी न होती तो यों अश्रु-धारा क्यों बहाती है वह ? हाँ, यह कहा जा सकता है कि कल्याणी का दुःख साधारण नहीं, असाधारण था।

यदि साधारण दुःख होता, तो उसे भुलाने का ही प्रयत्न किया जाना चाहिए था न ? मानव-स्वभाव यही तो होता है ?

किन्तु कल्याणी ने उस दुःख को विस्मृत करना नहीं चाहा। उस महान् दुःख में संभवतः उसे कोई महान् सुख भी प्राप्त हुआ होगा।

वास्तव में कल्याणी के प्राण-त्याग न करने का कारण ही यही था। प्राण-त्याग के साथ-साथ, संभव है, मुत्तय्यन की स्मृति भी मिट जाय। उस रात को पानी में गिरते ही सारी सुध-बुध खो गई थी न ? मृत्यु के बाद भी तो ऐसा ही होगा ? नहीं। मुत्तय्यन की और उसके प्रेम की स्मृति को मिटा देने वाली मृत्यु नहीं चाहिए !

कल्याणी के स्वार्थ-हीन एवं शारीरिक सम्बन्ध की अपेक्षा न करने वाले प्रेम ने उसे देवता-स्वरूप बना दिया। जीवन में उसके सब कार्य उसके अनुरूप ही हुए। पूंकुलम और तामरैश्रौडै में जो अपार संपत्ति थी, उसे उसने दीनों और अनाथों के आँसू पोंछने में ही लगाया।

चोर की प्रेमिका, अन्त में ईश्वर की प्रेमिका बन गई।